# गाँव का पुनर्निर्माण

लेखक

श्रीरामकृष्ण मेहता

प्रकाशकः—

ग्राम प्रकाशन कुटीर

मुकाम सोनमयो
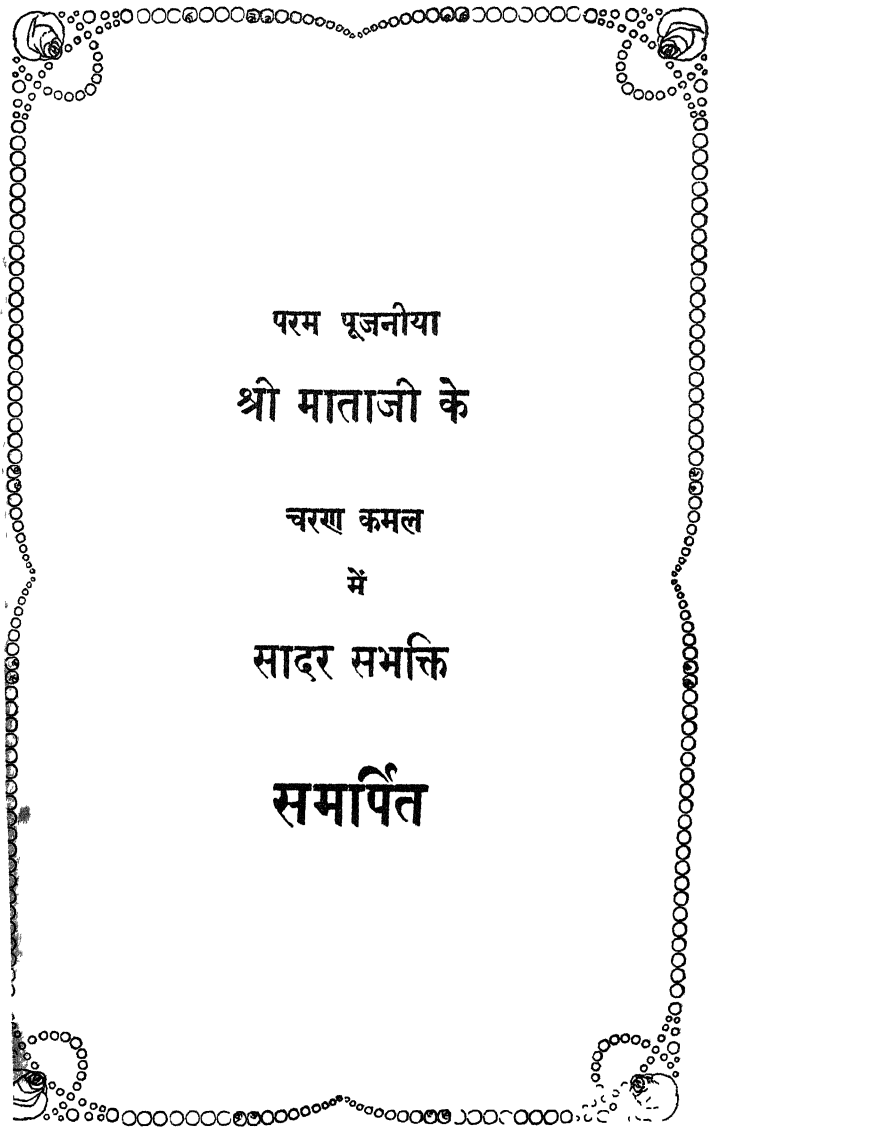
पो० बीर ( पटना )

परम पूजनीया

श्री माताजी के

चरण कमल

में

सादर सभक्ति

# समर्पित

## दो शब्द

मैं कोई लेखक नहीं हूँ, पर कुछ दिनों से पढ़ने की ओर प्रवृत्ति रही है क्योंकि स्कूलों में काम करना पड़ता है। जो बातें ग्रामोपयोगी होती थी उन्हें किसी नोट बुक में लिख लेता था। पोस्ट बेसिक तथा बेसिक ट्रेनिङ्ग स्कूल में छात्र-गण भी कभी-कभी ऐसे प्रश्न छेड़ देते थे कि उस पर विचार कर उनके प्रश्नों का उत्तर देना ही पड़ता था। यह पुस्तक उसीका फल-स्वरूप है। अगर पुस्तक प्रकाशन का इरादा होता तो इसका रूप कुछ और ही होता। बहुत से उद्धरणों तो मालूम ही नहीं कि किनका है, फिर भी पुस्तक के अन्त में लेखकों का नाम दे दिया है जिनका मै ऋणी हूँ। अतः लेखकगण इस गलती पर ध्यान न देंगे। उनके विचारों को पुस्तक-रूपी माला में मैंने गुंथ दिया है, यही मेरा काम यहाँ पर है।

जब मै कभी बाहर से छुट्टी में घर लौटता हूँ तो गाँव की हालत देख कर दंग रह जाता हूँ और सोचने लगता हूँ कि कवियों के गाँव की ऐसी हालत क्यों? जहाँ देवता भी आने

के लालायित रहते थे, आज वही गाँव निस्तेज और बेजान सा हो गया है। जो गाँव में पैदा हुए हैं, वे भी शहरों को आर दौड़ रहे है। सरकार की लापरवाही बढ़ रही है। उसने तीव्र बुद्धिवालों को सेक्रेटेरियट के फायलों के बीच रख दिये है। कवि गाँव की प्रकृतिदेवी को छोड कर पैसे के लोभ में फिल्मी तारिकाओं के फेर में पड़ गये हैं तो गाँव का फिर उद्धार कैसे होगा ? कुछ कवियों ने सरकारी नौकरी में अपनी लेखनी कुंठित कर ली है।

गाँव के पैसे शहरों में जाने के कारण गाँव की हालत बद-तर होती जा रही है। आज वहाँ भुखमरी और बीमारी का तांडव नृत्य हो रहा है। ग्रामोद्योग के विनाश के कारण गाँव की श्री नष्ट हो गयी है। तीन चौथाई भारत में आमदनी उद्योग द्वारा जरूर हो जानी चाहिए तभी राष्ट्रीय आय बढ सकती है। इसके लिए घरेलू उद्योगों का पुनरुद्धार करना चाहिए। घरेलू उद्योगों का विकास मजदूरों और किसानो के सहयोग बिना असम्भव है। अतः देश का शासन का भार वहन करने में उनको भी शामिल करना चाहिए तभी किसान राज और मजदूर राज कायम होगा। मिल की हूक-हूक की आवाज सुनकर मैं घबड़ा जाता हूँ क्योंकि मिलें बीमारी और बेकारी बढा रही है। सरकार खाद्य पदार्थों को मिल में न जाने दे। मिलो में अनाज १० प्रति-शत बरबाद होते हैं और साथ ही साथ निष्पोषक भी कर दिये

जाते हैं। इसी बरबादी के कारण अनाज की कमी यहाँ पायी जाती है। जिस देश में दूध दर्शन के लिए भी नहीं मिलता, उस देश मे यदि सरकार मिलों में अनाज के तत्त्वों को नष्ट होने से न बचावे, तो राष्ट्र अल्पायु होकर नष्ट हो जायगा। थोड़ी पालिश करने पर भी अनाज के सत्त्व खतम हो जाते है। 'चावल' पुस्तक में लिखा हुआ है—

| | चावल की किस्म | पौष्टिकता | नुकसान |
|---|---|---|---|
| १ | बिना पालिश किया | १०० | कुछ नही |
| २ | एक बार पालिश किया | ४५ ० | ५५ ० |
| ३ | दो बार ,, | २५ ० | ७५·० |
| ४ | तीन बार ,, | १७ ० | ८२·५ |

पहले भारतीय सैनिक बजट में १२१०८ लाख रुपये खर्च होते थे पर १९४८-४९ ई० मे २५७३७ लाख रुपये खच हुए। इधर सार्वजनिक काम में बजट की वृद्धि दाल में नमक के बराबर हुई है। पशु सुधार, खेती और शिक्षा में सरकार ने कम ध्यान दिया है। अमेरिका नस्ल सुधार में १५० वर्षों से लगा हुआ है। बृटेन २०० वर्षों तथा आस्ट्रेलिया ८० वर्षों से इस काम में भिड़ा है। इस काम के लिए बुनियादी नस्लें चुननी चाहिए। कभी-कभी ऐसा पाया जाता है कि आबो-हवा के प्रभाव के कारण एक बढ़िया नस्ल भी दूसरी जगह खराब हो जाती है। गोचरभूमि तथा खेत की कमी है, ऐसी

हालत में दूध के लिए भैंस और बैल के लिए गाय पालना असम्भव सा मालूम पड़ता है।'

इस देश में उभय गुणी जानवर ( वत्स प्रधान तथा दुग्ध प्रधान ) पालना जरूरी है। गाय तो सर्वदा से भैंस से अधिक दूध देते आयी है। आज दुनिया में सबसे अधिक दूध देने वाली गाय ने एक ब्यान में ४२००० पौड दूध दिया है। भारत में अधिक से अधिक दूध देने वाली गाय ने १३७०० पौंड दूध दिया है जबकि बढिया मुर्रा भैंस ने भी ७८०० पौंड अधिक दूध नहीं दिया। कुछ देश को छोड कर सभी देशों में गाय पाली जाती हैं। राष्ट्र का निर्माण गाय बिना नहीं हो सकता। उभय गुणी नस्ल भारत में ये है हरियाना, हिसार, थारपारकर कांकरेज, गवलाऊ आदि। अतः प्रत्येक भारतीय को इस काम में दिल से लग जाना चाहिए।

पोस्ट बेसिक स्कूल, जेठियन ( गया ) के साथियों ने अपने अनुभव द्वारा सहयोग दिया है। इसके लिए श्री बालेश्वर बाबू, श्री अलख देव बाबू तथा श्री रामदेव बाबू का अनुगृहीत हूँ। सर्वोदय बुनियादी शिक्षण केन्द्र, हवेली खड़गपुर [ मुंगेर ] के कतिपय निम्न लिखित छात्र-छात्राओं ने भी मदद पहुँचायी है—सर्व श्री महावीर सिंह, भुवनेश्वर शर्मा, राम प्रकाश शर्मा, प्रसिद्ध नारायण सिंह, विष्णुदेव सिंह, जसमीन देवी, सरस्वती सिन्हा, माया देवी, शान्ति देवी और उर्मिला देवी आदि। अतः ये भी धन्यवाद के पात्र हैं।

अंत में प्रेस के मैनेजर श्रीयुत महादेव लाल दास तथा मालिक श्रीयुत भोला लाल दास बी० ए० बी० एल० का अनुगृहित हूँ जिन्होंने प्रूफ संशोधन का भार लेकर पुस्तक एक महीने के भीतर ही प्रकाशित कर दी। फिर भी अति शीघ्रता के कारण कतिपय प्रूफ संबंधी गलतियाँ रह गई होंगी जिसके लिए पाठक-वृन्द क्षमा करेंगे। अगले संस्करण में उसका यथा-साध्य सुधार कर दिया जायगा।।

विनीत

**रामकृष्ण मेहता**

अध्यापक

सर्वोदय बुनियादी ट्रेनिङ्ग स्कूल

हवेली खड़गपुर

जिला—मुंगेर

२५ जून १९५०
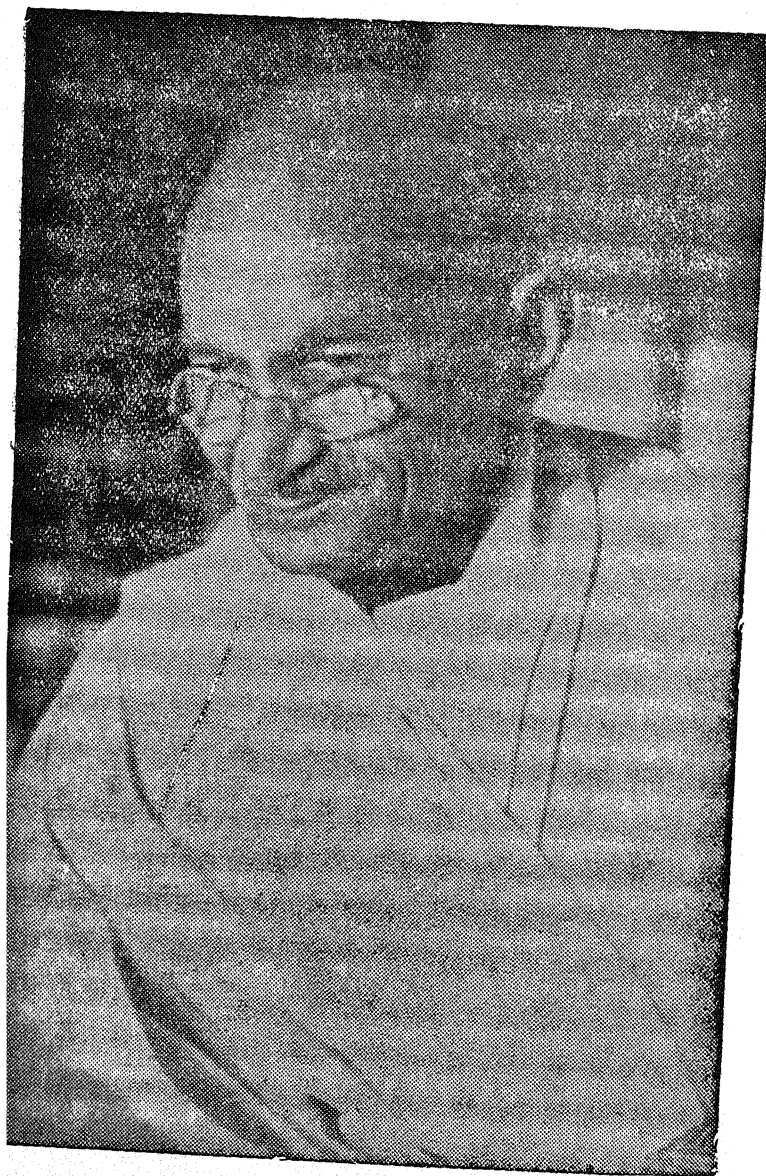
# मेरी कल्पना का भारत

"मै ऐसे भारत के निर्माण के लिए कार्य करूँगा, जिसमें गरीब से गरीब भी इसे अपना देश समझेगा और जिसके निर्माण में उसकी आवाज का मूल्य समझा जायगा, उस भारत में ऊँच और नीच वर्ग नहीं रहेगा, उस भारत में सभी सम्प्रदाय हिलमिल कर रहेंगे। छूत-छात का नामोनिशान न होगा, नशीली चीजे अभिशापित समझी जायँगी। महिलाओ को पुरुषो के समान अधिकार होंगे। चूंकि शेष संसार के साथ हमारा शान्तिपूर्ण सम्बन्ध रहेगा, न हम किसी को शोषण करेंगे न शोषित होंगे। हम न्यूनतम सेना रखेंगे। विदेशी या देशी जिस व्यवसाय से करोड़ो मूक जनता के स्वार्थ का अहित नहीं होगा, सभी रहने दिया जायगा, व्यक्तिगत तौर पर मेरे देशी और विदेशी में कोई फर्क नहीं है यही मेरी कल्पना का भारत है · · इससे कम में मै संतोष नहीं कर सकता।"

—महात्मा गाँधी

---

## विषय-सूची

बापू ने कहा था कि असली भारत यहाँ के सात लाख गाँवों मे बसता है। लेकिन आज यह 'असली भारत' उजडा हुआ है, वह उपेक्षित है। समस्या के मूल कारणो को समझने और उसके निदान के लिए पुस्तक के पन्नो को उलटिये।

# गौ हमारी माता है !

"हिन्दुस्तान में तीन मातायें मानी जाती है, उनमें से एक गौ है। ये तीन मातायें हैं— गो-माता, भू-माता और गंगा-माता। ये तीनों हिन्दुस्तान के लोगों को पोसती है— गो-माता बच्चों को दूध पिलाती और उन्हें पाल पोस कर बड़ा करती है, भूमाता और गंगा-माता परस्पर मिलकर फसल खड़ी करती और मनुष्यों को अन्न तथा पशुओं को चारा देती हैं। इसलिए तीनों पूजी जाती है।"

—डा० पट्टाभि सीतारमैया

गौ पृथ्वी की साम्राज्ञी है। यह बिना ताज की महारानी है, उसका राज्य सारी समुद्र-वसना पृथ्वी है। सेवा उसका विरद है और जो कुछ वह लेती है, उसे सौगुना करके देती है। गौ के बिना मानव जाति रोग, क्षय और अन्त में विनाश को प्राप्त होगी। भारत में खेती के वाद मुख्य उद्योगों में गो-पालन का स्थान महत्त्वपूर्ण है। खेती का मेरुदण्ड भी पशु हैं, इनके बिना खेती होना कठिन है। गाँव का सारा अर्थशास्त्र गाय और बैल पर अवलम्बित है; इसलिए पशुधन के सुधार में इतना ध्यान देना जरूरी है कि नस्लों में सुधार हो जिससे अधिक दूध का उत्पादन हो और हट्टे-कट्टे जानवर भी किसानों को मिल जाँय।

किसानों को दूध की खपत न होने के कारण, घी बना कर बेच डालना पड़ता है क्योंकि दूध तो देर तक रहने पर फट जाता है। सरकारी आंकड़ो के अनुसार भारत में ६२९३ लाख मन दूध में ३५८९ लाख मन यानी ५७ प्रतिशत दूध का घी बनता है। घी की बिक्री से यहाँ के किसानों को वर्ष में डेढ़ अरब रुपये आमदनी होती है। घी के अलावे १७०४ लाख मन दूध से करीब ८० करोड़ रुपये की आमदनी होती है। गरीबी के कारण हिन्दुस्तानी केवल छाछ ही पर रह जाता है। दूध का रिपोर्ट १९४१ के अनुसार ६०७५ लाख मन छाछ बनता है और बेचारा किसान इसीको दाल के बदले में खाकर गुजर कर लेता है। पर अब किसानों को छाछ भी मिलना दुर्लभ हो रहा है। नकली घी दूध से बाजार भर गया है। कारखानों को प्रोत्साहन मिल रहा है। इसलिए किसानों को अब छाछ भी मयस्सर नहीं होता। हर एक कारखाना कम से कम दो सौ जानवरों का नाश करवाता है। लाला श्री हरदेव सहाय जी लिखते हैं "वास्तव में देश की आर्थिक-व्यवस्था, भौगोलिक अवस्था, नैतिक उच्चता तथा राजनैतिक स्वतंत्रता को दृष्टि में रखते हुए, ये बड़े-बड़े कारखाने देश के लिए लाभदायक नहीं बल्कि हानिकारक हैं। इन कारखानों ने परिश्रमी, सदाचारी, स्वस्थ और स्वतंत्र लोगों को बेकार, बीमार और परतंत्र तो बनाया ही, साथ ही शराब और व्यभिचार के अड्डे बना कर उनका पतन

भी बहुत किया। वनस्पति घी के कारखाने तो देश के दुधार तथा उपयोगी पशुओं के सर्वनाश के कारण है ही। जिस प्रकार कपड़े के कारखानों ने चर्खे के आश्रय से जीवन बिताने वाली निधन, असहाय विधवाओं को निराश्रय करके बेकारी और भूख के विकराल मुंह में ढकेल दिया, गॉव की झोपड़ियों में स्वतंत्रता से जीवन व्यतीत करने वाले जुलाहों को चाय के बागीचों और कारखानों के घृणित वायुमण्डल में जीवन बिताने के लिए मजबूर किया, उसी प्रकार नकली घी के कारखाने किसानों को निर्धन बना रहे है तथा उनके पशुओं को निकम्मा बना कर कसाईखानों में पहुँचाने का कारण बन रहे है"

मूंगफली, बिनौले तथा मछली का तेल सस्ता हो तो तेल को कास्टिक सोडे से तेल की गंध उड़ा कर तथा निकल और हाईड्राजन गैस के द्वारा ठंढा और सफेद करके शुद्ध घी के खरीददारों को धोखा देने के लिए नट्रिक एसिड (एक प्रकार का तेजाब) और सिन्थेटिक एसेन्स—बनावटी इतर या गन्ध के द्वारा उसको घी जैसा दाने दार और सुगन्धित कर देता है। कुछ कारखानों में तो गाय और भैंस के घी के समान रंग का इस्तेमाल कर दिया है।

नकली घी अधिकतर मिलावट का काम देता है क्योंकि ९० प्रतिशत मिलावट के काम में आता है। किसानों की असली घी में अब लोग विश्वास नही करते हैं। इस

कारण अब करोड़ों रुपये का घाटा हर साल किसानो को उठाना पड़ता है। कारखाने वाले की दलील है कि इससे देश को बहुत फायदा होता है चूंकि यहां घी का उत्पादन बहुत कम है और चर्बी की मिलावट से शुद्ध घी बच जाता है। नकली घी से बिनौले और मूंगफली की कीमत बढ जाती है और किसानों को काफी लाभ पहुँचता है। जिस तरह दूसरे देशों में मारगरीन (नकली घी) का इस्तेमाल होता है, यहां भी इसकी आवश्यकता है। यह मजदूरो को काम देता है।

ये दलीलें उनकी अच्छी नही है। शुद्ध घी से पूर्व बिनौले पशु खा जाते थे पर अब खाने को नही मिलता, इसलिए पशु कमजोर हैं। मूंगफली की खल्ली भी बेकार ही चली जाती है। शुद्ध घी बेचने से किसानो को कम से कम छाछ ऊपर से मिल जाती थी। अर्थशास्त्र के अनुसार नकली दूध-घी बाजार से असली घी-दूध को निकाल रहा है। डाक्टर राइट के कथनानुसार सन् १९३७ ई० में यहाँ के कारखानों में २५ हजार टन या सात लाख मन करीब नकली घी तैयार होता था। सन् १९४५ ई० के अन्त तक सवा दो लाख टन या साठ लाख मन से अधिक तैयार होता है। दस वर्षो के बीच ही नकली घी का उत्पादन आठ गुना बढ गया उधर असली घी का उत्पादन कई गुना घट गया।

अमीरो की सरकार क्यो इसे रोकेगी ? सरकार को भी

करोड़ों की आय इससे हो ही जाती है, इसे वह क्यों रोकने लगी ? हमारे देश में ४६ लाख मन निर्घृत दूध तैयार होता है। यह अपने असली रूप में बहुत कम बिकता है। यह प्रायः शुद्ध दूध में मिला कर या दही बना कर बेचने के काम आता है। कभी-कभी इसका खोवा भी बनता है। यदि घी देश में कम होता है तो सरकार नकली घी क्यों खिलाती है ? उससे अच्छा तो तेल खिलाना है क्योंकि वह जमाया तेल से सस्ता पड़ता है और पैसे की बचत होती है।

किसानो की आय का बहुत बड़ा भाग गाय-भैंसो तथा बैलों से ही प्राप्त होता है। मि० ओलवर और मि० राइट इन दो अंग्रेजी विशेषज्ञा के अनुसार किसान का पशुधन से आय इस प्रकार होती है—"खेती के कार्य करने से बैल ६१२ करोड़ का काम करते हैं। बोझा ढोने से पशु १६१ कराड़ की आय किसान को देते है। दूध-घी से किसान की आय ८१० कराड़ की होती है। प्रति वर्ष पशुओ से खाद २७० करोड़ की मिलती है तथा खाल हड्डी आदि की आय ५५.५ करोड़ रुपये की होती है। इस प्रकार पशुओं से कुल ६१२+१६१+८१०+२७०+५५ ५=१९०८.५ करोड़ रुपये प्रति वर्ष किसान को मिलता है। सारी खेती की पैदावार की आय केवल २००० करोड रुपये १९३६ के भाव के अनुसार थी। अर्थात् जितनी खेती से पैदावार होती है उतनी ही पशुधन से किसानों की आय होती है। इसलिए घी के उद्योग

से छाछ तो किसानों को मिलता था अब नहीं मिलता। जहाँ खोवा बनाने का धंधा चलता है वहाँ किसानों को कुछ भी लाभ नहीं।

घी का गुण बहुत है—आयुर्वै घृतं ( घी ही आयु है )। सद्यः शुक्रकरं पयः—दूध पीते ही तुरन्त शुक्र बन जाता है। चार्वाक दर्शन में भी लिखा है—

"जब तक जीओ सुख से जीओ, ऋण ले-लेकर भी घी पीओ।
भस्म हो गया यह शरीर जब, होता पुनरागमन कहाँ तब ॥"

आजकल प्रति व्यक्ति आधा तोला घी प्रतिदिन हिस्से में पड़ता है। पर हमारे देश में गोचर भूमियों के बढाने, गायों की रक्षा करने, उनके बध को रोकने तथा नयी-नयी दुग्धशालाएँ खोलने के बदले वनस्पति ( नकली ) घी के कारखानों को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। यहाँ के प्रसिद्ध डाक्टरों ने अनुभव कर बतलाया है कि जबसे वनस्पति घी चला, यहाँ पेट और आँख की बीमारी तथा कब्ज की शिकायत बढ़ गयी है।

अब भी यहाँ के लोगों का ध्यान इसपर नहीं जायगा तो समझिये कि विनाश का दिन बहुत नजदीक है। मक्खन निकाला हुआ दूध का पाउडर आप बहुत खा चुके। हौर्लिक्स, ओभलटीन आपको ताजे दूध से ज्यादा लाभ नहीं करेगा। आज जब मांसाहारी देश प्रति मनुष्य प्रति दिन बहुत दूध का इस्तेमाल करता है तो हमें अधिक उत्पादन कर

अधिक खाने की कोशिश करनी चाहिये (१) न्यूजीलैंड—५६ औंस (२) आस्ट्रेलिया—४५ औंस (३) इंगलैण्ड—२९ औंस (४) अमेरिका—३५ औंस पर भारतवर्ष केवल छः ही औंस उपभोग करता है।

जिस देश में दूध की नदी बहती थी आज वहाँ दूध शीशियों में दवा की तरह रक्खा जाने लगा है। इसका मतलब यह हुआ कि हमने गोपालन करना छोड़ दिया है। दिलीप ने गोरक्षा के लिए सिंह के मुंह में जाना भी स्वीकार किया था, अर्जुन ने ब्राह्मण की गाय की रक्षा के लिए १२ वर्ष का वन-वास भी स्वीकार किया था। आज उसी देश मे हिन्दुओं द्वारा गायों की बर्बादी हो रही है। यहाँ गाय एक व्यान में ७०० पौंड दूध देती है। यूरोप मे गाय एक व्यान मे ६००० पौंड से ७००० पौंड दे रही है, इससे साबित होता है कि गायो के प्रति हमारी लापरवाही बढ़ रही है। कुछ लोगो का कहना है कि भारत मे २१ करोड़ ५० लाख पशुओ मे केवल भैंसो की संख्या लगभग ५ करोड़ है। ७५०,०००,००० मन दूध उत्पादन में से ३५,०००,००० मन दूध केवल भैंस ही देती है।

—— ——

# गाय ही क्यों ?

" प्रभु के यहाँ से भी कदाचित् आज हम असहाय हैं।
इससे अधिक अब क्या कहें, हा! हम तुम्हारी गाय हैं॥
जारी रहा क्रम यदि यहाँ यों ही हमारे नाश का।
तो अस्त समझो सूर्य्य भारत भाग्य के आकाश का।
जो तनिक हरियाली रही वह भी न रहने पायगी,
यह स्वर्ण-भारत-भूमि बस मरघट-मही बन जायगी। "

—श्री मैथिली शरण गुप्त

भारत का ग्रामीण अर्थशास्त्र गाय ही पर अवलम्बित है। 'मातरः सर्वभूताना गावः सर्वसुख-प्रदा' अगर गोधन न रहे तो सृष्टि का विनाश हो जाय। पर आजकल भैंस का प्रचार अधिक हो रहा है और गायों की संख्या बुरी तरह घट रही है। पहले जमाने में गोधन को धन में शुमार होता था पर आज तो गाय को कोई पूछने वाला ही नहीं। एक बंगला लोकोक्ति है—

" सब धन धान, आर धन गाई
टाका कौडी किछु-किछु, आर धन सब छाई। "

अब तो महिष भी धन की गिनती में आने लगा। पर महिष-धन किसी धर्म-ग्रन्थ में नहीं लिखा हुआ है। महिषको धर्म-ग्रंथ में असुर कहा गया है। जिस तरह नकली घी ने

असली घी को बाजार स निकाल दिया उसी तरह भैस भी गायो को बाहर निकाल रही है। महात्मा गॉधी ने कहा है—
" मै दो प्राणियों की हिंसा की अपेक्षा एक की उपेक्षा को पसन्द करता हूँ। हिन्दुस्तान के किसान गाय और भैस दोनों की रक्षा नही कर सकते, अत. उन्हे भैस को छोड़ना पड़ेगा। जिस पशु में दोहरा गुण न हो, अर्थात् जिस वर्ग की मादा में दूध देने की और नर मे हल चलाने की या गाडी खीचने की शक्ति न हो, ऐसे किसी भी पशु का रखना हिन्दुस्तान के लिए भार है। हमें यह नही पुसता कि गाय तो बैलों के लिए रक्खे और भैस दूध व घी के लिए।"

थोड़े से अधिक चिकनाई के लिए भैस पालते है। इसलिए जितना नुकसान गो-वंश का तथा कृषि का भैस ने किया है, कदाचित ही उतना और किसी ने किया हो। सच पूछा जाय तो भैस कहीं भी नहीं पाली जाती। भस दक्षिणी चीन, फिलिपाइन द्वीप पुंज और भारत में अधिक पायी जाती है। वेदो मे भी भैस की चर्चा कही भी नही की गयी है। वेदों ने गाय की महिमा खूब गायी है, इसलिए इसको 'अग्रजा' कहते है। ऋग्वेद मे 'गोर्मेमाता' वाक्य का प्रयोग हुआ है जिसका अथ है गौ हमारी माता है। दुहिता ( लड़की, दुहने वाली ) शब्द गाय के सम्बन्ध रखने के कारण प्रयुक्त हुआ।

भैस की उत्पत्ति के विषय में श्री धमलाल सिंह लिखित गाय और भैस शीर्षक की दन्तकथा मै उद्धृत कर रहा हूँ

जो दक्षिण में प्रचलित है। "दक्षिण के गाँवों की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी पहले जन्म में ब्राह्मण की लड़की थी। ब्राह्मण ने चारों वेदों में निष्णात और सभी प्रकार ब्राह्मण-सा मालूम पड़ने वाले एक आदमी से उसका विवाह कर दिया। उस लड़की को पीछे चल कर पता चला कि उसका पति अन्त्यज है। किसी ब्राह्मण के घर झाड़ू देते-देते उसने वेद-मन्त्र सुन कर याद कर लिये थे। सुन्दर और बुद्धिमान् होने के कारण उसने ब्राह्मणोचित सब कर्म संस्कार आदि सीख लिए थे और वह बाहर से अच्छा ब्राह्मण बन गया था। यह जानकर लड़की को दुःख हुआ और वह सीधे पिता के पास आयी। उसने अपने पिता से पूछा—'यदि कोई मिट्टी का बर्तन अपवित्र हो जाय तो उसे कैसे शुद्ध करना चाहिये ?' पिता ने जवाब दिया,—ऐसा अशुद्ध बर्तन आग में जला कर ही शुद्ध किया जाता है।' लड़की घर लौट गयी और चिता सजा कर उसमे जल मरी। इस सत्य के प्रताप से वह दूसरे जन्म में लक्ष्मी हुई और घर घर पूजी जाती है और वह ब्राह्मण मरने पर भैंसा हुआ, इसीलिए लक्ष्मी के आगे भैंसे का बलिदान होता है।

श्री धीरेन्द्र मजुमदार स्वराज्य की समस्यायें पृष्ठ ४८ में इसकी उत्पत्ति के बारे में इस तरह से लिखते हैं—"पौराणिक युग में एक बार ऐसी ही स्थिति आयी थी। उस समय सारे देश में महिषासुरों की भरमार हो गयी थी और चारों तरफ

त्राहि-त्राहि मची हुई थी। इस कष्ट से मुक्ति पाने के लिए लोग हर तरह से असफल हो रहे थे। आखिर में जब माता भगवती द्वारा महिषासुर का निपात हुआ तभी संतप्त भारत का कल्याण हो सका। आज फिर भारत में वही दशा है। गाँव में महिषासुर की भरमार है। फिर अब आवश्यकता इस बात की हो गयी है कि भगवती माता से महिषासुर का नाश हो। यह भगवती माता कौन है? यह नाम गौ-माता का ही है। अतः यदि आप चाहते हैं कि संतप्त भारत का उद्धार हो तो आज ही से लाखो गो-पालन द्वारा महिषासुर के नाश का कार्यक्रम शुरू करना होगा। इससे धर्म-रक्षा, धन-रक्षा और खेती-रक्षा, तीनों सिद्ध होगी। केवल नारा लगा कर आप नाश से नहीं बचा सकेंगे।"

हर गाँव में भैसों की संख्या बढ रही है। १९४० में भैस की संख्या १, ३१, ३७, ७७४ थी पर आज उसकी संख्या बढ-कर पौने दो सौ करोड़ हो गयी और गायों की संख्या घटकर कम हो गयी। इस गरीब देश में दूध के लिए और खेती के लिए अलग अलग पशु रखना नुकसानदेह है। अतः गो-सेवा करना उचित है क्योंकि गो-रक्षा तो अब भारतीयों से हो ही नही सकती—अब न राजा दिलीप है, न गोपाल कृष्ण। लोभी दुनियाँ में पैसों ही का महत्त्व अधिक रह गया है। यहाँ मै श्री धर्मलाल सिंह जी के लेखों के आधार पर गाय और भैस के गुण दोषो का तुलनात्मक विवेचन कर रहा हूँ—

| गाय | भैंस |
| --- | --- |
| (१) गाय आर्य संस्कृति की पोषक, पुण्य दर्शन तथा दैवी सम्पत्ति है। | (१) भैंस म्लेच्छ संस्कृति की पोषक, अशुभ दर्शन तथा आसुरी सम्पत्ति है। |
| (२) गो-वंश बैल रूप में महादेवजी की सवारी है। | (२) भैंसा—यमराज की सवारी है। |
| (३) गाय के शरीर पर हाथ फेरने से मनुष्य दीर्घायु होता है और खूंटे पर बराबर खाती रहे तो वह सौख्य और शान्ति बढाती है। | (३) भैंस के शरीर पर हाथ फेरने से मृत्यु निकट आती है; खूंटे पर बंधी रहने से दरिद्रता और अशान्ति बढ़ाती है। नजदीक जाने से दुर्गन्ध आने लगती है। |
| (४) गाय की पूँछ पकड़ने से मनुष्य वैतरणी नदी भी पार कर जाता है। | (४) भैंस की पूँछ पकड़िये वह जल मे बैठ जायगी, इसलिये यमपुर ले जानेवाली है। |
| (५) गाय का बछड़ा खेती लदनी आदि के काम यानी धूप, जाड़े—सभी में बहुत काल तक कर सकता है। वह 'बलद' अर्थात् 'बलदाता' कहलाता है। | (५) भैंस का पड़वा किसी काम का नही, धूप बर्दाश्त ही नही करता। पानी में बैठ जाता है। |
| (६) गाय कष्टसहिष्णु | (६) भैंस अतितिक्षु और |

जीव है, अतः वह जल्द बीमार नही पड़ती ।

(७) गाय का गोबर सुंदर खाद है और लीपने से कीड़े मरते है और हवा शुद्ध होती है।

(८) यह अधिक दिनों तक दूध देती है और जल्दी ब्याती है।

(९) यह कम चारा खाती है और सूखे काल का पालन खर्च बहुत कम है। एक चर-वाहा ९-१० गाय तक चरा सकता है।

(१०) यह दस-ग्यारह मास तक दूध देती है।

(११) गाय कम खाकर भी दूध दे देती है, यह चार

पानी का जानवर है, इसलिए जल्दी-जल्दी बीमार पडती है।

(७) भैंस का गोबर खराब महँकता है। इसकी खाद तम्बाकू मे अधिक लाभ करता है।

(८) यह ११-१२ महीने मे ब्याती है और जल्दी सूख जाती है।

(९) यह अधिक चारा खाती है और सूखे काल का पालन खर्च बहुत है। एक भैंस पर एक चरवाहा चाहिए। मेरे गाँव में तो एक भैंस पर एक परिवार लगा रहता है।

(१०) भैंस छः सात मास तक दूध देती है। एक दो मास के बाद अधिकतर भैंस एकसंभू हो जाती है, क्योंकि उसके बच्चे बहुत मरते है।

(११) भैंस दुगुना खाती है और खाये बिना दूध

पाँच बार दूही जा सकती है।

(१२) गाय का सात मास का बच्चा मनुष्य के बच्चे के समान जीता बच जाता है इसलिए यह माता के दूध के समान लाभकारी है।

(१३) इसका मूत्र अमोघ दवा है।

(१४) अंग्रेजी में एक कहावत है—'Cow's milk and honey are the root of beauty (गो-दुग्ध और मधु सौन्दर्य के मूल कारण है।) गाय के दूध में सोना है क्योकि उसका दूध पीला और मलाई भी पीला। गाय का रंग-विरंगा शरीर कितना नयनाभिराम है। धारोष्ण दूध दो घण्टे मे पचता है।

(१५) यह पृथ्वी का जानवर है और मनुष्य का सच्चा मित्र है। गाय के एक एक

नहीं देगी।

(१२) भैंस का बच्चा नही बचता और इसका दूध जवान के लिए भी नुकसानदेह है।

(१३) इसका मूत्र विष समान अमोघ जहर है।

(१४) भैंस के दूध में केवल चिकनाई है। इसके शरीर का कड़ा चमड़ा और बड़ा बड़ा रोयां और काला है इसलिए बदसूरत मालूम पड़ता है। धारोष्ण दूध नौ घंटे में पचता है। भैंस के प्रति १०० बच्चों के पीछे ७५ बच्चे मरते है जब कि गाय के केवल २५ ही।

(१५) भैंस आधा जमीन का और आधा पानी का प्राणी है। अधिक चर्बी के

रोम में लक्ष्मी बसती है। गाय का चमड़ा पतला होने के कारण—सूर्य्य रश्मियों से बलवान प्राण-तत्त्वों का आकर्षण करके अमृतमय दूध देती है।

कारण पानी में रहना चाहता है। चर्बी को बचाने के लिए ठंढ और पानी की जरूरत है क्योंकि मछली चर्बीदार होने के कारण पानी से निकलते ही सूर्य्यताप से मर जाती है। भैंस को धूप बर्दाश्त नहीं होती। इसलिए लोग गर्मी में उसीके मल मूत्र को उसकी पीठ पर लेप करते है।

आज गायों की दयनीय दशा देख कर कहना पड़ता है कि निठल्ले समय में गाय से क्यों नहीं खेत जोते। जब भारत में कोमल स्त्रियाँ खेतो में काम करती हैं तो उससे भी काम ले, पर धुरी के नीचे नहीं जाने दे। बहुत जगह गाय से दाँय गाड़ी, आदि का काम लेते है। गाय की सबसे बड़ी सौत भैंस है। जब से वह चुड़ैल जंगल से आकर घरों में रखी जानी लगी, गाय को हटा कर सुख चैन करने लगी। गाय रूपी दैवी सृष्टि को अस्तित्व विहीन करने के लिए देवताओं से रूठ कर विश्वामित्र ने इस आसुरी सृष्टि का निर्माण किया था। अनेकों ऋषियों ने इसे क्रोध का अवतार माना है और इसलिए उसका बलिदान किया जाता है। भैंस का बलिदान करने का तात्पर्य क्रोध को बलिदान करना है। बिहार में

गाय भंस की संख्या इस प्रकार से है :—

| | |
|---|---|
| सांढ और बैल— | ५, १२६, ३४२ |
| गाय | ३, ३६५, ३४८ |
| बछड़ा | २, ७६७, ७४६ |
| भैसा | ६७७, ४३७ |
| भैंस | १, २७६, ६१० |

उपरोक्त रिपोर्ट सन् १९४५ का ह और इससे पता चलता है कि भैस और गाय किस अनुपात में बिहार में पाई जाती है। बैल ज्यादा है तब गाय कम है और भैंस ज्यादा है तब भैसा कम है। आज भी पश्चिम से पढकर विश्वामित्र की भाँति आये हैं और गाय के बदले बकरी पालने पर अधिक जोर देते हैं। उनकी दलील है कि बकरी कम खाती है इसलिए दूध के लिए पालना अच्छा है क्योंकि खर्च बहुत कम है। बकरी के दूध से काम का संचार होता है इसलिए बकरी के बलिदान की प्रथा चलाई। बकरी मनहूस पशु है और अनाज देते ही झटपट खा जाती है। गाय देरी से अनाज खाती है और उसमें सात्विक गुण है। बकरियों को तपेदिक अधिक होती है। २० वर्ष पहले बम्बई में एक फार्म खुला था जिसमें सभी बकरियों को तपेदिक से पीड़ित देखा गया। गाय के, दूध में माता के दूध के समान गुण है। गाय के शरीर में दैवी विद्युत्-शक्ति का भो चमत्कार विशेष है। हमारे शास्त्रों ने लिखा है कि गो स्पर्शनम् आयु वर्द्धनम्

अर्थात्—गाय के शरीर पर हाथ फेरने से बिजली के पारस्परिक आदान-प्रदान से मनुष्य की आयु बढ़ती है। देहातों में भी बूढ़े लोग कहते रहते हैं—

विप्र टहलुआ छेड़ी धन
औ' बेटी की बाढ।
ताहू से धन ना घटे,
करो बड़ों से राड़॥

अनेकों कहते है कि विदेशों में गाय के बिना काम चल जाता है तो हमारे देश में क्या काम नही चलेगा? सचमुच हमारे यहाँ नहीं चलेगा। कानून द्वारा भी गो-बध बन्द करने पर गाय की दशा नहीं सुधरेगी। हिन्दू धर्म की कसौटी है कि वह भैंस को हटा दे और गाय पाले। पर जहाँ खेती भैंसा के बिना नहीं हो सकती है वहाँ भैंस—भैंसा पाल तो कोई दोष नहीं। केवल 'गोबध बन्द करो' का नारा लगाने से काम नहीं चलेगा। गो-सेवक तथा हर एक किसान को 'गो रक्षा कैसे हो' उसके मुताबिक चलना पड़ेगा तब ही गो-वंश की वृद्धि होगी। यदि ऐसा नहीं किया गया तो गो-वंश का नाश १५—२० वर्षों में हो जायगा। गरीब देश में गाय और भैंस कोई अलग नहीं पोस सकता है। स्वराज्य से क्या फायदा हुआ जब हम अन्न और वस्त्र के लिए बेहाल है। अन्न, वस्त्र की पूर्ति गोवंश के उद्धार द्वारा ही हो सकती है। अतः इस काम में विलम्ब न करे—'मरे कौन जब जीती गाय,

जीये कौन जब मरती गाय।' आप भैंसपालन छोड़, गोपालन करें। 'जब सम्पत्ति हो थोड़ी, तो पाले गाय और घोड़ी' की कहावत को चरितार्थ करें। सामुदायिक पद्धति से गोपालन करने में बड़ा लाभ होगा। प्रान्तीय सरकार को नकली घी पर रोक लगानी चाहिए। पूंजीवाले की परवाह नहीं करनी चाहिए।

---

# अब तो चेतें !

"हिन्दुस्तान किसानों का मुल्क है। खेती का शोध भी हिन्दुस्तान में ही हुआ है। गाय-बैलों की अच्छी हिफाजत पर हिन्दुस्तान की खेती निर्भर है। हिन्दुस्तानी सभ्यता का नाम ही 'गो-सेवा' है। लेकिन आज गाय की हालत हिन्दुस्तान में उन देशों से कहीं अधिक खराब है, जिन्होंने गो-सेवा का नाम नहीं लिया था। हमने तो लिया, पर काम नहीं किया। जो हुआ, सो हुआ। लेकिन अब तो चेतें।"— श्री विनोवा भावे

हिन्दुस्तान में अपनी मां के अलावे भी तीन माताएं और मानी जाती हैं—गो, माता, भू-माता और गंगा-माता। गो-माता दूध पिला कर पोसती है और भू-माता और गंगा-माता फसलों को उपजा कर अन्न का भण्डार भरती है। आज भुखमरी से नर-नारी सभी व्याकुल हैं, इससे पता चलता है कि हमने गोमाता और भूमाता पर ध्यान नहीं दिया। यहाँ दूध का उत्पादन और अनाज की पैदावार और देशों से घट रही है, इसका ज्वलन्त उदाहरण है। जहाँ नस्ल सुधार हुआ है वहाँ के पशु अधिक दूध देने लगे हैं—जैसा कि निम्न-लिखित आँकड़ों से प्रत्यक्ष है :—

| देश | .... | प्रति गाय का वार्षिक उत्पादन |
|---|---|---|
| डेन्मार्क | .... | ८७ मन  २२ सेर ८ छटाँक |

| | | |
|---|---|---|
| इंग्लैण्ड | .... | ६९ मन २८ सेर |
| जर्मनी | | ६६ मन १२ सेर ८ छटाँक |
| भारतवर्ष | .... | ६ मन २२ सेर ८ छटाँक |

डेन्मार्क में सन् १९०० में प्रत्येक गाय वार्षिक औसतन दूध ४८५० पौण्ड देती थी। किन्तु नस्ल सुधार के बाद परिणाम स्वरूप सन् १९३४ में प्रत्येक गाय ७०५५ पौण्ड देने लगी।

भारत में गोधन के ह्रास का कारण अंग्रेजी राज्य हुआ। अब स्वदेशी राज्य हुआ, पर रुपये की कमी के कारण विकास के काम में नहीं लगाया जा रहा है। बहुत से काम भारत के मत्थे पर आ गये है—(१) शरणार्थियों का प्रश्न (२) काश्मीर का झगड़ा (३) पाकिस्तान के साथ नोक-झोंक। गोपालन में सरकार की उदासीनता ही के कारण पशु-विशेषज्ञ सर आर्थर ओलभर के अनुसार ८० करोड़ मन दूध उत्पादन होने लगा जो यहाँ की आबादी के ख्याल से बहुत कम है। यदि दूध के अभाव में लोग अल्पायु और अल्पवीर्य हो जॉय तो आश्चर्य करने की कौन बात होगी? जब तक गोवंश की वृद्धि और सुधार न होगा, ग्रामीणों की आय की वृद्धि और ग्राम-सुधार न हो सकेगा। यहॉ की सरकार और इंग्लैण्ड की सरकार गोपालन में क्या खर्च करती है—आप जरा गौर फरमायें:—

| | भारतवर्ष | | इंग्लैण्ड |
|---|---|---|---|
| जन-संख्या | ४० करोड | .... | ५ करोड़ |

| गो वंश | ९ करोड़ | १ करोड़ |
|---|---|---|
| गो वंश तथा दूध की उन्नति पर वार्षिक खर्च | ६२ लाख रुपये | ५ करोड़ रुपये |
| प्रति मनुष्य खर्च | ढ़ाई आने | १ रुपये |
| प्रति गाय खर्च | ११ आने | ५ रुपये |
| प्रति मनुष्य दूध का खर्च | १$\frac{१}{४}$ छटाँक | २० छटॉक |

दूध की कमी के कारण यहाँ जानवरों का अभाव नहीं है। १९३५ के सरकारी रिपोर्ट के अनुसार २१५ करोड़ जानवर यहाँ है जिसमें वर्मा भी शामिल है जो समस्त संसार की पशु संख्या की तिहाई है। यहाँ पशुओं की आबादी बहुत घनी है—१०० एकड़ पर ६७ पशु रहते हैं, मिश्र में २५, चीन में १५, जापान में ६। इसका परिणाम यह हुआ कि यहाँ पशु ऊच्च कोटि के नहीं है। यहाँ बैलो से जरूरत से ज्यादा काम लेते हैं। यहाँ दूध का उत्पादन ६०० पौण्ड एक ब्यान में है—पर बृटेन में ५४०० पौण्ड है। चेष्टा करने पर उत्पादन बढ़ाया भी जा सकता है क्योंकि फिरोजपुर ( उत्तर प्रदेश ) में एक ब्यान में औसतन जहाँ २९० पौंड दूध होता था; अब ७०० पौंड होने लगा है। ३० गायों का ८००० पौंड, १६ गायों का ९००० पौंड और ६ गायों का १०००० पौंड तक दूध पहुँच गया था।

# गो-रक्षा कैसे हो ?

"हिन्दुओं का यह समझना बिल्कुल गलत है कि कुर्बानी के अवसर पर दस-पाँच मुसलमानों के सिर फोड़ डालने या कहीं-कहीं पिंजरापोल गो-रक्षिणी सभाएँ आदि कायम कर देने से गोरक्षा की समस्या हल हो जाती है। बहुधा देखा तो यहाँ तक जाता है कि पिंजरापोलों और गो-रक्षिणी सभाओं के संचालक ही चुपके-चुपके निरुपयोगी पशु कसाइयों के हवाले कर देते हैं। तथ्य तो यह है कि गो-रक्षा की समस्या गो-पालन की यथोचित विधि पर ही अवलम्बित है। परन्तु इस ओर कौन ध्यान देता है ? यहाँ तो गायों के भाग्य में एक मुट्ठी स्वच्छ घास और एक घूंट स्वच्छ पानी के लिए भी तरस तरस कर मरना बदा है। यदि गाये खूब हृष्ट-पुष्ट और दुधार हों, तो सहज ही उनकी मूल्य बढ जाय और फिर उनको कसाई की छूरी तले पहुँचने की नौबत न आये। कसाई तो बहुधा वे ही गायें मारते हैं, जो निरुपयोगी होती हैं और उनको अल्प मूल्य में मिल जाती हैं।"

—श्री जहूरबख्श

गो-रक्षा का प्रश्न भारत में अंग्रेजों के आने से और भी जटिल हो गया। अंग्रेजों को गायों का गोश्त, चमड़े वगैरह की जरुरत रहती थी। वे अपनी यह जरुरत मुसलमानों

द्वारा पूरी करना चाहते थे और मजहबी आजादी के नाम पर गोबध के सम्बन्ध में उनकी पीठ थपथपाते रहते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि मुसलमान भी गोबध को अपने धर्म और ईमान का भाग समझने लगे। हिन्दुओं ने गाय की उपयोगिता पर ध्यान न देकर दुर्भाग्य-वश धर्म का सहारा लिया। धर्म के नाम पर उसकी रक्षा करनी चाही और लाठी के जोर से सफलता प्राप्त करनी चाही। हिन्दुओं को कुर्बानी के अवसर पर जोश उमड़ उठता था और रोज जो हजारों गायें कटती थीं, उस पर उनका ध्यान नहीं जाता था। यही कारण था कि हिन्दुओं और मुसलमानों मे भेद भाव की खाई चौड़ी होती गयी।

कुर्बानी का यथार्थ उद्देश्य अपने को कुर्बान करना था इस्लाम् दुनियाँ में अमन और सलामती का अलम-बरदार ह और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपने अनुयायी को बड़ी से बड़ी कुर्बानी करने की आज्ञा देता है। इसी अभ्यास के लिए वर्ष में एक बार कुर्बानी की जाती है कि उनको अमन कायम रखने के हिताथ मरना और मारना भी पड़े तो पीछे नहीं हटे। कुर्बानी मांस खाने के निमित्त नहीं किया जाता है, पर मुसलमान मांस खाने के निमित्त इसे करते है।

कुरान शरीफ में दुम्बे की कुर्बानी ही सही मानी में कुर्बानी है। हिन्दुओं में भी बलिदान को प्रथा है। वह बकरे या भैंसे पर जाकर खत्म हो जाती है, जो मुसलमानों की

कुर्बानी से बहुत-कुछ समता रखती है। बकरे या दुम्बे की कुर्बानी में तो एक ही आदमी का हाथ रहता है परन्तु ऊँट और गाय की कुर्बानी में एक से अधिक व्यक्ति शामिल होते हैं। जहूरबख्शजी लिखते हैं कि "इससे पता चलता है कि सबको अपने ही हाथों से कुर्बानी करनी जरूरी नहीं है। ऊँट की कुर्बानी का प्रमाण तो हजरत इब्राहीम के चरित्र से ही प्राप्त हो जाता है, यद्यपि वह कुर्बानी उन्होंने अपने ही हाथो से की थी और इसमें कोई दूसरा व्यक्ति उनका साझेदार नही था, तथापि अल्लाह की ओर से यह कुर्बानी अस्वीकृत कर दी गयी थी। अब गाय की कुर्बानी का प्रमाण खोजना चाहिए। इतिहास के पाठक भलीभांति जानते हैं कि इस्लाम महान् खलीफा प्रजा-पालन की दृष्टि से बेमिसाल थे। प्रजा की भावनाओं का आदर करते थे। हो सकता है कि उनकी सल्तनत में कोई हिन्दू न हो। बस, यही कारण हो सकता है, जिसके आधार पर उन्होने दुम्बे के साथ-साथ गायों को भी कुर्बानी योग्य ठहरा दिया हो—हालाॅ कि इस तरह का कोई प्रमाण पाया नहीं जाता"। वे आगे लिखते हैं कि "मुसलमानों को हिन्दुओं की धार्मिक भावना को सम्मान करना चाहिए क्योंकि इस्लाम अपने अनुयायी को स्पष्ट रूप से शिक्षा देता है कि तू अपने पड़ोसी की धार्मिक भावनाओं का आदर कर और उसे किसी भी तरह ईजा न पहुँचा। पर मुसलमानों ने हिन्दुओं की भावना के विरुद्ध गाय को सरे आम जिबह

करके अपने साथ रहने वाली कौम के दिल में मुहब्बत का ख्याल पैदा करने के खिलाफ नफरत का बीज बो दिया है।"

इस्लाम में भी गाय को और पशुओं से श्रेष्ठ माना गया है। यहाँ तक कि कुरआन-शरीफ का 'सूरे-बकर' उसकी महत्ता से ओत-प्रोत है। हिन्दू लोग तो गोदान के रूप में कुर्बानी करते हैं और मुसलमान मारकर। अतएव मुसलमान भी कुर्बानी ऐसी करें कि जिससे किसी की आत्मा को चोट न पहुँचे और प्रेम-भाव बढ़ता जाय। मुस्लिम बादशाहों ने हिन्दू भावना को देखते हुए गोबध बन्द करवा दिया। इस्लामी हुकूमत अफगानिस्तान में मौजूद है, जहाँ मुट्ठी भर हिन्दुओं की धार्मिक भावना के सम्मानार्थ गाय की कुर्बानी कानूनन वर्जित है। पहले जमाने में मन्दिर या मसजिदों के पास गाने बजाने में झगड़ा नहीं होता था। बहुत से मन्दिर और मस्जिद अगल-बगल में बने हुए है।

यह समझना कि गाय से हिन्दुओं को लाभ होगा और मुसलमानों को नहीं, अच्छा नहीं है। संसार की प्राकृतिक वस्तुओं से सभी को लाभ या नुकसान हो सकता है। किसी चीज से एक फिरके को फायदा हो, ऐसा नही हो सकता। गाय यदि उपयोगी पशु है तो सभी मानव के लिए चाहे वे किसी धर्म को मानते हों। साँप दुःखदायी है तो सभी के लिए। उसी तरह बीमारियाँ नुकसानदेह है तो सभी प्राणियों के लिए। हिन्दू वनस्पति घी खा

रहे हैं तो क्या मुसलमानों को उसको खाने का मौका नहीं मिलता है ? "मुलतान में हजरत नूर मोहम्मद साहब कारबाई के नेतृत्व में 'बाब अल-मसादात, पाकिस्तान' नामकी संस्था खोली गयी है। उसका ध्येय गो-रक्षा तथा हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य का है। मध्यप्रान्त में मुसलमानों ने गौरक्षा के लिए क्या नहीं किया ? जब मध्य प्रान्त की सरकार ने डेविन पोर्ट कम्पनी को सागर जिले के रतौना नामक स्थान में बहुत विशाल कसाईखाना खोलने की आज्ञा दे दी थी, जिसमें प्रतिदिन लगभग दस हजार गाये मारने का आयोजन होने वाला था तब जबलपुर के मौलाना ने इसके विरुद्ध आवाज उठायी तथा मौलाना चिरागउद्दीन साहब और अब्दुल गनी साहब ने भी उनका साथ दिया जिसके फलस्वरूप डेविन पोर्ट कम्पनी की योजना कागजो पर ही लिखी रह गई।"

जिस तरह गो-रक्षा की समस्या में मुसलमान विफल रहे हैं, उसी प्रकार हिन्दू भी असफल रहे हैं। हिन्दू लोगों ने लाठी के सहारे गो-बध बन्द करबाना चाहा था, इसीसे यह अब तक नहीं रुका। हिन्दुओं ने अभी तक गोरक्षा का अर्थ ही नहीं समझा। गोरक्षा करने वाले दूसरे को मारते नहीं हैं, खुद मरते है। राजा दिलीपने अपनी नन्दिनी को बचाने के लिए स्वयं अपने शरीर को सिंह के सामने समर्पित कर दिया। गोसेवा करने ही वाले दुनियां में कम है तो गोरक्षक कहाँ पायेंगे ? हिन्दू लोग मुसलमान पर इसलिये बिगड़ते हैं कि वे

गोमांस खाते हैं। पर हमारे हिन्दुओं में निम्न श्रेणी के लोग उनसे भी अधिक मांस खाते हैं और कसाइयों के व्यवसाय में दिलसे हाथ बॅटाते हैं। कसाइयों के पास गाय पहुँचाने वाले हिन्दू लोग है जो उनके पास पहुँचाते है या उनके हाथ बेचते हैं पर उसमें हिन्दुओं का पारा नहीं चढ़ता। लेकिन मुसलमानने अगर एक भी जानवर का बध किया तो हम आग बबूला हो जाते हैं।

अच्छा तो यही है कि भारतवासी एक भी जानवर को न मारे। हिन्दू भाई तथा सरकार को चाहिए कि कसाइयों के जीवन-निर्वाह के लिए दूसरा साधन ठीक करे। पूंजीपतियों को भी इसमें हाथ बॅटाना चाहिए क्योंकि उनकी पूंजी सिर्फ गरीबो के शोषण का अस्त्र नहीं है। अब गो बध के मामले में हिन्दू और मुसलमान में समझौता होना जरूरी है। हमारे देश में सभी त्योहारो को राष्ट्रीयता के रूप में ढालने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि थोड़ी सी उदारता से काम लिया जाय, तो हमारे सभी त्योहार सरलता पूर्वक राष्ट्रीयता का चोला धारण कर सकते है। सभी हिन्दू न बलिदान में भाग लेते हैं न सभी मुसलमान कुर्बानी में। सौ में एक मुसलमान बकरे और दुम्बे की कुर्बानी करते है और हजार में एक गाय की। यदि मुसलमान बकड़े ही पर सन्तोष करें तो हिन्दू अवश्य बकरीद ऐसा बड़ा त्योहार में मुसलमानों को साथ दे सकते हैं, मुसलमान लोग गाय का मांस इस लिए खाते हैं

कि वह बकरी या दुम्बे से चार पाँच गुना सस्ता पड़ता है। बकरी का मांस भी स्वादिष्ट होता है, अतएव हिन्दुओं को मांस खाना नहीं चाहिए। तभी गाय की रक्षा हो सकती है। मैं तो बकरी की भी रक्षा चाहता हूँ क्योंकि वह दूध देती है और कोई पाप भी नहीं करती जिसके कारण वह मारी जाय। अच्छा तो यही है कि एक दिन के मांस खाने की अपेक्षा हजार दिन दूध पीयें। मांस से दूध स्वाद और गुण में बहुत आगे बढ़ा हुआ है। अतएव हिन्दू-मुसलमान को दिल खोल कर मनोमालिन्य को मिटा लेना चाहिए जिससे शान्ति का वातावरण समस्त भारत में फैल जाय।

गो-रक्षा कैसे कर सकते हैं, इसके बारे में संक्षेप में हम नीचे उल्लेख कर रहे है। (१) जनता को अपने-अपने इलाके में अपनी गृहस्थी के काम के लिए गाय पालना चाहिए (२) गाय ही का दूध का इस्तेमाल करें (३) गो मांस तथा दूसरे मांस का सर्वथा त्याग करें। (४) बध किये गये पशुओं के चमड़ों को कभी इस्तेमाल में न लावें (५) गोग्रास के रूप में कुछ-न-कुछ दें (६) गोरक्षा के लिए हर एक पर्वों में गो-पूजन हों (७) दुग्धालय और नस्ल-सुधार के काम हों। अल्प वयस्क साँढ़ से गाय को मेल न करावें (८) पशु अस्पताल का भी प्रबन्ध हो (९) भूखी, सूखी गायों तथा बछड़ों का उद्धार हो (१०) क्रोम के जूते, फैन्सी चमड़े और उससे बनी वस्तुओं का उपयोग कभी न करें क्योंकि ऐसे चमड़े के लिए

कई बार जीवित पशुओं का और उनके कोमल बच्चों का बध किया जाता है। (११) हरे चारे का उत्पादन अधिक हो (१२) गोचर भूमि का यथोचित प्रबन्ध हो। (१३) बढ़िया नस्ल का सॉढ का उपयोग करनेसे दूध में वृद्धि तथा खेती का उत्ताम बैल भी तैयार होता है । (१४) वनस्पति घी या बनावटी दूध के पाउडर का इस्तेमाल कम करें। वनस्पति घी का फसाऊ नाम बदल कर जमाया हुआ तेल रखने से काम नहीं चलेगा। वनस्पति तेल को जल्दी रंग देना चाहिए या इसके कारखाने को हटा ही देने में देश का कल्याण है। (१५) मनुष्य केवल रुपये को ही धन न समझें—गाय (Cattle) गोधन कहलाता है और अंग्रेजी में Cattle का मतलब धन होता है। (१६) हर एक गॉव में साफ सुथरे तालाब और चारागाह हो। (१७) सरकार द्वारा पशु बध पर रोक लगे। (१८) बछड़ों और बछियों के लिए पर्याप्त दूध छोड़े और उनका भी पालन पोषण ठीक तरह हो क्योंकि वे ही तो बैल और गाय बनते हैं। (१९) खल्ली और तिलहनो का निकास बन्द हो। इससे पशुओं को भी खाने के लिए नहीं मिलता तथा जमीन भी बजर होती जाती है। (२०) घानियों का तेल इस्तेमाल हो क्योकि खल्ली मे कुछ तेल का अंश रहने से पशुओं की तन्दुरुस्ती अच्छी रहती है। (२१) पैसा कमाऊ (Money crop) फसल पर किसानों को ध्यान अधिक न देकर ऐसी चीज की उपज करनी चाहिए कि पशुओ को चारा

भी हो। (२२) किसान पशुओं का चारा न बेचें, हो सके तो ज्यादे रहने पर किसी गोपालक को दें। (२३) मोटर-यंत्र आदि का इस्तेमाल नहीं करना चाहिए, इनसे बैलों का वाहन और खेती का काम छिनता है (२४) पशुओं से अन्दाज से काम लें (२५) चमड़े का निर्यात न हो (२६) पशुओं की खाद का उपयोग हो। इससे अच्छी फसल पैदा होती है। (२७) हर घर में एक गाय जरूर रहे (२८) भैंस की जगह गाय पालें (२९) खराब नस्ल का साँढ न छोड़ें (३०) पिजरापोलों की सुधार हो और अच्छे जानवरों के रखने का इन्तजाम हो। यह न कि लूले लंगड़े जानवर भरे रहें। (३१) गो-रक्षा के लिए खुद मरना चाहिए किसी को मारना उचित नहीं, क्योंकि मारने से मारनेवाला और उत्तेजित होकर बध करना शुरु कर देता है। (३२) हड्डियों को विदेश जाने से रोकना चाहिए क्योंकि यहाँ का फासफोरस बाहर चला जाता है। इसके बचाने से बनावटी खाद लेने की नौबत नहीं आवेगी और पैसे भी बच जायँगे। बचे पैसे से गाय ही की खुराक में वृद्धि करें। (३३) शहरों में यदि जानवर जा रहा हो तो रेल का भाड़ा अधिक लिया जाना चाहिए और वहाँ से लौटते समय भाड़ा नाम मात्र का लिया जाय क्योंकि ऐसा नहीं करने से जानवर वहाँ दूध सूख जाने के कारण कसाई खाने में चला जाता है (३४) खस्सी बनाने के लिए बरडीजो का चिमटा मिलता है जिससे बाछा को बिना खून निकले बधिया हो जाता है। (३५) गर्भिणी

गायों का बध न हो। (३६) फूँका देकर दूध निकालने की प्रथा बन्द हो। कीमती गाय के बछड़े के व्यापारी कसाई के हाथ से बेच देते हैं। बिना बच्चे के उनका दूध कृत्रिम उपायों द्वारा दुहते है। यदि गाय दूध नही देती है तो फूँका देकर दूध लिया जाता है। गुह्येन्द्रिय में हाथ डाल कर नमक डालने की क्रिया को फूँका कहते है।

---

# पशुओं का सुधार कैसे होगा ?

"यदि हमें अच्छी नसल के पशु पैदा करने हैं तो इस दिशा में उचित कदम उठाने चाहिये। बाल्मीकि ऋषि के समय में भी हमारे देश के लोग अच्छी और बुरी नसल के घोड़े और अन्य पशुओं की पहाचन रखते थे। जो लोग वर्ण-व्यवस्था को कल्याणकारी समझते थे, वे पशुओं के वर्गीकरण की व्यवस्था पर अवश्य ही ध्यान देते होंगे। आज हमें अपनी भूमि और पशुधन को फौरन उन्नत करना है।"

—श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी।

आज सभी लोग ब्राह्मण, क्षत्रिय बनने की धुन में व्यग्र हैं। कोई सिंह, कोई शर्मा और कोई यादव अपने नाम के पीछे जोड़ रहा है; लेकिन वे इस तरह की व्यर्थ पदवी जोड़ कर अपने पूर्वजों को कलंकित करना चाहते हैं। हमलोग शक्ति हीन हैं। जब हम एक गो-माता की भी रक्षा नहीं कर सके तो विश्व कर्मा, यादव, वशिष्ठ के गोत्र या वंशज रहने से क्या होगा ? वे तो यज्ञ हवन करते थे, परोपकारी थे, संयमी थे पर अब हम वैसे न रहे। अतः केवल नाम के ऊँचे बनने से गो-माता की रक्षा नहीं होगी। कितनी दुःख की बात है कि हम परिवार में एक माता को भी अच्छी तरह से नहीं खिला पिला सकते जिस पर हमारा जीवन अवलम्बित है ! गाँव के हरि भाई ने कहा

कि मै तो अहीर हूँ—अहि का मतलब होता है सॉप और ईर का मतलब होता है नाथने वाला—श्रीकृष्ण। मैने कहा कि अहीर का मतलब गो का नाथने वाला श्री कृष्ण रखते तो और भी उत्तम होता, क्योंकि आपने सॉप को नथवा कर उनका बड़प्पन साबित किया—मैने उनसे गौओ को नथवा कर।

मै किनको दोष दूँ ? दोष देने लायक कोई नही है। जब यहॉ का रंग-ढंग बदल गया, श्रम की प्रतिष्ठा उठ गयी और बुद्धि जीवी तथा निठल्लू व्यक्तियो का समाज में आदर होने लगा—तभी से उपाधियो पर भार पड़ने लगा। पृथ्वी-राज और जयचन्द के पहले सिंह, चौधरी को कोई पूछता ही नही था। सिद्धार्थ, महावीर और अशोक के नाम के पहले कौन 'मेहता' की उपाधि लगी हुई है ? यदि किन्ही को उपाधि ही का शौक है तो गर्ग संहिता मे जैसी बात कही गयी है, वैसी ही उपाधि धारण करे तभी पृथ्वी की रक्षा होगी—जिस गोपाल के पास नौ लाख गाये हो उसे 'नन्द', जिसके पास पॉच लाख गाये हो उसे 'उपनन्द' जिसके पास दस लाख गाये हो उसे 'वृपभानु', जिसके घर एक करोड़ गायें हो उसे 'नन्दराज' और पचास लाख गायो वाले को 'वृषभानुवर' कहते है"। वास्तव मे कृषि-देश के लिए सबसे उत्तम उपाधि गोप ही है—गोप का मतलब श्रीकृष्ण तथा कृषक दोनों होता है (गो का अर्थ है गाय तथा पृथ्वी)।

यदि हम हिन्दुस्तान के पशुओ का नस्ल सुधारना चाहें तो

कम से कम ३५ साल लगेगा। थारपारकर साँढ, पटना, हरियाना साँढ, आरा और गया तथा बछौर साँढ छोटानागपुर के लिए उपयोगी है। एक साँढ एक गाँव में ३-४ साल से अधिक नही रखना चाहिए। जैसे ही ४ साल से ऊपर हो जाय, आँख मूंद कर उसे सरकारी फार्म या गोरक्षिणी में भेजवा देना चाहिए—अधिक साल तक एक गाँव में रहने से उसकी संतान, रोगिनी और निर्बला होती है जिस तरह से मनुष्य में पायी जाती है।

अधिक साँढ गाँव में रखना अच्छा नही है। ५० गाय पर एक साँढ रखना उत्तम होता है। खराब साँढ गाँव में रहना नही चाहिए, अच्छा है कि आप उसे दूसरी गोरक्षिणी मे रख आवे क्योकि मारना और आँख फोडना अच्छा नही है। गाँव में रहने से गाँव की फसल भी बर्बाद हो जाती है।

भारत में पशु-पालन से खेती के बराबर आमदनी होती है। विभाजन के पहले भारत में अनुमानतः १३ करोड़ ६० लाख गाय-बैल और ४ करोड़ भैंस-भैंसे थे। नस्लो में सुधार करने का मतलब है कि दुधार गाय तथा बैलों का भी सुधार हो। विभाजन के कारण भारत में गायों की नस्ला की संख्या में बहुत कमी हो गयी है, उनकी वृद्धि और उन्नति करना है। विभाजन के कारण लाल सिन्धी, साहीवाल और थारपारकर जाति के पशु पाकिस्तान में रह गये—फिर भी कुछ भारत में है, जिनकी सहायता से नस्ल सुधार सकते है। भारवाही नस्लों से

उत्तम प्रयोजनीय पशु पैदा किये जा सकते है। कगायम और कोकरेज नाम की दो नस्ले पहले केवल बोझ खीचने के ही काम आती थीं—अब इनसे दोनों काम होता है।

हमारे जानवरों के कमजोर होने का कारण यह है कि दिन मे चरने के बाद आँटी निबारी दे देते है। अतएव गोधन को मजबूत रखने के लिए विशेष कर निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए। बछरू को दिन भर में तीन बार तथा पाँच सेर से अधिक दूध नही पीने देना चाहिए। बिना सींग की गाय बड़ी सूधी होती है और खिलाने-पिलाने में मरखंड नही होती है, इसलिए बछिया को बिना सींग की बनानी हो तो जन्म के १५-२० दिन के बाद कौस्टिक पोटास सीग निकलने की दाढ़ में मल देनी चाहिए तथा भेसलीन लगा देनी चाहिए। ओकसाइड पाउडर ऊपर से छींटना चाहिए। बाछी को छः मास तथा बाछे को ८ मास के होने पर अलग २ रखना चाहिए। जब बाछी बढ़कर ६ या ७ मन तौल की हो जाय तब साँढ़ के पास ले जाकर संयोग करा देनी चाहिए।

साँढ को डेढ़ सेर तक अनाज तथा १५ सेर तक हरा चारा देना चाहिए। खुली हवा में टहलाने से साँढ मोटा ताजा रहता है। ज्यादा मोटा होने लगे तो अनाज खिलाना कम कर देना चाहिए अथवा एकदम बन्द कर देना अच्छा है। हमेशा संयोग करनेवाले साँढ को आध सेर अनाज रोज बढा देना चाहिए यानी दो सेर अनाज प्रति दिन देना चाहिए।

गाय जब आठ महीने की गाभिन हो जाय तो बछरू को उसके पास से अलग रखना चाहिए। गाभिन गाय को मालिश कराना और थन आदि सुहलाना जरूरी है। दुधार गाय को तो बच्चे जनमते तक दुहना चाहिए क्योंकि थन में दूध छोड़ने से गाय को नुकसान पहुँचता है। गाभिन गाय को अधिक हरा चारा देना चाहिए—८ मास के बाद दो सेर, नौ मास के बाद आधा सेर, दाना बढाते जाना चाहिए ताकि प्रसव के समय तक उसको पाँच सेर मिलता रहे अथवा प्रति एक सेर दूध की उत्पत्ति पर आध सेर दाना देना चाहिए। दाना की मिलावट इस प्रकार होनी चाहिए—जई जौ, या मकई ३० भाग, चना या दलहन २५ भाग, खल्ली २५ भाग, चोकर २० भाग। पशुओं के शरीर की प्रति सवा मन तौल पर आध सेर दाना देना जरूरी है। सभी दाना को पीस कर छः घंटे फुलाकर देना चाहिए। दुहने के समय दाना और बाद में सूखा चारा देना उत्तम है। कम दूध देनेवाली गाय को तीसी की खल्ली खिलाना ज्यादा अच्छा है। प्रसव के तीन महीने के बाद गाय को साँढ से संयोग कराने से गाय सालों भर दूध देती रहती है और सूखे काल का पालन खर्च कम हो जाता है। यह हिसाब बड़े जानवरो के लिए है। छोटे या मँझौले के लिए जरूरत के अनुसार कमी बेशी करनी चाहिए।

किसान पशुओं को क्या खिलावे, कितना, कब और कैसे खिलावे? उसका सरल तरीका बता रहा हूँ। जानवर को

सर्वप्रथम इस नियम से वजन कर लेना चाहिये। श्री एस० के० सेन, एनीमल हसवैंडरी आफिसर, बिहार लिखते है—शरीर की तौल मालूम करने के लिए सबसे उत्तम तरीका यह है कि पशु की गर्दन के पास से पूँछ के पुट्ठे तक की लम्बाई (ईंच मे) का उसके पिछले दोनो पॉव के निकट थन के नजदीक बीच से ऊपर चारो तरफ की गोलाई (इंच में) को वर्गफल बनाकर गुणा करके तीन सौ से भाग देना है और बाकी बचे उतने आधा सेर होंगे। वही पशु की तौल हुई।"

$$\text{वजन} = \frac{\text{लम्बाई} \times (\text{घेरा})^{२}}{३००} = \text{पौंड}$$

जितने वजन का जानवर हो उतना ही सेर सूखा तथा हरा चारा खिलाना चाहिए, जैसे नौ मन का जानवर है तो ९ सेर सूखा और हरा चारा दोना शाम में देना चाहिए। हरा चारा सूखा चारा की तिहाई देना चाहिये। ९ सेर में ३ सेर हरा चारा देना चाहिए। बरसीम, हाथी घास, क्लोभर, सोयाबीन का इस्तेमाल हरे चारे के लिए कर सकते है। एक एकड में २००० मन बरसीम चारा हो सकता है । जाड़ा और गर्मी के लिए बरसीम अच्छा है। हाथी घास यदि पानी का प्रबन्ध हा तो बारहो महीना हो सकता है। यदि किसी जगह हरे चारे की पैदाबार नही हो सकती है ता साइ-लेज (Silege) हरे चारे का आचार जिसे कहते है प्रबन्ध कर सकते है। सूखे चारे से पशुओं की वृद्धि नही होगी। ताजी

और हरी घास जरूर खिलानी चाहिए। अन्य देशों में हरी घास खाद कूप (Silo) में रख कर निठल्ले दिनों में पशुओ को खिलाते हैं।

साइलेज से अनेकों लाभ है। अकाल समय के लिए यह हरा चारा हो जाता है। हरे चारे के अभाव में जानवर दुर्बल हो जाते है अतएव इससे हृष्ट पुष्ट रहेगा। साइलेज चारा खाकर पशु बहुत दिन तक दूध देते हैं। यह जल्दी पचता है। इसमें पाषण-तत्त्व अधिक रहते है। यह मामूली चीज घास-पतवार से तैयार हो जाती है। खाद कूप ( कोठार ) बनाने का नियम यह है कि पानी की सतह से २ फीट ऊँचे पर साइलेज का गड्ढा होना चाहिए, १० फुट चौड़ा और ७ फुट गहरा। गहरा जितना हो उतना ही अच्छा है। साइलो की दीवारें ईंटों से पक्की बनवा लेनी चाहिए। उसके बाद चूने या गोबर से पलस्तर या लीप लेना चाहिए। मोटी घास की पाँच छः इंच मोटी तह बिछा कर कुट्टी किया हुआ चारा १ फुट ऊँचा बराबरी से फैला देना चाहिए। फिर १० फीट मे आधा सेर के हिसाब से नमक डालना भी जरूरी है। नमक डालने से चारा सडता नहीं और खाने में स्वादिष्ट हो जाता है। लेक्टिक एसिड फर्मेण्टेशन के ढंग की गंध आवे जो खट्टे-मट्ठे जैसी होती है, तो समझना चाहिए कि घास अच्छी तरह तैयार हुई है। साइलेज मकई, बाजरा, मसूरिया जनोर के डंटल से तैयार होता है यदि कुट्टी काट कर खाद कूप में ऊपर

बताये अनुसार रक्खे और भरने के बाद घास देकर मिट्टी से भर दे।

जब हरे चारे का अभाव हो तो हरे चारे का आचार सूखे चारे के $\frac{१}{३}$ भाग में मिलाकर दे सकते है। हरा आचार जानवर खूब खाते है। साइलेज में प्रोटीन की मात्रा बहुत कम रहती है। इसलिए उसे खिलाने में उसमें खल्ली, अनाज में मिला देना चाहिए। पशुओं को खिलाते समय दिन भर में १ कनवॉ नमक भी खुराक के साथ देना चाहिए। दर्रा या खल्ली गाय के दूध के अनुसार दे सकते है। २$\frac{१}{२}$ सेर दूध देनेवाली गाय या भैंस को १ सेर, ५ सेर दूधवाली गाय को २ सेर, ७$\frac{१}{२}$ सेर दूधवाली जानवर को ३ सेर देना चाहिए। कहने का मतलब यह है कि फी अढाई सेर पर १ सेर चुन्नी या दर्रा देना चाहिए।

अब पानी की ओर ध्यान देना चाहिये। एक ही बर्त्तन मे सभी जानवर पानी पीते है, ऐसा करने से मुंह की बीमारी होती है। जिस तरह मनुष्य का मकान हर एक मौसिम के लिए अलग-अलग होता है, उसी प्रकार गर्मीमें खुला हुआ, बरसात मे झावस से बचने लायक और जाडा मे गर्म मकान होना चाहिए। मिट्टी का मकान सबसे अच्छा होता है। गो-शाला सूखी हो और उसमे हवन प्रतिदिन होना चाहिए। गन्दगी को दूर कर ही जानवरों को रोग से बचा सकते है। हड्डी की भी गॉव में रक्षा करनी जरूरी है। खाद्य के साथ

पशुओं को १ छटॉक प्रतिदिन यह चूर्ण देना चाहिए जिससे पशु हृष्ट पुष्ट रहें। बनाने का तरीका तो सरल है—२० सेर चूना कली, ५ सेर गन्धक, २५ सेर नमक, ५० सेर हड्डी का चूर्ण। यदि खाद बनाने की तबीयत हो तो १ मन गोबर—५ सेर हड्डी का चूर्ण मिला कर खेतों मे डालिए।

काम लेने पर तो पशुओं को भर पेट खिलाते नही, फिर पशुओं को बैठाकर कौन खिला सकता है? निठल्ले दिनों में किसान या व्यापारी पशुओं को चुपचाप कसाई खाने में पहुँचा देता है। मोटर उन लोगों को काम से छुडा कर बैलों को गॉव से बाहर निकाल कर शहरों की तरह भगा कर ले गया। यातायात में बैलों से काम लेने से व्यापारी को लाभ होता है और वह पशुओं को भी खिलाता है पर काम छिन जाने पर वह खुद भूखे मरता है तो पशुओं को क्या खिलावे? जो काम बैलगाडी से नही हो वही काम मोटर से लिया जाय। सच पूछा जाय तो यंत्रों की अपेक्षा बैल ही लाभदायक है। वृष शक्ति से धीरे धीरे काम होता है और काम अच्छा हाता है।

यह गाड़ी भी खीचता है, खाद भी देता है। ट्रैक्टर की तरह समतल जमीन नही चाहता। बैल तो ऊँची-नीची जमीन में भी काम देता है। एक ही बैल सब काम करता है। चौकी (पाटला) भी देता, गाडी भी खींचता और ऊख भी पेरता है। तीन मन का बोझ तो बैल द्वारा ले जा

सकते है पर मोटर से थोड़ा सा माल ढोने से ज्यादा खर्च होता है। बैल तो पहाड़ी रास्ते से, नदी नाले से भी गुजर सकता है पर हमारे मोटर देव के वास्ते तो सड़कों की आवश्यकता होती है। अतः पशु सुधारकों का इस पर भी ध्यान देना चाहिए। काम छीनना अकलमंदी नहीं है, अक्लमंदी तो काम देने में है, यही गुप्त-दान सर्वोत्तम दान है।

गो-वंश की रक्षा करनेवालो को मिल का कपड़ा तथा चीनी खाना छोड़ देना चाहिए। प्राचीनकाल में किसान अनाज और कपास दोनो पैदा कर लेता था। कपास की डंटल जलावन में व्यवहार कर गोबर का खाद की तरह इस्तेमाल करता था, पर आज लोग मिल का कपड़ा पहनते है जिससे गो-हत्या होती है, क्योंकि गोमाता की जमीन जोत कर हम मिल के कपड़े व्यवहार करते है। मिल की चीनी खाने से ईख की अगेरी जानवरों को मयस्सर नहीं होती जो पहले तीन चार महीनों तक गायो के हरे चारे का काम करती थी। खेतिहर खेती के लिए बैल खरीदता है पर गाय नही पालता। व्यापारी यह देख कर कि किसान मेरे बछड़ा के ग्राहक रहते हैं और बछिया कोई पूछता नहीं, इसलिए बछिया खानेवालों के हाथ चली जाती है। इस तरह ४० लाख गौओं की हत्या हर साल होती है जिसका जिम्मेवार है किसान जो बाजार से खेती के लिए बैल लाते हैं और घी-दूध के लिए भैंस पालते है।

एक जमाने में आपकी जमीन दो हिस्सों बँटी हुई थी, एक

हिस्सा माता अन्नपूर्णा के नाम से, दूसरा गोमाता के नामसे। पर जब आपने मिल का कपड़ा पहनना शुरू किया, गौएँ गोचर भूमि से अलग कर दी गयीं। जमीन्दारों से आपने बेदखली जमीन वापस कर ली। गोमाता पहले बेदखल हुई थी इसलिए सभी बेदखली जमीन उसीके नाम से छोड दें। "गॉधी जी ३० साल से यही बात आपसे कहते रहे कि आप चर्खा चलाकर अपना कपडा बना ले और गौमाता के हिस्से की यह जमीन मिल असुर के हाथ से छुडाकर गोचर भूमि के लिए परती छोड दें। इसीसे आपके वस्त्र और अन्न, दोनो का इन्तजाम हो जायगा। ऐसा करने से जो जमीन अनाज के लिए बाकी बचेगी उसीमें आज का ड्योढा अन्न पैदा होगा। लोग कहते है कि गॉधीजी ने खेती को बात तो की नही और चरखे पर ही सारा जोर लगाया। भाइयो! गॉधीजी हमेशा दूर की और गहराई की बात सोचा करते थे। बिना गोपालन के खेती की तरक्की नही हो सकती, बिना गोचर भूमि के गोपालन नही हो सकता, और बिना चर्खा चलाए मिल असुर के कब्जे से गोचर के लिए भूमि नही खाली हो सकती। यही कारण था कि महात्मा गॉधी बार-बार चरखे पर जोर देते रहे। इस तरह अपने को बचाने के लिए आप का महान् असुरों का नाश करना है। वे है दूध-घी के लिए भैसे और कपड़े के लिए मिलें।"

पींजरापोल को सुधारने से पशुओ में भी सुधार आ

जायगा। पींजरापोल का काम दुधार गायों को रखना है। उसमें नस्ल सुधार करने का हो तो अत्युत्तम है क्योंकि इसके बिना गो-वंश का उत्थान नहीं होगा। कसाईखाने में जाने वाले जानवरों की परवरिश कर उनके सुधार का काम होना चाहिए। जहाँ ढोर भूखों मरते है वहाँ तीन करोड आदमी भूखो मरे तो इसमें आश्चर्य की क्या बात ? इसलिए पींजरा-पोलों में, गौशालाओं में आदर्श गाये रखनी चाहिए और यह भी शहरों में न होकर गाँव मे नदी के तट पर हो तो और अच्छा है। यदि हम गाय की रक्षा करते हैं तो सारी मूक-सृष्टि की रक्षा करते है। आज स्त्रियाँ दूध के अभाव में भूखे बच्चों को आटा और पानी पिलाती है। २३ करोड़ हिन्दुओं की आबादी में स्वच्छ दूध न मिले, इसका यही अर्थ है कि हमने गो-रक्षा छोड़ दी है।

———

# भारतीय कृषि की समस्यायें

" प्रत्येक समझदार औरत, मर्द और बच्चों को देश का वर्तमान उत्पादन बढाना चाहिए। जहाँ आज एक दाना पैदा हो रहा है वहाँ दो दाना पैदा करने की कोशिश करनी चाहिए। यदि वे लोग, बुद्धिमानी, ईमानदारी, सहयोग तथा आशा-वादिता से काम करेंगे तो निश्चय है कि वर्तमान संकट को वे लोग बिना किसी दिक्कत या झंझट के पार कर जायँगे। "

—महात्मा गाँधी

एक ओर अठारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध इंग्लैंड की औद्योगिक क्रान्ति का जन्मकाल था और दूसरी ओर भारत में औद्योगिक विनाश का अशुभ मुहूर्त्त आकाश मे मँडरा रहा था। सैकड़े ५७ आदमी खेती पर ही गुजर करते थे। पर इस समय सैकड़े ७५ आदमी खेती में लगे हुए है। श्री विश्वेश्वरैया के अनुसार अन्य देशों में लोग इस प्रकार उद्योग तथा खेती मे लगे हुए है।

## धन्धा के अनुसार जनसंख्या का वितरण—

| देश | खेती तथा पशुपालन | उद्योग धन्धो मे | यातायात तथा व्यापार मे |
|---|---|---|---|
| भारत | ६७·० | ९ २ | ६·९ |
| यूनाइटेड किंगडम | ११ ६ | ५६·८ | १३·४ |

| | | | |
|---|---|---|---|
| फ्रांस | ४०·७ | ३५·२ | ९९ |
| जर्मनी | २९ ९ | ४२ २ | १३·४ |
| अमेरिका | २६·७ | ३६ ६ | १७ ६ |
| इटली | ४८·० | २७·० | १२·५ |

[श्रीविश्वेश्वरैया लिखित–"प्रोस्पेरिटी थ्रू इन्डस्ट्रीज" पृ० ७०]

भारत में अर्थ सम्बन्धी व्यवस्था में खेती तथा पशुपालन ही का स्थान अब मुख्य है क्योंकि सभी प्रान्तो की आय इसीसे पूरी होती है। अतः सभी प्रान्तो में खेतिहरों की संख्या जरूरत से ज्यादा है। खेती में इस समय जनसंख्या की ७० फी सदी लोग लगे रहते है।

भारतीय कृषि का संसार मे स्थान—कुछ दिन पहले भारत जावा, सुमात्रा और अन्य टापुओं से चीनी मगाता था पर अब चीनी का उत्पादन विशेप कर दूसरे देशो में भेजता है। चावल तो चीन देश के समान पैदा कर लेता है। रूई में अमेरिका के बाद इसीका स्थान आता है। मूंगफली की उपज भी अधिक है, इसी कारण वनस्पति घी घर-घर में पाया जाने लगा है और इंग्लैण्ड की जरूरत को यही पूरा करता है। दुनिया की एक तिहाई पशु भारत में पाये जाते है।

इस समय खेती की हालत शाचनीय हो गयी है। जिस तरह हिन्दुस्तान में दलितवर्ग है उसी तरह भारत में दलित उद्योग भी हो गया है, खास कर खेती के धन्धे मे और पीछे पड़ गया है। उपज दिनोंदिन घट रही है—एक एकड़ में भारत में

औसतन गेहूँ की उपज मिश्र की एक तिहाई तथा हालैण्ड और डेनमार्क का $\frac{१}{५}$ है, चावल में इटली का $\frac{१}{४}$, मकई में न्यूजीलैण्ड और स्विजरलैण्ड की एक तिहाई है, चीनी में जावा का $\frac{१}{४}$ और हवाई का $\frac{१}{७}$ भाग उपज होती है। यहाँ की उपज भी प्रान्त-प्रान्त में भिन्न-भिन्न तरह की है।

प्रो० चतुर्भुज ममोरियाजी ने मौडर्न रिव्यू १९५० में इस पर प्रकाश डाला है। लेख लम्बा है अतः उनके बताये चौदहो कारणों को अपने अनुभव के साथ संक्षेप में लिख रहा हूँ।

कम उपज के कारण—

(१) प्राकृतिक संकट—भारत में जंगलों के कट जाने से बाढ खूब आती है। कभी-कभी वृष्टि की कमी भी दिखलाई पड़ती है। अधिक किसान मौनसून पर निर्भर करते है। वह मौनसून भी बार-बार धोखा देता रहता है, कभी समय के आगे ही शुरू हो जाता है और कभी पीछे। घाघ की कहावत अब किताब ही तक रह गयी—"एक बार जो बरसै स्वाती, कुर्मिन पहने सोने की पाती"। सभी नक्षत्र इसी तरह से आते जाते है। मै बाबूजी से सुना करता था कि हस्त नक्षत्र में जलावन की बड़ी तकलीफ होती है क्योकि हथिया के झपास के कारण रसोई में जलावन तक नही मिलती, पर अब यह नक्षत्र भी सूढ हिलाकर चल देता है। यही कारण है कि हिन्दुस्तान मे अकालो की संख्या बढ रही है। पैसा कम होने से उद्योग धन्धे भी पट पड़ जाते है क्योंकि कच्चा माल

का मिलना असम्भव हो जाता है। पाँच वर्ष मे एक वर्ष अच्छा रहा तो एक वप बुरा और तीन वर्ष तो न अच्छा ही, न बुरा ही। फसल आफतों से बरबाद हो जाती है। जहाँ नहर का प्रबन्ध है वहाँ उपज हो जाती है। पंजाब में नहर से लोग लाभ उठा रहे है। जहाँ पानी का प्रबन्ध नही है वहाँ के लोगों की जिन्दगी दूभर हो जाती है।

(२) जुताई की कमी—अंग्रेजी मे एक कहावत है– Tillage is manure (जुताई सबसे अच्छी खाद है) आज कल-गहरी जुताई नहीं होती है क्योंकि बैल बहुत कमजोर हो गये है। बैलो के अधपेट रहने के कारण इतनी शक्ति नही है कि गहरी जुताई कर सके। इस कारण घास-पात खेत ही मे रह जाते है और फसल के पौधों के भोजन में हिस्सेदार हो जाते है। इस कारण उपज बहुत घट जाती है और दाने भी पुष्ट-पुष्ट नही होते।

(३) बाबा आदम के जमाने से प्रचलन खेत जातने की रीति—दुनिया बदल गयी पर हमारी खेती की रीति में कोई परिवर्त्तन नही हुआ। हम मनु के समय से जिस तरह से खेती करते आ रहे है, उसी तरह से अब भी करते जा रहे है। हमारे खेतो के औजार उसी तरह के है और आधुनिक विज्ञान के आविष्कार ने उन्हें छुआ भी नही है। कुदाली और हल में कुछ परिवर्त्तन किया जाय तो बहुत कुछ लाभ हो सकता है। खेत में बहुत परिवर्त्तन हो गया है। बड़े-बड़े खेत छोटे-छोटे हो

गये है, मालूम पडता है कि लडको ने घरौदा (Toy holding) बनाया है। गरीबी के कारण किसान खेती में उन्नति लाभ के लिए नही करता है और वह केवल जीवन पालन के लिए लगा हुआ है क्योंकि उसके पास कोई दूसरा धन्धा नही है। खेती के हल भी हलके है और उसका फार छुरी के समान है जो केवल भूमि की ऊपरी सतह को ही छिलता है। अगर इसीमें सुधार किया जाय तो जुताई के समय कुछ जमीन अनजुते न रह जाय जैसा कि कभी-कभी भीशेप्ड (V Shaped) रह जाता है। देहाती हल देहात के लिए बहुत उपयोगी है। एक बार जुताई न कर दो बार जुताई की जाय तो खेत सभी जुत जायँगे। देहाती हल खर्चीला नही है और देहात के मिस्त्री उसको बना सकते है और हलका होने के कारण सभी जगह ले जाने में सुविधा है।

(४) उत्तम जाति के पशुओं का अभाव—चरने के बाद पशुओ को केवल एक ऑटी-नेवारी से पालते है, इस कारण बैल,बछडा, भैसा आदि इतने दुबले पतले हो गये है कि उन की हड्डियों को दूर ही से गिन ले सकते है। जबसे पैसा कमाऊ फसल का उत्पादन बढ गया तबसे पशुओ की दशा गिरती जा रही है। दूध का मिलना असम्भव हो गया है। यदि कुछ दूध होता है तो बछड़ा को मयस्सर नही होता।

लापरवाही, खराब नस्ल के सॉढों से गायों को मिलाना, आदि अज्ञानता के कारण ही पशुओं की हालत नही सुधर रही

है। गोबरभूमि की कमी अब सभी जगह दृष्टिगोचर हो रही है। हम गो-सेवा को अपने कर्त्तव्य के रूप में नहीं समझते है, यही कारण है कि पशुओं की हालत दयनीय है। अधपेट पशु देश के भार के रूप में है क्योंकि वे भारी हल को खींच नही सकते हैं, न कभी पशुओं की तरह उनसे काम ही हो सकता है।

(५) अच्छे बीजो की कमी—देहात में किसान अशिक्षित होने के कारण बीज पर कुछ भी ध्यान नहीं देते। धान ही के बीज को लीजिए, उसमें अनेकों तरह के बीज मिले रहेंगे। बीज मे कुछ अगात और पिछात धान के बीज है। इस तरह एक ही बार आमन और आऊस धान के बोने से फसल की पैदावार अधिक नहीं होती है, क्योंकि आमन धान देर से पकता है और आऊस धान को काट देने से आमन धान ज्यों का ज्यों रह जाता है। आउस धान की खुराक में आमन धान भी हिस्सेदार हो जाता है। उसी तरह बीज एकहन रोपने से ज्यादा लाभ होता है। मसूर और बूंट का बीज मिले रहने से फसल को उपज अधिक नहीं होगी। बीज एकहन करने के लिये गृहस्थ को खड़ी फसल में से फालतू पौधों को उखाड़ देना चाहिए। सुधारे हुए किस्म के बीजों का प्रचार होना जरूरी है। एक खेत के बीज को उसी खेत में बोना नहीं चाहिये। इससे भी पैदावार में कमी हो जाती है। दूसरे गॉवसे या अपने गॉव के दूसरे किसान से लेकर बीज लगाना अच्छा है, फिर भी एक गॉव के बीज उतने लाभदायक नहीं होते। आज कल

देहात में किसान फसल के समय अपना अनाज बेच कर महाजन से खराब बीज लाकर डालते है। इससे उसका खेत परती रह जाता है। अच्छा बीज वितरण का कोई अच्छा प्रबन्ध सरकार ने नहीं किया है क्योंकि सरकारी फार्म में भी शुद्ध बीज का मिलना दुर्लभ हो गया है। गृहस्थ के पास बीज देकर सरकार शुद्ध बीज का प्रचार करती है पर उससे भी विशेष लाभ नही हुआ है।

( ६ ) पौधे की व्याधियाँ, कीड़े-मकोड़े, आदि—धान मे फूट रौट और ब्लास्ट, ऊख में मोजेक और रेडरौट, मकई में स्मट, गेहूँ और मूंगफली में विल्ट के रोग के कारण उपज कम हो जाती है। ये सब बीमारियाँ फंगी-पेस्ट (Fungi Pest) के कारण होती हैं, पौधे जो पृथ्वी से अपने पोषण के खुराक लेते हैं, उसको ये पेस्ट चट कर जाते है। जिसके कारण तन्दुरुस्त पौधे नही होते हैं। कीड़े-मकोड़े, टिड्डा, कैटरपिलर, ग्रासहौपर. आर्मीवर्म, धान का स्टेम बोरर, राइस हिप्सा, राइसबग और गौल फ्लाई आदि से धान की उपज बहुत कम हो जाती है। अनुमान किया गया है कि १० प्रतिशत संसार की उपज को ये लोग खा बैठते है। ट्रौपिक्स मे शायद २० प्रतिशत इनसे बरबादी होती है। १९२१ ई० में भारत में इन कीड़े-मकोड़े आदि व्याधियों से फसल और जंगली वृक्ष की बरबादी १३६,०००,००० पौण्ड की हुई थी। जंगली जानवर और भरमीन ( Varmin ) से भी कम नुक-

सान नही है। इसके अलावे बन्दर, भालू, और जंगली सुअर भी फसल के दुश्मन है।

(७) भूमि का अनुर्वरापन तथा उचित खाद की कमी—प्रति वर्ष फसल उगाने के कारण जमीन की शक्ति क्षीण होती गयी है क्योकि खाद से काम नही लिया जा रहा है। पैदावार की कमी की यही निशानी है। एस० के० मित्र लिखते हैं कि पोटाश जमीन मे बहुतायत से पाया जाता है। केवल जमीन में नत्रजन और फौस्फेट खाद की आवश्यकता है। किसान गोबर जला ही देता है। डा० वोयलकर ने हिसाब लगाकर बताया है कि एक टन सूखे गोबर की खाद १५५ पौड सल्फेट अमोनिया के बराबर है। यदि एक जानवर दिन भर में चार पौड कडा गोबर देता है तो एक दिन में भारत में १ करोड़ का अमोनिया सल्फेट बनता है। उसके बाद फिर डाक्टर साहेब कहते है कि गोबर से ३० पौड नत्रजन में २९. २५ पौड बरबाद चला जाता है। तेलहन बाहर भेजने से काफी नुकसान है। तेल भेजने से देश को नुकसान नहीं है क्योंकि तेल पौधे के जीवन-क्रम द्वारा आक्सीजन, हाईड्रोजन ओर कार्बन से तैयार होता है। अतः तेल में जमीन का कुछ अश नही रहता।

मै फिर किसान के मित्र की ओर अपना ध्यान ले जाता हूँ, वे है केंचुआ ( Earthworm, चेरा )। इसका दुश्मन रासायनिक खाद है। नकली खाद से अनाज स्वादिष्ट

पैदा नहीं होता है। आलू और चावल का स्वाद बदल जाता है। आलू अधिक सडता है और खाने में बेमजा लगता है। भात भी चन्द घंटो में बासी हो जाता है। लार्ड पोर्ट्स माउथ ने टेम्प शायर स्टेट में झोपड़ियों के छप्पर बनाते समय जॉच की थी कि रासायनिक खाद से उत्पन्न पौधे के डंटल से छप्पर टिकाऊ नही होता। उससे पैदा हुआ पुआल, गेहूँ का डंटल भी छप्पर छाने में टिकाऊ नही होता है। मिश्रित खाद ( Compost ) का डंटल दो वर्ष चलता है तो इसका एक वर्ष।

अतः केंचुओ को बचाने के लिए रासायनिक खाद नही डालना चाहिए क्योंकि वह जमीन को कोड़ कोड़ कर हल्का बनाता है। उसके मलमूत्र से फसल खूब उपजती है। एक्स्पेरिमेन्टल स्टेशन के डी० एल० सी० कर्टिस का कहना है कि जमीन की ऊपरी छः ईंच की सतह पर साधारण तौर से जितनी नाइट्रोजन, फास्फेट पाटाश और ह्यूमस रहती है उससे केचुओ के मल से नाइट्रोजन पांचगुनी—फास्फेट सात गुनी, पोटाश ग्यारह गुनी और ह्यूमस ४० प्रतिशत ज्यादा रहती है। जमीन को उपजाऊ बनाने के अलावे भी रोगों से रक्षा करने की क्षमता इसमें पायी जाती है। नकली खाद मिट्टी के जीवाणु को उत्तेजित कर देती है और जीवाणु पेट भरने के लिए ह्यूमस को जल्दी जल्दी खाने लगते हैं, ह्यूमस जल जाता है और यह क्रिया बन्द हो जाती है।

जमीन की असली अमानत जिसको कुदरत ने दी है, गायब हो जाती है। बनावटी खाद तेज मसाले के समान और घरेलू खाद रोटी, दाल और तरकारियों के समान लाभदायक है। कम्पोस्ट में बनावटी खाद में पायी जाने वाली सभी चीजे मौजूद रहती हैं। कम्पोस्ट कूड़े करकट, घासपात, छिलके, पेड़ों के डंटल, गोबर, जानवर के मूत्र और मैला आदि से बने रहने पर गोबर की खाद से भी ज्यादा लाभ दायक पायी गयी है। यह खाद खेतो में नमी बनाए रखती है। जमीन में आवश्यक पाषण पदार्थ और जीवांश को बढ़ाती है। यह जमीन को सुरक्षित रखती है और इसे हवा और पानी से बह जाने से रोकती है। पौधों को मजबूत कर दानों को पुष्ट करती है। इसके इस्तेमाल से खेतों और पौधो मे कोई बीमारी नही होती। पौधे मजबूत रहने के कारण पाले के प्रकोप से बच जाते है। नकली खाद की तरह इसका असर नकली नहीं है। इसका असर खेतों में २-३ वर्षों तक बना रहता है। दो गाड़ी कम्पोस्ट खाद मे कम से कम एक मन अधिक अन्न जरूर उपजता है। यह खाद एक आने मन से ज्यादा महँगा नहीं पड़ता है।

(८) खेतो का छोटे छोटे टुकड़ो मे बँट जाना—आज भारत मे आबादी की वृद्धि, उद्योग का नाश, सम्मिलित परिवार की शृँखला टूटना, व्यक्तिगत विकास की वृद्धि, उत्तराधिकारी होने की चाल और महाजनों का खेतों पर कब्जा होना और अलग-

अलग खेतों को बेचना आदि कारणों से खेतों को टुकड़े-टुकड़े हो जाना पडा है। बम्बई प्रान्त के रत्नगिरि जिले में करीब ३० वर्ग गज के खेती भी पाये गये हैं। दूसरे-दूसरे देशो में खेतों की हालत निम्न प्रकार हैं।

## संसार

| देश | एकड |
|---|---|
| इंग्लैण्ड और वेल्स | ६२० |
| डेनमार्क | ४०० |
| जर्मनी | २१५ |
| फ्रान्स | २०·२५ |
| बेल्जियम | १४५ |
| हौलैण्ड | २६० |
| यूनाइटेड स्टेट अमेरिका | १४=० |
| जापान | ३० |
| चीन | ३·२५ |

इसके अलावे हमारे यहाॅ प्रान्त-प्रान्त में अन्तर पडता है।

## भारत

| प्रान्त | प्रत्येक किसान को उपजाऊ जमीन |
|---|---|
| उत्तर प्रदेश | २·५ |
| बिहार और ऊड़ीसा | ३·१ |

| | |
|---|---|
| मद्रास | ४·९ |
| पंजाब | ९·२ |
| बम्बई | १२·२ |
| बंगाल | ३·१ |
| मध्य प्रदेश | ८·५ |
| आसाम | ३·० |

छोटे-छोटे खेतो से किसान को फायदा नहीं है। खेत में न मेंढ दे सकता है न कीमती औजारों को ही इस्तेमाल कर सकता है। पानी ले जाने और आने-जाने के रास्ते बनाने मे भी जमीन की बरबादी होती है। देखने-भालने में काफी समय लग जाता है। पटाने की दिक्कत और मार पीट की नौबत आ जाती है। छिटफुट खेत होने के कारण उपज दिनों दिन घट रही है।

( ६ ) घाटा में खेती करना—किसान छोटे-छोटे खेतों में इस लिए चिपटा हुआ है कि उसके पास खेती के अलावे जीवन-यापन के लिए दूसरा कोई साधन नहीं है। किसान कर्ज लेकर खेती कर रहा है। जमीन के फायदे उठाने वाले दूसरे हैं और खेत में मेहनत करने वाले दूसरे, इसलिए मजदूर दिल से काम नहीं करता है। खेती में उद्योग की अपेक्षा आमदनी भी कम है, इसलिए किसानों के पास इतने पैसे नहीं कि खेती के कामों में कुछ सुधार कर सके। खेती से आय १९४२-४३ में प्रति मनुष्य ९१ रुपये थी जब कि ग्रेटब्रिटेन में ९५ पौंड।

श्रीराधाकमल मुखर्जी लिखते हैं कि खेती की आमदनी भी प्रति एकड घटती बढती है—उत्तर प्रदेश में ३ एकड से कम वाले खेत में १ रुपया एक आना आमदनी होती है तो २० एकड से ऊपर वाले खेतों में ८ रुपये दस आने। यह आमदनी सस्ते समय की है।

( १० ) खेती पर असहनीय भार—घरेलू उद्योगों के विनाश होने के कारण आजकल भारत में जीवन-यापन का एक मात्र साधन खेत है। अतः भारत के सभी वर्ग के लोग खेतों पर टूट पड़े जिसके कारण परिवार-पालन के लिए भरपूर खेत मिलना दुलभ हो गया है और खेती करने वालो को गुंजाइश नही होती है। निम्न तालिका से पता लग सकता है कि देशों पर भूमि पर कितना भार है।

| देश | खेतिहरो की जनसंख्या १०० एकड मे |
|---|---|
| पोलैंड | ३१ |
| जेकोस्लोभैकिया | २४ |
| हंगरी | २४ |
| रुमानिया | ३० |
| युगोस्लैभिया | ४२ |
| बलगेरिया | ३३ |
| ग्रीस | ४८ |
| भारत | १४८ |
| यूनाइटेड किंगडम | ६ |

उपर्युक्त तालिका से पता चलता है कि एक आदमी के पीछे एक एकड़ भी जमीन नहीं पडती है। यही कारण है कि खेती से आमदनी कम होती है। किसान अधपेट रह कर ही जब खेती करता है, तो सुधार की बात करना बेबुनियाद है। यही कारण है कि गॉव की हालत दिनों दिन गिरती जा रही है और लोग शहरों की ओर भाग रहे है। पैसे के अभाव में किसान के बच्चे गन्दे तथा अशिक्षित रहते है।

(११) सहायक उद्योग धन्धे की कमी—इस समय मजदूरो की संख्या बढ रही है। ऑकड़े देखने से पता चलता है कि ६-करोड़ ८० लाख स ज्यादा मजदूर हो गये है। अपना खेत न के रहने के कारण कभी-कभी खेतो मे काम करते है, एक रोपने समय और दूसरा काटने के समय। तीन चार महीने जबरन बेकारी में समय बिताते है क्योंकि काम ही नही रहता है। जब कभी फसल मारी गयी तो और बुरी नौबत देखने को मिलती है। उस समय उन लोगों में भुखमरी के सिवा कोई चारा नही। उनके पास अपने को संकट से रक्षा करने का तरकश में खेती के अलावे कोई तीर न रहा जिससे वह अपने को बचा सके। डाक्टर राधाकमल मुखर्जी उत्तरी भारत के किसानों के बारे में लिखते है कि वे साल भर में २०० दिन से अधिक दिन काम नहीं करते है, डा० स्लैटर कहते है कि दक्षिणी भारत में किसान साल में पॉच महीना काम करते है। उन लोगों का फालतू समय गप-शप, मुकदमे, शादी-

गमी और गाने बजाने में बर्बाद होता है।

(१२) खेती और बिक्री के संगठन मे त्रुटि—यहाँ खेती का काम भरण-पोषण के निमित्त ही होता है। रूई, जूट और ऊख आदि रुपये के लिए पैदा किये जाते हैं। यदि मनुष्य मिरचाई और तम्बाकू को छोड़ कर पैसे के ख्याल से निबू आलू पैदा करे तो बहुत लाभ हो सकता है। यदि मिरचाई में २०० रुपये बीघा तरेगा तो नीबू में २००० रुपये बीघे तरेगा और इससे स्वास्थ्य भी लोगों का अच्छा रहेगा। यातायात की कठिनाई के कारण किसान को बाजार मे बेचने में कुछ भी फायदा नही होता है। कृपक अधिकतर अपने परिवार का भरण-पाषण भी ठीक से नही कर पाता है, फिर भी $\frac{३}{४}$ भाग चाय, कहवा और रबर की पैदावार बाहर चली जाती है, इसके अलावे भी $\frac{२}{३}$ रूई की, $\frac{१}{३}$ जूट की, $\frac{१}{२}$ तेलहन की, $\frac{१}{५}$ मूंगफली की पैदावार भी विदेशी बाजारों में ही चली जाती है। थोड़े बहुत पैदावार का अंश यहाँ के दलालो को हाथ लगता है जो खेत में और खलिहान से उठाकर मंडी में पहुँचा देते है। किसान अशिक्षित होने के कारण बाजार का भाव नही जानता और सस्ते में बेच देता है।

(१३) ऋण-ग्रस्त किसान—किसानों को सुसमय में कर्ज की आवश्यकता पड़ जाती है तो कुसमय की बात ही नही करनी चाहिये। किसान कर्ज में पैदा होता है, जीता है और दुनिया से चल बसता है। उसके मरने के बाद भी कर्ज रूपी

पाट उसके गर्दन से नहीं हटता और पुश्त दरपुश्त चलता ही रहता है। कर्ज होने का मुख्य कारण जमींदारी प्रथा, छिट-पुट खेत, पानी के अभाव में एक ही फसल को उगाना और वैज्ञानिक ढंग से खेती नही करना आदि हैं।

(१४) मानवी कारण—मौनसून की धोखेबाजी, पौधों का रोग युक्त होना, अनावृष्टि और अतिवृष्टि आदि आफतें किसानों को चारों ओर से घेरे रहती है। ऐसे समय में यदि किसान भाग्य के भरोसे न रहे तो क्या करे? यही कारण है दिनों दिन पैदावार घट रही है। खेत भी उन लोगों के हाथ में चला गया है जिसने कभी हल का मुठिया पकड़ा भी नहीं है। आजकल बकाश्त वापसी के कारण हो सकता है कि बाबू लोग खेतों से सम्बन्ध रक्खे। गोपालन की रिवाज कम होने के कारण खेत में भी ह्रास होने लगा है। अतः खेत का पैदावार बढाने के लिए—गो-पालन, भेंड-पालन तथा बकरीपालन पर ध्यान देना जरूरी है।

निम्नलिखित बातों पर ध्यान देने से खेती में सुधार हो सकता है—

(१) पशु–पालन को मात्रा अधिक हो, खासकर गोपालन हर घर में होना अनिवार्य है।

(२) जगलो में घास की पैदावार बढाकर, पशुओं को वहाँ भेज देना चाहिए। गाडी से घास भेजने का भी प्रबन्ध हो, जंगल गोरक्षिणी को तरह हो जहाँ मवेशी आराम से चरें

तथा सरकार को ओर से गोरखिया का मुशाहरा मिले। सरकार चाहे तो फोरेस्ट गार्ड को यह काम सुपुर्द कर सकती है।

( ३ ) बुनियादीशाला में आधुनिक ढंग से खेती करने का प्रबन्ध हो। पश्चिमी ढंग से खेती करने के तरीके बताने से देश रसातल की ओर चला जायगा।

( ४ ) किसानों के लिए कृषि सम्बन्धी प्रदर्शनी हो तथा कृषि सम्बन्धी उपयोगी पर्चे हिंदी में बॉट कर नवीनतम ढंग से खेती करने के तरीके बताये जॉय।

( ५ ) हरेक थाना में एक-एक प्रदर्शन क्षेत्र ( Domons tration farm ) हो जिसको अगल-बगल के किसान जाकर देखें कि खेता के लिए कौन कौन उपयोगी औजार निकले है ? इसके अलावे मिश्र खाद बनाने का तरीका भी बता देना चाहिए।

( ६ ) वृक्षारोपण का काम भी होना जरूरी है क्योंकि उनके बिना खेती का काम भी बहुत सा अधूरा रह जायगा।

( ७ ) आब पाशी का प्रबन्ध हो। जहॉ तक हो सके, नहर, तालाब और बांध का प्रबन्ध हो। कुएँ से भी काम लें। बिजली द्वारा पंप से पानी खींचने से अमीरों को भले ही कुछ फायदा हो क्योंकि उनके पास धनराशि है, किन्तु पानी की सतह नीची हो जाने के कारण गरीबो के कुएँ सूख जायँगे और ताड़ के पेड़ सूख जाने के कारण उनके घर बिना छप्पर के हो जायँगे।

( ८ ) अच्छे बीज के लिए बहुरूपी समिति ( Multi purpose Society ) कायम हो।

( ९ ) पैसा कमाऊ ( Money Crop ) का लगाना बन्द हो और चारेवाले फसलों को लगाना जरूरी हो।

( १० ) सरकार से किसानों को कृषिकर्म के लिए रुपये बिना देर किये मिले। आज किसानों को एक कुएँ के लिए बीसों बार ग्रो-मोर फूड ऑफिसर के ऑफिस में आना पड़ता है जिससे खेती के कामों में बाधा पहुँचती है। रद्दी रहट किसानों को दी जाती है जिसका दाँत ठीक से नहीं बैठता है। इसका कारण ऑफिसरों को ठीकेदार से सट्टा-पट्टा होना सिद्ध होता है।

( ११ ) फसलों के रोगों के लिए रोक थाम हो।

( १२ ) भूमि नाश ( Soil erosion ) रोका जाय।

( १३ ) फसलों के हेर फेर की भी जानकारी होनी चाहिए।

( १४ ) किसान और सरकार के बीच में रक्तशोषणी जमीन्दारी प्रथा न रहे।

---

# भारतोय संस्कृति का आधार कृषि है

" जिस जगह वृक्ष अधिक होते है वे बादलों से पानी अपने आप बरसा लेते हैं। पेड की पत्तियों में कुछ ऐसा आकर्षण होता है कि पानी दूध की धार की तरह ऊपर से गिरने लग जाता है। यह प्रकृति का कानून है। जिस भूमि में वृक्ष नहीं होते वह मरुभूमि हो जाती है क्योंकि पानी तो वहां बरसता नहीं, इसलिए सब रेत- ही-रेत हो जाता है। अगर वर्षा बंद करनी हो तो वृक्षों को काट दीजिए। "

—महात्मा गाँधी

बिना वृक्ष खेती का काम हो ही नहीं सकता। अतः खेती तथा तन्दुरुस्ती के लिए वृक्षारोपण होना जरूरी है। गॉव में पशुओं का गर्मी में ठहरने के लिए तथा खेती के औजारों के लिए वृक्ष का होना जरूरी है, । आज कोशी में बार-बार बाढ आने का मुख्य कारण यही है कि जंगल सब काट लिये गये हैं और वृष्टि होने पर वर्षा का जल रुक-रुक कर नहीं आता है और पानी तेजी से बहकर बाढ ले आता है। अकेली कोशी नदी ने १८०७ से अब तक ९ बार मार्ग बदला है। केवल पिछले २५ साल में ५ बार मार्ग बदला है। अरावली पहाड़ के जंगलों के नष्ट हो जाने के कारण उदयपुर के रमणीक

उद्यान पर खतरा होने वाला है। धर्म ग्रंथों ने इसकी महिमा खूब गायी है। "दस कूप समा वापी दश वापी समो ह्रदः। दश ह्रद्र समः पुत्रो दश पुत्र समो द्रुमः।" दस कुआँ खोदने में जो फल होता है, वह फल एक तालाब निर्माण करने में होता है। दस तालाब के खोदने में जो फल होता है, वह फल एक झील तैयार करने में होता है। दस झील खोदने में जो फल होता है, वह एक पुत्र में होता है, दस पुत्र उत्पन्न करने में जो फल होता है वह फल एक वृक्षारोपण मे होता है। अतः हम 'वृक्षा एव हतो हन्ति, वृक्षो रक्षति रक्षितः।'

जंगल से अनेकों लाभ है। मकान और खेती के औजारों के लिए लकड़ियाँ मिल जाती हैं। जलाने का ईंधन मिलने के कारण गोबर की बचत होती है। पत्तियो से खाद और जानवरों का चारा हो जाता है। जंगलों से बरसात का पानी रुक कर आता है। इससे जमीन मे नमी रहती है और जमीन को जंगल कटने से बचाते है। इसलिए जंगल लगाये जाते और जमाये जाते हैं। पैसे की दुनिया इसका महत्त्व घटाकर अप्राकृतिक चीजों की ओर ले गयी है। प्रत्येक प्राणी को वर्ष में दो फलदार वृक्ष अवश्य लगाना चाहिए।

कई स्थलो पर कह चुका हूँ कि खेती के लिए मजबूत बैलों का होना अत्यावश्यक है। बैलों की दशा इस समय हमारे देश में अत्यन्त दयनीय हो रही है। जहाँ हमें चार बैलों

की जरूरत है, वहाँ हम दो ही बैल से काम निकाल रहे है। धर्मशास्त्र के अनुसार ८ बैला का हल अच्छा होता है। उस समय व्यवसायी लोग ६ बैलों के हल चलाते थे। जो लोग ४ बैल का हल चलाते थे उसे नृशंस और २ बैल के हल से खेती करनेवाले गोखादक समझे जाते थे। ऋद्धि-सिद्धि १० हल चलानेवाले के पास विराजती रहती थी। एक हल चलाने से कोई लाभ नहीं होता था केवल ऋण में फंसना पडता था।

यदि यहाँ के देशवासी गौ के उद्धार में लग जॉय तो ऋद्धि-सिद्धि फिर लौट आयेगी। रियासतों को छोड कर भारतीय संघ का क्षेत्रफल ६३४, ४४६ वर्गमील है और प्रति वर्ग मील के पीछे १९२ गाय तथा बैल हैं। इसके विपरीत पाकिस्तान का क्षेत्र फल २३१,००० वर्ग मील है और प्रति वर्ग मील के पीछे १३० गाय बैल है।

यदि आज भी यहाँ के लोग चेतें तो घबड़ाने की जरूत नहीं है, यहाँ पशुओं की संख्या में कमी नही है। यदि कमी है तो गोसेवकों की। नस्लों को सुधारकर हमलोग उभय गुणी पशुओं को बना सकते हैं।

प्रत्येक उपनिवेश में पशुओं की संख्याः—

| | गाय | बैल | बछड़े बछड़ियाँ | निकृष्ट | कुल योग |
|---|---|---|---|---|---|
| भारतीय संघ | २८,३२५,५७० | ३७,८१३,५४६ | २५,९१७,५०८ | २,७४४,५८३ | ९४,८०१,२०७ |
| पाकिस्तान | ८,११९,४९२ | ९,०४२,३०१ | ६,२९८,३०१ | ६६६,८७२ | २४,१२६,९९६ |

'योगी' १८ नवम्बर १९४९

जिस भारत में घर-घर में शालिहोत्र होते थे, उसी भारत में पशुओं की बीमारियों से रक्षा के लिए वैद्यों का अभाव है। हंगरी में अनुमानित जनसंख्या ८,६००,००० में प्रति १००,००० पशुओं के पीछे १४ मवेशी डाक्टर हैं, अमेरिका में एक लाख पशुओं के पीछे ८ मवेशी डाक्टर है पर भारत में एक लाख में १ ही मवेशी डाक्टर होते हैं। पशुओं की खुराक में कमी के कारण डाक्टरों की आवश्यकता महसूस हो रही है।

खेती की उन्नति बिना उद्योग के भी नहीं हो सकती है। खेती और उद्योग में

विरोध नहीं चलता। दोनों एक दूसरे के पूरक है। हम एक दूसरे को किसी तरह अलग नहीं कर सकते हैं। गाँव मे सभी जाति के लोग रहते हैं, वे भी खेती ही पर अवलम्बित है। बढ़ई, लोहार, चमार, हजाम और ब्राह्मण सब कोई कृषि के उत्पादन में हाथ बँटाते हैं। जाति का विभाजन भी इसी प्रकार हुआ जिससे गाँव स्वावलम्बी रहे। इसीसे श्रम का भी विभाजन हो जाता है। श्रम-विभाजन के बिना साम्पत्तिक-निर्माण कभी हो ही नहीं सकता। एक ही आदमी तरकारी भी बोवे और कपड़ा भी बनावे, तो काम अच्छा नही होगा। जातियों की संख्या इस प्रकार बाँट दी गयी है—

| जाति | प्रतिशत | जाति | प्रतिशत |
|---|---|---|---|
| ब्राह्मण | ५ | दस्तकार | १५ |
| क्षत्रिय | १० | तेली | ३ |
| व्यापारी | १॥० | चर्मकार | ४ |
| किसान | ५० | धोबी | १ |
| गड़ेरिये | ३ | मेहतर | १॥० |
| बढई-लुहार | ३ | अन्य | २ |

बिहार की आबादी पौने चार करोड़ है और यहाँ की सारी उपज १७ करोड़ मन है। ८ करोड़ गल्ले की कमी यहाँ हर साल रहती है। अधिकतर लोग एक शाम खाकर रहते है। कोई-कोई तो महुआ और जंगली फल खाकर गुजर करते हैं। अच्छी जुताई पर खेती निर्भर करती है। पर

यहाँ के बैल भूखे हैं तो जुताई कहाँ से होगी ? पंजाब, सुखदा और बिहार हल उपयोगी है। जमीन बिहार हल से कोड़ लें—छोटे हल से पपड़ो उखाड़ लें। जमीन हल्की हो जायगी। गेहूँ और ऊख के लिए अधिक जुताई की आवश्यकता है। जुताई से कीड़े भी मर जाते हैं और घास पतवार भी खेत में उगने नहीं पाते। किसानों को उत्तम बीज लगाना चाहिए। जहाँ तक हो सके दूसरे खेत के बीज हों। बीज को इस भाँति जाँच लें कि बीज उपयोगी है या नहीं ? बीज को गिनती कर तौल लें। जो बीज संख्या में कम और तौल में अधिक होगा तो समझिये कि बीज उत्तम है। किसान लोग पानी में भी डाल कर बीज का पता लगा लेते हैं। गोबर की खाद त्रिफला के समान गुणकारी है अतएव खेत में जरूर इसको डाले।

मेहनत तथा अक्लमन्दी से काम लेने से प्रायः सभी जमीन में कुछ न कुछ पैदा हो ही जाता है। किसानों को खाद देते समय इतना जरूर याद रखना चाहिए कि पौधा बढ़ता है या नहीं (नत्रजन), बढ़कर खड़ा होता है या नहीं (पोटासियम), खड़ी रहने पर जल्दी से फल फूल लगते है या नहीं (फास्फोरस) हमें किस की आवश्यकता है। करीब सभी भूमि जमने लायक है। खाद देने के बाद पौधों को जरूरत के अनुसार पानी भी देते रहना चाहिए। जमीन को नमी देख कर पानी दें, तेलहन के पौधे की जड़ नीचे जाती है, दलहन

की जड़ ३ इंच तक की होती है। जड देखकर पानी देना चाहिए। प्याज में ज्यादे पानी की आवश्यकता होती है। जिस पौधे की पत्ती छोटी छोटी गन्धमय तथा डालियाँ कटीली होती है, उसमें पानी की जरूरत उतनी नहीं होती। जैसे बबूल, इमली, संतरा, पुदीना आदि।

मेलदार भोजन के लिए सभी तरह के पौधों को लगाना जरूरी है। जलावन के लिए बबूल तथा अरहर की खेती जरूर करनी चाहिए। परती जमीन में १०० पेड़ ताड़ के रहें तो जलावन दो तीन महीने तक चल जा सकता है। सादा खान पान से भी जलावन की बचत हो सकती है। पहले नवादा (गया) फार्म में सरकारी कृषि विभाग को घाटा होता था। पर जब उसमें सन्तरे की खेती को गई, उसमें घाटा नहीं होता है। जिस पेड का धड मटमैला हो तथा जमीन गंगाटी हो, उसमें सन्तरे खूब उपजते है। अगर किसान से मेहनत न हो तो सन्तरे छोड़ बबूल ही का पेड़ रोपे क्योंकि इससे भी तो खेती के औजारों की पूर्ति हो जाती है। बबूल तो त्रिफला के समान गुणकारी है। इसकी छाल, कोमल पत्ते, फल और गोंद, ये बराबर-बराबर ले लें। धूप में सुखा कर महीन चूर्ण करले। उसके बराबर चीनी या मिश्री मिलाकर—१ तौले भर चूर्ण नित्य सबेरे गाय के दूध के साथ सेवन करें तो वीर्य का पतलापन, धातु क्षीणता, स्वप्नदोष तथा बीसो प्रकार के प्रमेह नष्ट हो जाते हैं। हृदय की दुर्बलता भी इससे दूर हो

जाती है। इसकी छाल और बादाम के छिलके जलाकर उसकी राख में सेंधा नमक मिला कर मंजन बना लें, तो दाँत मजबूत होंगे ।

केवल पेट-भरन अनाज के उपजाने से काम नहीं चलेगा। खेत में दो फसल उपजाने की चेष्टा करनी चाहिए। ३०९५ केलोरी का भोजन प्रतिदिन हरेक मनुष्य को खाना चाहिए। अतः बिना फल तरकारी और दूध के मेलदार भोजन ( Balanced diet ) नहीं होगा। आप पूछेंगे कि मेलदार भोजन और केलोरी क्या बला है ? आजकल के वैज्ञानिकों ने केलोरी की सहायता से खाद्य पदार्थों से उत्पन्न शक्ति का पता लगाया है । पुष्टि-विज्ञान के अनुसार एक केलोरी ताप वह शक्ति है जो एक पौंड ( आधासेर ) जल के ताप को एक डिग्री फौरेनहाइट या एक लिटर ( १००० सी० सी० ) जल के ताप को १५ डिग्री सेन्टीग्रेड बढ़ा दे। राहुलजी ने कहा है "जितनी शक्ति में एक ग्राम जल एक डिग्री सेन्टीग्रेड में गरम हो जाता है।' एक ग्राम ७ $\frac{३}{४}$ रत्ती के बराबर है। अभीतक भारत में एक आदमी के पेट भरन अन्न के लिए ०.७ एकड़ पड़ता है। ऐसी हालत में सन्तुलित भोजन (Balanced diet ) मिलना दुर्लभ हो जाता है। योजना ऐसी बनानी चाहिए जिसमें मेलदार भोजन अवश्य मिले।

भुखमरी को दूर करने के लिए १००० केलोरी का भोजन होना चाहिए जबकि राशन में ९६० केलोरी का भोजन

मिलता है। मिल का चावल आटा तथा चीनी खाने से कोई लाभ नहीं। चीनी खाने से गर्मी मिलती है पर उसका असर स्वास्थ्य पर बुरा पड़ता है। अपनी गर्मी छोड़ने के लिए वह दूसरे अन्न के विटेमिनों को नष्ट कर देती है। गुड़ में तथा गन्ने के रस में सभी खनिज क्षार और दूसरे तत्त्व पाये जाते हैं।

| | चीनी | गुड |
|---|---|---|
| सुक्रोज ( शर्करा ) | ९९·७ | ५९·७४ |
| ग्लूकोज | × | २१·२८ |
| खनिज तत्त्व | ०·०२ | ३·३६ |
| नमी | ०·०४ | ८·८६ |

पटना के डाक्टर कालीदास मित्र ने लिखा है कि "खुराक की दृष्टि से गुड़ अपने खनिज तत्त्वों के कारण जो भी उसमें कम है चीनी के मुकाबले ज्यादा अच्छा है।" गुड का खनिज जल्दी ही खून में बदल जाता है।

| खनिज | फी १०० ग्राम गुड में मिलिग्राम के हिसाब से |
|---|---|
| केल्शियम | ७५ मिलिग्राम |
| फास्फोरस | ३८ ,, |
| लोहा | ११ ,, |
| ताँवा | ५६ ,, |

जिस तरह से मिल की चीनी के व्यवहार करने से मधुमेह,

पायरिया हो जाती है, उसी प्रकार मिल के चावल से बेरी बेरी का रोग हो जाता है। प्रो० जे० सी० कुमारप्पा ने ३०९५ केलोरी का भोजन खाने का आदेश दिया है, वह तालिका इस प्रकार की है।

| भोज्य पदार्थ | वजन | केलोरी |
|---|---|---|
| आटा, चावल | १६ औंस | १६०० |
| दाल | २ ,, | २०० |
| गुड़ | २ ,, | २०० |
| नट्स ( बादाम, अखरोट ) | १ ,, | १४५ |
| तेल | $\frac{१}{२}$ ,, | २५५ |
| घी | $\frac{१}{२}$ ,, | २५५ |
| दूध | १२ ,, | २४० |
| तरकारियाँ | ८ ,, | ४८ |
| आलू आदि | ४ ,, | १०० |
| फल | ४ ,, | ५२ |
| | | ३०९५ |

# खाद जमीन की आत्मा है

"गोबर, मैला, पाती सड़े।
तब खेत में दाना पड़े॥
खाद का कूड़ा ना टरै, कर्म लिखा टर जाय।
रहिमन कहैं बुझाय के, खेत पॉस परिजाय॥"

पहले पहल मनुष्य को खेती का ज्ञान नहीं था तब जंगलों में शिकार कर अपनी जिन्दगी गुजारता था। फिर जंगलों से कुछ पौधों को लाकर अपने घर के पास लगाना शुरू किया। धीरे-धीरे कृषि-कर्म का विकास होने लगा। जब लोगों ने देखा कि एक ही जगह बार-बार फसल उपजाने से पैदा कम होता है तो दूसरी जगह चले गये। फिर लोगों को पता चला कि जमीन को खिलाने से जमीन उपजाऊ हो सकती है। इस तरह खाद का प्रयोग मनुष्य द्वारा होने लगा।

दो तरह की खाद इस समय प्रयोग में आती है-सजीव (सेन्द्रिय) खाद और निर्जीव खाद (रवसायनिक खाद)। यहाँ की जमीन में पोटाश और स्फुर तो पर्याप्त मात्रा में मिलते है। नत्रजन और सेंद्रिय पदार्थों की कमी रहती है। उष्ण प्रदेश के कारण सेंद्रिय द्रव्य जल जाते हैं अतएव फिर से जमीन में देने की आवश्यकता होती है। जमीन के लिए तीन खाद मुख्य हैं (१) नत्रजन—इससे धड़, साखायें और

पत्ते पुष्ट होते हैं।पौधों के वृद्धि काल के लिए अत्यन्त उपयोगी है। पत्तेदार और फूलदार पौधे इससे विशेष प्रभावित होते है। (२) स्फुर (फास्फोरिक एसिड)। इससे पहिले जड़ों की पुष्टि होती है और बाद में फल और बीज के लिए इसका उपयोग होता है। स्फुर से पौधों के दृढ़ और निरोग होने में सहायता पहुँचती है और फसलें कुछ जल्द तैयार होतो है। फलदार पौधों के लिए यह उत्तम है और अवश्य देना चाहिए। (३) पोटाश—जड़, कन्दवालो (यथा शकरकन्द, गाजर, मूली, आलू, चुकन्दर वगैरह) और फलदार हरेक फसल को लाभ होता है। नत्रजन की अधिकता से होनेवाले नुकसान को यह रोकता है।

सेन्द्रिय खाद इतने प्रकार के होते है—(१) गोबर की खाद (Farmyard manure) सबसे अच्छी होती है। इसको धूप और पानी से बचा कर गढे में रखना चाहिए। फूस का एक छप्पर गढे की हिफाजत के लिए होना चाहिए। किसान अपने पशुओं की संख्या के अनुसार इसको बनावे। गहराई २-३ फीट से अधिक न हो। गढे की दीवारें ईंट की पक्की बनवा कर गढे की तल से ५ फीट अर्थात् जमीन से २-३ फीट ऊँची बनाना चाहिए। एक ओर का हिस्सा खाली रखना चाहिए ताकि गढे में आने-जाने का मार्ग रहे। एक जोड़ा बैल के लिए १०′×१०′×३′ फीट माप का गढा काफी है और इसमें ५० मन खाद बनेगी। गढे में गोबर तथा बिचाली

( जिसको पशुओं ने खाकर छोड़ दिया हो ) डालते रहना चाहिए। जानवरों के बैठने की जगह फूस या सूखी मिट्टी डाल देनी चाहिए जिससे पशुओं के पेशाब से भींग जाय। इन सब चीजों को भी गढे में हमेशा डालते रहना चाहिए। गढे हमेशा दबा कर रखिये कि सूखे नहीं। गर्मी में पानी उसपर डालना आवश्यक है क्योंकि इससे जल्दी सड़ेगा। इस तरह २-४ गढ़े तैयार रखना चाहिए जिसमें नया और पुराना खाद मिल न जाय। ४-६ महीने में यह खाद सड़ कर खेत में देने लायक हो जायगी।

(२) कम्पोस्ट (compost)—गोबर जलाने से कुछ फायदा नहीं होता है, उससे कई गुणा फायदा खेत में डालने से होता है। कम्पोस्ट खाद की कमी को पूरा कर देता है और सबसे सस्ता है और इसमें उतने अधिक गोबर की आवश्यकता नहीं होती है। कम्पोस्ट पानी की सुविधा वाले स्थान में बनाना चाहिए जहाँ छाया हो। २० फीट × १० फीट और १ फूट गहरे गढ़े बनाना चाहिए। इसके बाद घास पतवार, ऊख का छिलका, पुआल आदि गढ़े में १ फूट भर दें। फिर उसके दो या तीन इंच ऊँची गोबर की तह कर दें और पानी में उसको अच्छी तरह भिंगो दें। इसके बाद पत्तियों की दूसरी तह दे फिर उसी तरह गोबर दो-तीन बार देकर अच्छी तरह से पानी दे। इसी तरीके से छः-छः बार पत्तियों और सड़ी हुई सब्जियों की तह दीजिये और

उतनी ही गोबर की तह दीजिये। कम्पोस्ट खाद को पानी से हमेशा तर रखना जरूरी है जिसमें यह सड जाय। दो-तीन महीने के बाद जैसे-जैसे उलटते जायँ वैसे-वैसे पानी भी छिड़कते जायँ। इस तरह से छः महीने उलटने और पानी देने के कारण इसका रंग काला-काला भूरा हो जायगा। यह कम्पोस्ट खाद गोबर की खाद के समान फायदा पहुँचाती है। उपर्युक्त गढे में ८० मन खाद दो पैसे मन के हिसाब से तैयार होगी। इसमें पौधे की वृद्धि के लिए सब कुछ पायी जाती है। यह अत्यन्त सस्ती खाद है और एक कट्ठे में एक गाड़ी डालने से काम चल जाता है।

(३) स्वर्णखाद ( Night soil )—आजकल गॉव मे पैखाना गन्दगी का घर है पर सच पूछा जाय तो मनुष्य का पैखाना खेतिहर के लिए सोना है। खेत में डालने से अच्छी खाद होती है। चीन वाले कभी इसे बर्बाद नहीं होने देते और करोड़ों रुपये इससे बचाते है। इससे पैदावार भी बहुत होती है और बहुत रोगों से रक्षा भी पाते हैं। श्री धीरेन्द्र मजूमदार मनुष्य की टट्टी के बारे में क्या लिखते हैं, उस पर जरा आप गौर फरमायें—"अब मै उस कीमती खाद की बात बताना चाहता हूँ जिसके लिए बापू जी पिछले पचास साल से प्रचार करते आये है। वह है आदमियो की टट्टी। स्वयं उन्हीं के शब्दों में यह पाखाना खेतिहर के लिए मानो सोना है। इस विषय के विशेषज्ञ सर अलबर्ट

हावर्ड का कहना है कि मनुष्य की साल भर की औसत टट्टी से २०० पौंड खाद होती है। जिसमें १५ पौण्ड नाईट्रोजन (नत्रजन) ४ पौंड पोटाश और ५ पौंड फास्फोरिक एसिड रहता है। संयुक्त प्रान्तीय खेती सुधार कमेटी की १९४१ की रिपोर्ट में इसका एक हिसाब बनाया गया है। उसका कहना है कि अगर आठ आदमी का पैखाना जमा किया जाय तो एक एकड़ गन्ने की खेती में हद दर्जे की फसल उत्पन्न होगी। गन्ने की खेती वैसे ही कुछ ज्यादा खाद माँगती है। अगर हद दर्जे की उत्पत्ति करनी है तो कम से कम ४००) मन खाद एक एकड़ के लिए चाहिए। इस हिसाब से एक आदमी का पैखाना ५०) मन खाद के बराबर ताकत देने वाली चीज है। प्रान्त के प्रति ग्राम की आबादी ४७० की है जिसमे २० बच्चों में छोड़ देते है। ४५० आदमियो का २२५००) मन होगा। अगर किसी प्रकार से थोडी भी सावधानी रक्खें तो १२००) मन खाद पैखाना से हो सकती है। बापू ने इसके इस्तेमाल के तरीके भी बताये है। उसे इस्तेमाल करना चाहिए—"इस पाखाना को बहुत नीचे गढे में नहीं गाड़ना चाहिए। धरती के ९॥० इंच तक की परत में बेशुमार परोपकारी जीव बसते है। उनका काम उतनी गहराई में जो कुछ हो उसकी खाद बना डालने और सारे मैल को शुद्ध करने का होता है। सूर्य की किरण भी राम-धुन की भांति भारी सेवा करती है।" जुते खेत में पैखाना होने के बाद मिट्टी से उसको ढंक देने से खाद हो जायगी।

खेत की दरार मे भी पैखाना फिरने से कुछ काम चल जायगा।

५ फरवरी १९५० के नवराष्ट्र मे श्री रामचन्द्र रघुनाथ सखटे मैले की खाद के विषय में लिखते है "... .. .. जो कुछ मनुष्य तथा पशु खाते है--थोड़ा भाग मनुष्य के देह में रह जाता है। शेष मलमूत्र द्वारा पुनः पृथ्वी में पहुँच जाता है। जो हमारी देह में रह जाता है उसका थोड़ा सा भाग रात दिन में कारबोलिक एसिड गैस के रूप में होकर पुनः वायु में लौट जाता है। मनुष्य गड़बड़ न करे तो खाद की आवश्यकता ही क्या हो? अवशिष्ट चीजो को फिर पृथ्वी में प्रवेश करने की प्रथा वाली चक्र से जमीन का उपजाऊपन हमेशा के लिए एक समान रहेगा। रेलों के जरिये भाँति २ के प्रबन्धा से और नयी-नयी आवश्यकताओ के कारण हमारे गाँव व जिले में तथा सम्पूर्ण पृथ्वी पर ज्ञान के प्रकाशित होने से खाद्य पदार्थ एक जगह से दूसरी जगह जाते है। इसीलिए बनावटी खाद देना जरूरी हो गया है। क्योंकि यह बना बनाया मिलता है। मनुष्य के मैले की खाद सब खादों में श्रेष्ठ होती है। इससे नाइट्रोजन फारस्फरिक एसिड और पोटाश भूमि में पहुँचाया जा सकता है। सर डेनियल हाल नामक एक महाशय ने हिसाब लगा कर यह सिद्ध किया है कि जिस जगह में १० लाख की आबादी होती है यदि वहाँ के सब मैले की खाद खेत में पहुँचाई जावे तो करीब एक लाख बीस हजार पौड नाइट्रोजन खेत में पहुँच जायगा। यानी फी मनुष्य से साल भर मे बारह पौड

नाइट्रोजन, छः पौंड फास्फरिक एसिड और पाँच पौंड पोटाश जमीन में पहुँचाया जा सकता है। एक गाड़ी गोबर की खाद में करीब पाँच पौंड नाइट्रोजन होता है और सर डेनियल हाल के हिसाब से जो ऊपर दिया गया है, एक आदमीके साल की मैले में बारह पौंड नाइट्रोजन होता है जो करीब दो ढाई गाड़ी गोबर के खाद के बराबर हो गया। एक गाड़ी गोबर के खाद खेत में पड़कर यदि पाँच रुपये की पैदावार बढा देती है तो मैले की खाद देने से फी मनुष्य दस रुपये सालाना की पैदावार बढाई जा सकती है।"

(४) हड्डी मांस की खाद—मृत पशुओं को चमार लोग चमड़े उधेड़ कर मैदानों में छोड देते है। मांस को गीध, चील, कौए तथा कुत्ते खाकर केवल हड्डियाँ छोड़ देते है। विदेशी कम्पनियां उन हड्डियों को बटोर कर अपने देश को उपजाऊ बना रही हैं। अगर मेहनत किया जाय तो हड्डी-मांस का उत्तम खाद तैयार हो सकता है। चर्बी निकाल कर मिलों में उपयोग किया जा सकता है तथा तांत भी बनायी जा सकती है। अगर चमार इस बात को ट्रेनिङ्ग हावड़ा डेड कैटल इन्सटीट्यूट में प्राप्त कर लें तो उनको जूते बनाने के अलावे इससे भी अच्छी आमदनी हो जायगी तथा खेतों का उपजाऊपन भी बना रहे।

पौधे अपनी बाढ़ के लिए कार्बन, फास्फोरस, कैलशियम, पोटाशियम और नाइट्रोजन खोजते है। कार्बन और नमी

का अश वायुमंडल से प्राप्त हो जाता है। गोबर तथा नदी के पानी द्वारा लाई गई मिट्टी भी जमीन को उपजाऊ बनाती है। इसके अलावे भी जमीन अपनी कमी को और और तरीके से दूर करना चाहती है। आजकल निर्जीब खाद कारखानों में तैयार हो रही है। देखने में तो किफायत मालूम पडती है पर अनुभव से पता चला है कि उससे अनेकों हानियाँ है। पहले तो कुछ लाभ होता है फिर उस खाद के दिये बिना कुछ पैदा ही नहीं होता। उससे भूमि की शक्ति क्षीण हो जाती है और जमीन से ह्यूमस सदा के लिए दूर हो जाती है। तैयार फसल भी खाने में स्वादिष्ट नही होती है।

सजीव खाद निर्जीव खाद से लाख गुना अच्छी है। प्रकृति तो चाहती है कि मेरी चीज मुझे वापस मिले। पेड़, पौधे, पशु, पक्षी उसीके बनाये हुए हैं और उसके अवशिष्ट सार को हमेशा ग्रहण करने के लिए प्रस्तुत रहती है। इससे पृथ्वी की शक्ति क्षीण नहीं होती। हम अनाज पृथ्वी के द्वारा प्राप्त करते हैं अतएव हमारा फर्ज है कि अनाज का अवशिष्ट पदार्थ पैखाना जमीन को लौटा दें। उसी तरह पशु, पक्षी आदि का भी शरीर पृथ्वी से निर्माण हुआ है और मरने के बाद हड्डी-मांस पृथ्वी को मिल जाना चाहिए। हड्डी मे नाइट्रोजन तथा फास्फोरस की मात्रा अधिक है और निर्जीव खाद ( Chemical manure ) से अच्छा होता है। मांस भी कीमती खाद है पर गीधो को खाने लिए छोड़ दिया जाता है।

अतः हड्डी मास का चूर्ण जरूर बना लेना चाहिए। हड्डी मांस का चूर्ण बनाते समय इतना ध्यान देना चाहिए कि चर्बी मांस से दूर हो जाय क्योंकि चर्बी पौधों के लिए नुकसान देह होती है। बड़ी कड़ाही में मांस को गर्म करने से चर्बी अलग हो जाती है तब उसको सुखा कर हड्डी मांस का चूर्ण बना सकते हैं। चाय के खेतों के लिए इसका बहुत प्रयोग होता है। पेड की पत्ती मनुष्य के गुर्दे के समान है। अधिक पत्ती तोड़ने से पौधे बेजान हो जाते है और क्षीण शक्ति की पूर्ति के लिए जमीन से रस खीचते है। अगर जमीन में शक्ति नहीं रही तो पौधे मुरझाकर चल बसते है। अतएव पत्ती-दार पौधों के लिए हड्डा मास का चूर्ण बहुत ही लाभदायक है। जानवर पत्तियों को खाकर पलते हैं इसलिए उनकी मृत्यु के बाद पत्तियों से बने शरीर जमीन को अवश्य मिल जाना चाहिए जिससे पृथ्वी की शक्ति बनी रहे।

इस खाद में केवल पत्ती उपजानेवाली शक्ति ही नहीं है बल्कि फास्फोरस तथा कैलशियम भी है। बिना फास्फेट के मनुष्य, पशु और पेड़ आि नहीं रह सकते है। हड्डी मांस के चूर्ण में १३--१४ प्रतिशत फास्फोरिक एसिड है। अगर नाईट्रोजन की माला अधिक भी जमीन में रहे तो फास्फोरस के बिना पौधे का विकास नहो होगा। कैलशियम और पोटाशियम भी पौधों की वृद्धि करने में काफी सहायक होते है। कहने का तात्पय यह है कि खेतों के लिए सब तरह से यह खाद

उपयोगी है। एक एकड़ खेत में ८ मन खल्ली तथा ३ मन हड्डी मांस का चूर्ण उपयोग किया जाय तो खेत की उर्वरा-शक्ति कभी भी नहीं घटेगी। पर इतना ध्यान रखना चाहिए कि खाद उसके रस चूसनेवाले जड़ के समीप हो, नहीं तो पौधों की वृद्धि जल्दी नहीं ह गी।

जानवर को चमड़े उघेडने के बाद जमीन में गाड कर खाद बनायी जा सकती है। पृथ्वी में मांस सड़कर खाद के रूप में परिवर्त्तित हो जाता है। पर इसमें समय करीब ६ महीना लगेगा। अगर हड्डी मांस का चूर्ण न भी बना सकें तो सिफ हड्डियों को चूर्ण कर इस्तेमाल करें तोभी कम फायदा नहीं होगा। गाँव की हड्डियों को चुन कर कम्पनियाँ शहरों में भेज देती हैं, अतएव घर ही पर हड्डियों को अपूर्ण रूप से जला कर हम ओखली या ढेकी की मदद से चूर्ण बना सकते हैं। १२ मन हड्डियाँ जलाने पर प्रायः १ मन खाद मिलती है और एक दिन में एक मजदूर अच्छी तरह से चूर्ण कर सकता है। दूसरा तरीका यह भी है कि मैदानों में पड़ी हुई हड्डियों को कड़ाह में गर्म कर उसकी चमक (Enamel) दूर कर दें, फिर ढेकी या ओखली में से कूट कर खाद के रूप में व्यवहार कर सकते हैं। तीसरा तरीका यह है कि हड्डी को टुकड़ा-टुकड़ा कर गढ़े में रख दे और उस पर ताजा गोबर बिछा दें। इस तरह कई तह करने से गढ़े भर जाने पर मिट्टी से ढँक दें। छः महीने में खाद तैयार हो जायगी। जल्दी के लिए नमक भी

डाल सकते है। हड्डियों के चूर्ण में स्फुर की मात्रा अधिक है। इसमें चूना और नत्रजन भी पाया जाता है। इस खाद में पौधों को रोग से बचाने की शक्ति है। बगीचे के लिए हितकारी है। ३–४ पौंड खाद प्रत्येक पेड़ में देना चाहिए। एक मन गोबर की खाद—१ पसेरी लकड़ी की राख तथा एक पसेरी हड्डियों के चूर्ण को मिट्टी के साथ मिला लें और ३–४ पौंड खाद को एक गढ़े में देकर पेड़ लगावें तो खूब बढ़ेगा। हड्डियों की खाद से फलों का गलना बन्द हो जाता है।

(५) मूत्र खाद (Urine-earth)--जिसको पशुओं के बैठने की जगह घास-पात, राख बिछाकर प्राप्त करते हैं। यह भी उत्तम खाद है। पक्के के गच पर से नाली द्वारा गढ़े में जमा कर सकते हैं और कम्पोस्ट पर देने से कम्पोस्ट जल्दी ही तैयार होगा।

(६) घोड़े की लीद की खाद (Stable litter)--इसको सड़ाये बिना खेत में नही डालना चाहिए। एक साल तक कम्पोस्ट की भांति सड़ा कर खाद के रूप में व्यवहार कर सकते हैं।

(७) लेंडी की खाद (Sheep manure)--इससे लाभ खेतों में भेड़ियों को बिठा कर उठा सकते हैं। भेड़ और बकरी की लेंडी की खाद घोड़े की लीद की तरह खुश्क और कड़ी होती है। इसमें स्फुर (Phosphoric acid) बहुत रहता है और इसे बगीचों में इस्तेमाल कर सकते हैं।

(८) गंदा और मैला पानी (Sewage water) गाँव के गन्दा पानी गढ़े में जमा होकर मलेरिया फैलाता रहता है। इसलिए उस पानी को मोरी द्वारा खेतों की ओर ले जाकर फायदा उठाया जा सकता है।

(९) मुर्गी और चिड़ियों के बीट की खाद—गोबर की तरह सड़ा कर खेतो में डाल सकते है।

(१०) पत्तों की खाद—पतझड़ में नीम, आम, महुआ, पीपल आदि के पत्तों को गढ़े में सड़ाकर खेतों में डालने से बहुत लाभ होता है। इसको कम्पोस्ट की नाईं गढ़े में ढाल कर ऊपर मिट्टी से भर दे और यदा कदा पानी छिड़के। सड़ने पर खेत में डालें।

(११) हरी खाद (Green manure) हरी खाद अधिक तर सनई ढैंचा का होता है। जिस खेत में खाद की जरूरत हो उसी में बोना चाहिए। बोने के ५ हफ्ते बाद खेत में गाड़ना चाहिए। एक एकड़ जमीन में ३०-३५ सेर सनई का बीज और ढैंचा का १५-२० सेर बीज लगेगा। फलों के बगीचों में अथवा रब्बी की जमीन में सेन्द्रिय पदार्थ पहुँचाने का सस्ता उपाय है। यह धान में भी फायदा पहुँचाता है। १२-१६ ईंच पानी हरी खाद को सड़ने के लिए खेत में जरूर होना चाहिए। यदि धान में फायदा पहुँचाना चाहते है तो रब्बी की खेत में बो दे और धान की खेत में १५ रोज धान रोपने के पहले काट कर छींट दे और जुताई करे जिसमें कि

हरी खाद मिट्टी में दब जाय। पानी खेत में १२–१६ इंच तक जरूर रहे यह खाद १०–१५ दिन में जरूर सड़ जायगी।

( १२ ) मछलियों का चूर्ण वगैरह—इसकी खाद फल और फूल के बगीचों के लिए हितकारी है। इसमें ७—१२ प्रतिशत नत्रजन और ४–८ प्रतिशत फास्फोरिक एसिड (स्फुर) का अंश पाया जाता है। इसको थला बना कर दें। सड़ने के लिए ३–४ दिनों तक पानी देना जरूरी है नहीं तो लोमड़ी, कुत्ते चट कर जायेंगे। प्रति एकड़ ६–७ मन के हिसाब से इस्तेमाल किया जा सकता है।

( १३ ) कसाईखानों के गोश्त के टुकड़े और सूखा हुआ खून—इसमें नत्रजन की मात्रा अधिक है। पौधे के विकास के लिए उत्तम खाद है।

( १४ ) खल्ली की खाद ( Oil Cakes ) यह भी जमीन से उत्पन्न हुई है और पृथ्वी माता को लौटा देने से उसकी शक्ति बनी रहती है। कहा भी गया है—" गोबर, मैला, नीम की खल्ली। या से खेती में दूनी फली।" दो किस्म की खल्ली होती है (१) पशुओं को खिलाने योग्य, (२) पशुओं को नही खिलाने योग्य—इसमें अंडी, नीम, करंज, महुआ आता है। अंडी सब खादों में लाभ के विचार से सर्वोत्तम है। नीम, करंज और महुआ का खल्ली से दीमक वगैरह कीड़े दूर हो जाते हैं। खल्ली में नत्रजन काफी है। इसमें ४–७ प्रतिशत नत्रजन और साथ ही साथ स्फुर और पोटाश

का अंश भी में रहता है। बलथर जमीन की अपेक्षा काली, मटियार जमीन में विशेष लाभ होता है। सिंचाई भी सड़ाने के लिए होना जरूरी है। १०० भाग खल्ली का चूर्ण, २५ भाग मिट्टी, ५ भाग कोयला (चूर्ण), ६०–७० भाग जल मिलाकर और खाद को गढ़े में डालकर ढँक दें। लगभग ३ मास तक इसी तरह सड़ने दें। १०–१५ दिन बाद से ऊपर से पानी छिड़कते रहें। तैयार होनेपर खेत में डालने के पहले ढेर को खोल छाया में सुखा देना चाहिये।

( १५ ) तालाब, नदी, बाढ़ वगैरह की मिट्टी—ऐसी मिट्टी २००—३०० गाड़ी डालने से यथेष्ट लाभ होता है। यह २–३ साल तक लाभ पहुँचाता है। पुनपुन की बाढ से जल्लावाले खेत में हर साल नई मिट्टी आ जाती है।

### निर्जीव खाद (In Organic Manure)

सेन्द्रीय खाद (Organic manure) से खेत सुधरती है, वह सदा भुरी-भुरी रहती है। जिससे पौधों के लिए पर्याप्त वायु मिल जाती है। यह खाद सस्ती और सुलभ है। खल्ली कोल्हू की रहे तो सोने में सुगन्ध है। सेन्द्रिय खाद (सजीव) के बिना तो कायम नही चलेगा। निर्जीव खाद उसकी कमी को जल्दी पूरा कर देती है। चूना की पूर्ति तो सजीव खाद द्वारा नहीं हो सकती अतएव चूना खेत में डालना आवश्यक है। निर्जीव खाद महँगी पड़ती है और होशियारी से खेत में डालना चाहिए। रसायनिक खाद बनानेवाली कम्पनी

(Fertiliser Company) अपनी बिक्री बढ़ाने के लिए ग़लत-सलत प्रचार करते हैं कि जिससे भोले-भाले किसान नहीं समझ कर सल्फेट अमोनिया खेतों में छिट देता है। प्रयोग ठीक न जानने के कारण, सूखे खेत में नुकसान भी खूब करता है। रसायनिक खाद ( निर्जीव खाद ) हमारे खेतों का उपजाऊपन को बढाता नहीं है। इसका काम शराब की तरह क्षणिक जोश देकर पौधों को विकास करना है जिससे फसल खूब बढ जाती है पर साथ ही साथ जमीन को शक्ति को बर्बाद भी कर देती है। जमीन में भलाई करनेवाले चेरे (Earth worm) तथा ह्यूमस भी इन खादों से मर जाते हैं। जो खेती को उपजाऊ बनाते हैं। इसलिए बनावटी खादों से किसानों को चौकन्ना रहना चाहिए। अगर एक आध मन कम पैदा हुआ तो घबडाने की कोई बात नहीं, धरती माता तो शक्ति हीन नहीं होती।

यदि कोई व्यक्ति निर्जीव खाद डालने की कोशिश करे तो उनके इन सब बातों का ज्ञान रहना आवश्यक है। कोन सी खाद, कब, कितनी मात्रा में किस प्रकार से डाला जाय। इन खादों के इस्तेमाल के पहले खेत की जुताई अच्छी और महीन हो। इनमें बहुतेरे खाद पानी में धुल कर बह जाते हैं। स्फुर खाद (Phospheric acid) तो बोने के कुछ दिन पहले भी डाले जा सकते हैं परन्तु नत्रजन के कुछ खाद पौधों को थोड़ा बढ जाने पर डालना अच्छा है। कुछ क्षार खाद फसल के बोने के समय ही डालना चाहिए और बहुत ऐसी भी

है जो पत्तों पर गिर कर पत्तों को गला देते हैं जैसे शोरा। इसलिए मिट्टी मिला कर पौधों की जड़ में डालना उचित है। फिर भी मै इतना कह देता हूँ कि निर्जीव खादों पर निर्भर रहना अच्छा नहीं है क्योंकि इसको हम कम्पोस्ट की तरह घर में नही बना सकते हैं। बिहार में सिन्दरी फैक्टरी ६० करोड़ रुपये की लागत से बनी है। इसमें प्रतिदिन एक हजार टन सल्फेट अमोनियम तैयार होगा जिसके लिए दो हजार जिप्सम खाद की आवश्यकता प्रति दिन होगी। इसमें १४०० टन तो प्रति दिन कोयला खर्च होगा। इसकी बाई प्रोडक्ट (अप्रधान रचना, छाड़न) करीब हजारों टन कैलशियम कारबोनेट, स्लज (मैला) आदि सिमेन्ट फैक्टरी का कच्चा माल निकलेगा। ईश्वर करे कि फैक्टरी चालू रहे क्योंकि कच्चा माल बिहार में नहीं मिलता है। यह एमोनियम सल्फेट अधिकतर खड़िया तथा जिप्सम मिट्टी से बनायी जाती है। खड़िया मिट्टी उत्तरी बिहार में थोड़ी बहुत मिलती है। जिप्सम तो दूसरे ही प्रान्त में पाया जाता है। पश्चिमी पाकिस्तान के खेदबाड़ा के खानों में खड़िया मिलती है। २००० हजार मील से इसको मंगाना होगा। छः सात लाख टन खड़िया के आने के लिए प्रति वर्ष ५० हजार डब्बों की जरूरत होगी। रेल का किराया भी ज्यादा लगेगा। उसपर भी रेल के डिब्बे यहाँ काफी नहीं है।

खाद तत्त्व के अनुसार निर्जीव खाद को तीन वर्गों में बाँट

सकते है (१) नत्रजन देनेवाली, (२) स्फूर देनेवाली और (३) पोटाश देनेवाली। कुछ ऐसी भी खाद है जिनके द्वारा एक से अधिक खाद-तत्त्व की पूर्ति होती है।

### (क) नत्रजन की पूर्ति करने वाली खाद

(१) शोरा (शतांश नत्रजन १०--१२) सभी फ लों के लिए उपकारी है। पानी में जल्दी गल कर पौधों की जड़ के नजदीक पहुँच जाता है। दूनी, तिगुनी राख या मिट्टी मे सिचाई के बाद इस्तेमाल करें। पौधो को जड़ मे देना चाहिए– मात्रा फी एकड़ २--३ मन है। (२) एमोनियम सल्फट (शतांश नत्रजन २०)— जल्दी गल जानेवाली खाद। हल्की जमीन में व्यवहार करें। तत्काल लाभ के लिए सोडियम नाइट्रेड देना अच्छा है (पहाड़ी, लालमिट्टी या जहॉ सेन्द्रीय तथा चूने की कमी हो उस जमीन में नही देना चाहिए।

(३) सोडियम नाइट्रेट ( शतांश नत्रजन १५ ) नाइट्रेट शीघ्र पानी मे घुल कर पौधों को काम देती है। यह पानी को सोखता है। अतः बाढ़ के कारण गले हुए पौधों के लिए उप-योगी है। खाद देते ही पौधे पनप उठते हैं और उनमें नई शाखाये निकलने लगती है। खाद डालते समय पानी जरूर रहे। इस खाद को २-३ बार करके देना अच्छा है।

### (ख) स्फुर—पूरक खाद

(१) सुपरफौस—यह खाद नहीं मिलती है और आजकल बाजार में ट्रीपल सुपरफौस ( तिहरा सुपरफौस ) मिलता

है। इसमें ४०-५० प्रतिशत फास्फोरिक एसिड का भाग है। सुपरफौस के प्रयोग के पहिले इसमें चूना, राख, बेसिक स्लैग तथा सोडियम नाइट्रेड आदि खाद न मिलायी जाय।

(२) बेसिक स्लैग—इसमें १६–२० प्रतिशत फास्फोरिक एसिड होता है। चूना की मात्रा अधिक रहती है और हल्की जमीन में काम देती है। जमीन में नमी जरूर रहनी चाहिए। हड्डी के चूर्ण से पहले लाभ करती है।

(३) एमोफोस—पानी में घुलनशील हाने के कारण जल्दी लाभ होता है। नत्रजन तथा फास्फोरिक एसिड भी इसमें हैं। शतांश भाग नत्रजन का १६ और फास्फोरिक एसिड का २० रहता है।

(४) निसीफौस १ तथा २—न० १ में नत्रजनशतांश १४, स्फुर ४९, न० २ में स्फुर १८, नत्रजन शतांश १८ पाये जाते है।

(ग) पोटाशदात्री खाद।

(१) पोटाशियम सल्फेट :—४८ प्रतिशत पोटाश—सभी खादों में मिलाकर दे सकते हैं। बोने के समय खेत में डालना चाहिए। द्विदल फल और मूंगफली की खेनी में यह खूब लाभदायक है। (२) राख में भी पोटाश है और सस्ता होने के कारण पोटाश पहुँचाने के लिए प्रयोग करते है

(घ) अन्य खाद

चूना—अम्लदार मिट्टी में अम्ल की शांति के लिए या उन

खेतों में जिनसे स्फुरदात्री खाद लाभ नहीं पहुँचाता है, इस्तेमाल करते हैं। पहाड़ी, लाल जमीन में और द्विदल फसलों के लिए चूना डालना लाभप्रद है।

(२) खड़िया—यह धान के खेतों के लिए उपयोगी है। जिस समय धान में पानी रहे तभी डालना चाहिए। इससे दखिनहा, कोरिया, चतरा, उखरा बीमारी दूर हो जाती है। मात्रा फी एकड़ १५ सेर से ३० सेर है। इसमें सोडियम सल्फेट है। खेतों में आल बांधकर पानी रहने पर देना अच्छा है।

---

# अनाज के दुश्मन से कैसे बचें ?

"भारतवर्ष में लगभग ३० लाख मन अनाज, खराब अवैज्ञानिक अन्न-भण्डारों के कारण, हरसाल नष्ट हो जाता है। हमारे किसान व व्यापारी इस नुकसान को होनहार समझकर चुप लगाने के आदी हो गये हैं। दूकानदार, गोलेदार वगैरह इस घटी को अपने मुनाफे में पूरा कर लेते हैं और इसलिए अनाज की बर्बादी की चिन्ता नहीं करते। इस बर्बादी को पूरी तौर से रोक देना बहुत ही कठिन है—यह समझ में आता है। पर अगर इसका तिहाई हिस्सा भी बचाया जा सके, तो बचे हुए अन्न से देश के ७० लाख मनुष्यों को सालभर तक खाना दिया जा सकता है। इसलिए अन्न की इस बर्बादी में कमी हासिल करना हमारे लिए बड़े महत्त्व का सवाल है।"

—डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद

भूतपूर्व खाद्य-सदस्य भारत सरकार

१६–१०–४६

जी जान पर खेल कर किसान कुछ पैदा भी करता है तो उसे नहीं बचा पाता। कुछ तो महाजन, जमीन्दार आदि के पास चला जाता है और कुछ खाने पीने में। बीया—बेसार के लिए भी नही रह जाता है। इसका खास कारण अज्ञानता है। अनाज की बरबादी के मुख्य कारण (१) नमी (२) कीड़े

और (३) चूहे है। अनाज का बचाना बहुत जरूरी है जबकि हम दाने के लिए दूसरे मुल्क पर मुहताज रहते हैं। इसलिए गृहस्थों, व्यापारियों और गोलादारों को पूरा ध्यान देना चाहिए।

अनाज को गोदाम, भण्डार आदि ढेकों में इस तरह बेमौसम रख देते हैं कि बहुत सा गल्ला यों ही नुकसान हो जाता है। कहा जाता है कि नमी, कीड़ां और चूहों के कारण प्रति वर्ष ३०,००,००० टन अथवा ८,१०,००,००० मन अन्न बर्बाद हो जाता है आध सेर प्रति दिन के हिसाब से १८,००,००० आदमियों को साल भर तक भोजन दिया जा सकता है।

इसका सबसे बड़ा दुश्मन नमी है जिसके कारण न केवल गल्ला सड़ता ही है, बल्कि कीड़े—मकोड़े भी बहुत बड़ी संख्या में पैदा हो जाते है, जिससे बर्बादी की रफ्तार बढ़ जाती है। अनाज में अक्सर नमी तो होता ही है उस पर भी मौसम के अनुसार कम व ज्यादा रहती है। अनाज को खूब सुखाकर गोदाम या ठेकों में रखना चाहिए। अनाज में नमी की मात्रा ८ डिग्री तक हो तो उसमें कीड़े नहीं लगते हैं। नमी का हिसाब लगाना कठिन है पर यह अनुभव से ही जाना जा सकता है।

नमी आ जाने का मुख्य कारण बरसात है। बरसात में बिना तिरपाल ओढाये गल्ला ढोना नही चाहिए। यदि एक भी बोरा भीग गया और धूप में नहीं सुखाया गया तो नमी के कारण अनाज खराब हो जायगा। उसको सुखा कर

पीसने के लिए भेज देना चाहिए। किसानो का मकान तथा गोलेदारों के गोला भी नमी से भरा रहता है और फर्स और दीवारे पक्की नही होने के कारण भींगा रहता है और बोरे भी सटा कर रख दिये जाते हैं कि जिसमें हवा न लगे। इसकी वजह से काफी अन्न नुकसान होता है। इसलिए अन्न खाली फर्श पर न रक्खा जाय, और दीवालों से अलग हो। अगर काठ बिछा कर रखा जाय तो और उत्तम है क्योंकि ऐसा करने स हवा भी लग सकती है। बोरे की छल्ली दीवाल से डेढ़ फीट से अढाई फीट जगह छोड़कर लगाई जानी चाहिए जिससे आदमी घूम घूमकर निगरानी कर सके और हवा भी इधर उधर बोरो में लग सकती है। अगर पुआल और भूसा फर्श पर डाल कर रखें तो वह भी एक तरह से अच्छा ही है क्योंकि नमी भूसा और पुआल को पारकर नुकसान नहीं पहुँचा सकती है।

अनाज को बरबाद करनेवाले दुश्मनों ने कीड़े मकोड़े (Inseets) का दूसरा नम्बर है। यद्यपि ये देखने में छोटे हैं पर नुकसान करने में बड़े है। जब फसल खेत मे लगा रहता है तो उसी समय फल मे लग जाते हैं। खासकर दाल के कीड़े ( Pulse beetles ) फसल लगते ही, खेत मे ही, दाल के दानो के छेदकर उनके अदर अडे डाल देते है। फिर एक लस्सेदार चीज से ऐसा बन्द कर देते है कि भीतर मकोड़े (Larval) पड़े रहते है, पर पता नहीं चलता। कुछ

दिन के बाद जब कीड़े बड़े हो जाते है तो दानो को फाड़ कर बाहर निकल आते है और दाने खोखले पड़े रह जाते हैं। इसकी वृद्धि बेशुमार है। कोई मादा कीड़ा ५०० से १००० तक अंडे देती है; और अंडे से निकलते ही बच्चे (मकोड़े) अनाज के दानों को खाना शुरू कर देते हैं। ये बच्चे ४-६ सप्ताह में बड़े हो जाते हैं। हिसाब लगाने से मालूम हुआ है कि एक मादा ७-८ महीनों में लगभग १ करोड़ कीड़े-मकोड़े तैयार कर सकती है।

इसके बढ़ने का कारण गन्दगी और नमी है। गोदाम को साफ सुथरा रखना जरूरी है। फालतू चीज गोदाम में नहीं रखना चाहिए। बहुत से गोलेदार फटे-पुराने बोड़े गोदाम ही में छोड़ देते हैं जिससे नुकसान कम नहीं होता है। गोदाम को अक्सर झाड़ना-बुहारना जरूरी है। पर झाड़न बुहारन को चलनी से अनाज निकालने के बाद जला देना चाहिए। फिर भी कीड़े लग जॉय तो सरल उपाय भगाने का यही है कि उन्हे गैस क्रिया ( Fumigation ) से मार दिया जाय। पर इससे मनुष्य को होशियार रहना चाहिए क्योंकि विषैली होने के कारण खतरनाक है और इसका प्रयोग जानकर ही कर सकते है। झरने से चालकर और धूप में अनाज को सुखाकर भी कीड़े नष्ट किए जा सकते हैं।

अनाज के नुकसान करनेवाले बड़े दुश्मन चूहे भी है। चूहे अधिक बर्बाद करते है। खेतों में खड़े फसल को काट

खाते है और खलिहानों में मनो अनाज बिलो में चुरा ले जाते हैं। हिसाब लगाने से पता चला है कि १०० चूहे एक साल में २७ मन अनाज खा सकते हैं और एक जोड़ा वर्ष भर में ८०० चूहे पैदा कर सकता है। इसके कारण हिन्दुस्तान में प्रतिवर्ष चूहों से २,७०,०० ००० मन अन्न बर्बाद होता है।

इससे बचाने के लिए गोदाम का फर्श पक्की ईंट व पत्थर का होना चाहिए। कोशिश ऐसी करनी चाहिए कि मकाना चूहे से वरी वाला हो ( Rat-proof )। बिल को काँच क टुकड़े या सीमेन्ट से बन्द कर देना चाहिए। पर बन्द करने के पहले चूहा बाहर बिल से निकाल लेना आवश्यक है। भूसा और पुआल में अनाज रखने की रिवाज तो अच्छी है यदि मकान न चूए और जमीन में नमी न हो। किवाड़ भी ऐसे हों कि चूहे प्रवेश न करें। बहुत जगह ऐसी भी प्रथा है कि अनाज नमी के कारण सड़ जाए तो परवाह नहीं करते कारण यही है कि नमी के कारण अनाज का वजन तो बढ़ ही जाता है। गरीब किसान पक्की खत्तियों में जिसमें नमी न हो अनाज ढाला कर सकते है। इसमें चूहों का भी डर नहीं रहता है। बाहर के कीड़े-मकोड़े भी अनाज को नुकसान नहीं पहुँचा सकते। बरसात की मौसमी हवा व नमी, या बाहर की आबहवा व नमी का भी उनमें असर नहीं पड़ता। साथ ही बोड़ों की भी बचत होती है।

---

# खेती कैसे हो ?

"हिन्दुस्तान में कृषि की कोई ऐसी प्रणाली नहीं चलायी जा सकती जो अन्य देशों में चलायी गई है। इसकी उन्नति के लिए तो यही आवश्यक है कि यहाँ की हालतों का स्वतंत्र रूप से वैज्ञानिक अध्ययन किया जाय तथा यहाँ की जनता की जरूरतों को समझा जाय। इस दृष्टि से किये गए प्रयोगों से जो बातें मालूम होंगी, उन्हीं बातों से यहाँ की खेती का विकास संभव होगा"।

—सर जान रसेल

अनेकों कृषि विशारद जो विदेश से शिक्षा प्राप्त कर भारत में आये हैं, वे कहते है कि वैज्ञानिक ढंग से खेती करने ही से उपज में वृद्धि हो सकती है। उनका भी ध्यान स्टीम प्लाऊ और कैटर पिलर ट्रैक्टर पर ही जाता है। क्या गरीब किसान इसे खरीद सकता है ? ब्रिटिश भारत की कुल खेती के लायक जमीन के लिए तीन करोड़ अस्सी लाख हल चाहिए। पर है एक करोड़ सतासी लाख। हिसाब से पता चला है कि दो करोड़ हलों या चार करोड़ बैलों की कमी है। जो किसान बैल खरीद कर इस कमी को पूरा नहीं कर सकता है, वह कीमती ट्रैक्टर कहाँ से लायेगा ? जमीन टुकड़े-टुकड़े चारों ओर बिखरी पड़ी हैं। खास कर छोटानागपुर

कमिश्नरी में तो ट्रैक्टर मुँह ताकता ही रह जायगा, जहाँ की जमीन काफी ऊँची और नीची है। मशीन को चलाने के लिए कोयला लकड़ी, और पेट्रोल की जरूरत रहती है। हिन्द संघ के तेल के कूपों को सालाना पैदावार के ताजे से ताजे आँकड़े है—८२,००,००,००० गैलन जिसका सिर्फ ७ प्रतिशत इंजनों में जलाने में आता है। विदेशों से आने वाले तेल के ताजे से ताजे आँकड़े भी नीचे दिये जाते है।

**( १९४९ के अप्रैल से दिसम्बर के नौ महीनों का )**

| | |
|---|---|
| किराशन— | १,१७,९३,६९,८९,००० गैलन |
| डाइजिल ओआइल— ( Diesel oil ) | २३,१०,६०,९०० ,, |
| पेट्रोल | १०,२४,७५,०१३ ,, |
| विदेशों से आया कुल तेल | १,१८,२७,०५,२४,९१३ ,, |

तेल के लिए हमलोग विदेशों पर आश्रित हैं। जबतक दुनिया के तेलों पर कब्जा नहीं होगा तबतक ट्रैक्टर लाना युक्तिसंगत नहीं है। अगर ट्रैक्टर पर निर्भर करते हैं तो तेलवाले देशों में लड़ाई होने पर खेत बिना जुते रह जायँगे और भूखों मरने की नौबत आवेगी। १९४९ में हमलोगों को हिन्द के पेट्रोल के कोटे में १० प्रतिशत कमी रही है। सभी पेट्रोलवाले देशों में इसका खर्च बढ गया है। जब मौजूदा हालत में हमारी पेट्रोल की जरूत पूरी नहीं होती तो फिर ट्रैक्टर आने पर कैसे पूरी होगी? जब हम अपने खेतां में ट्रैक्टर दाखिल

करेंगे तो नतीजा यह होगा कि गाँवों की अर्थ व्यवस्था, पशुधन, श्रम का सदुपयोग वगैरह बातों को एक तरफ रख देनेपर भी हम अपने अन्न के लिये ट्रैक्टर पर निर्भर करेंगे और भूखों ज्यादा मरेंगे।

ट्रैक्टर उस देश के लिये जरूरी हो सकता है जहाँ काम ज्यादा हो और आदमी कम। पर यहाँ तो खेती के एक मात्र सहारा ग्रहण करनेपर भी खेती में साल भर काम नहीं मिलता। इस तरह १० करोड़ ७० लाख आदमी तो नब्बे दिन बेकार बैठे रहते है। अगर ट्रैक्टर से खेती करेंगे तो बेकारों की संख्या बढ़ जायगी। फिर भी पशु को बैठकर कौन खिला सकता है? यहाँ तो पशुओं से दो ही काम लिये जाते हैं—एक दूध का और दूसरा खेती और यातायात का। विदेशों में दूध और मांस के लिए अलग-अलग पशु पाले जाते हैं इसलिए वे लोग ट्रैक्टर के पीछे ज्यादे लीन रहते है। अमेरिका में दुनिया की आबादी के छः प्रतिशत लोग बसते है और दुनिया की काश्त का करीब पाँचवाँ हिस्सा उनके पास है। इसलिए खेती के तरीकों से नुकसान होने पर कुछ नहीं अखरता और प्रतिवर्ष नई-नई जमीनें ट्रैक्टर से जोतते चले जा रहे हैं। घनी आबादीवाले हिन्दुस्तान में एक तो जमीन कम और यदि खेती ट्रैक्टर से करेगे तो जमीन खराब होने पर नयी-नयी जमीनें खेती के लिए लावेंगे कहाँ से?

ट्रैक्टर से गहरी जुताई हो जाती है जिससे जमीन की

मिट्टी ऊपर से नीचे हो जाती है। जब वर्षा कम होती है तब खरीफ में गहरी जुताई प्रथम वृष्टि से प्राप्त जल की नमी को खतम कर देती है, इसका नतीजा यह होता है कि बीज नहीं जमता है; दूसरी तरफ जहाँ काफी वृष्टि होती है तब गहरी जुताई से नमी बहुत दिन तक खेत में रह जाती है जिससे बीज नहीं जमता है या जमने में कमी रह जाती है। अगर बीज-वपन देर से किया गया तो पैदा में भी बहुत अंतर पड़ जाता है। ट्रैक्टर से हानि का ज्वलन्त उदाहरण संक्षेप में लिख रहा हूँ। वजीरगंज स्टेशन से दो मील की दूरी पर कुरकीहार (जिला गया) गॉव में राय हरिप्रसाद जी ने किसानों की जमीन नीलाम करवा ली थी। जब किसान और मजदूर ने उनको खेती में असहयोग दिया तो ट्रैक्टर लाकर खेती करवाना शुरू किया। परिणाम यह हुआ कि गहरी जुताई के कारण धान की फसल अच्छी नहीं हुई और २० मन बीघे के दर से जानेवाले खेत में ५-६ मन बीघे के दर से उपज हुई। बहुतों को कहना है कि रब्बी की खेती ट्रैक्टर से हो सकती है। पर टांढ़ा बिना हल के नही लग सकता है। अतः ट्रैक्टर खरीफ तथा रब्बी के लिए भी उपयोगी नहीं है।

हमें तो हिन्दुस्तान की आर्थिक दशा देखकर चलना है। जिस काम को मामूली बैल के सहारे कर सकते हैं उसके लिए राष्ट्रनिधि खनिज पदार्थों से काम लेना अच्छा नहीं मालूम

पड़ता है। डाक्टर राइट तथा मि० ओल्वर के अनुसार पशु व्यवसाय की आमदनी १९ अरब के लगभग है जब कि भारत के किसानो की सभी उपज की आमदनी २० अरब है।

ऊपर बता चुका हूँ कि धरती की शक्ति ट्रैक्टर और यन्त्र सम्बन्धी जुताई से खराब हो जाती है। दूसरी बात यह है कि ट्रैक्टर खाद शून्य है। लोग समझते हैं कि ट्रैक्टर को खिलाने पिलाने में खर्च नहीं होता है और उतनी हिफाजत नहीं करनी पड़ती है। पर ट्रैक्टर से लाभ के साथ अधिक नुकसानी है। ये रसायनिक खादें और मशीनें पृथ्वी की रचना को सन्तुलित नहीं रख सकते हैं। दिखावटी लाभ जो भी हो पर अन्त बुरा है। यहाँ के किसान इतने अशिक्षित है कि ठीक मात्रा में रसायनिक खाद का प्रयोग भी नहीं कर सकते है। बनावटी खाद के कारण रोग से नर-नारी, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी सभी परेशान है। जमीन को उपजाऊ बनाने के लिए ह्यूमस की आवश्यकता होती है। गोबर खाद से हमें ह्यूमस और खाद दोनो मिलती है। ट्रैक्टर की खेती में यह सुविधा नहीं मिलने को।

सहयोगी खेती ट्रैक्टर द्वारा हो सकती है पर यहाँ तो भूमि बाँटने पर १०० एकड़ पीछे ११८ आदमी पड़ते है। इस प्रकार १ आदमी के हिस्से लगभग एक एकड़ आती है और सहयोगी खेती होने में अभी बहुत समय लगेगा। अगर पंचायत हर एक ग्राम में अच्छे-अच्छे सुधारे हुए औजारों

को काम में लावे जिसको कि गाँव का लोहार टूटने फूटने पर मरम्मत करे तो सबसे अच्छा है। गाँव के हरएक पाठशाला को प्रायोगिक क्षेत्र में बदल कर कृषि-विभाग के अधिकारी दिल से काम करें तो ट्रैक्टर से ज्यादा फायदा हो सकता है। कामदार को कम्पोस्ट बनाने का सरल तरीका किसानों को समझाना भी कम लाभदायक नहीं होगा।

———

# बेकारी और भुखमरी क्यों ?

"खर्च कम कीजिए और अधिक उपजाइये। यद्यपि राजनैतिक स्वतंत्रता मिल गयी फिर भी उससे बड़ा भार अभी हमलोगों के सिर पर है—वह है आर्थिक स्वावलम्बन की प्राप्ति—भारत बाहर से करोड़ों रुपयेका गल्ला मंगाता है, यह हमारी आय पर भारी धक्का पहुँचाता है। अब समय ऐसा आ गया है कि सब कोई मेहनत कर अपनी जमीन में सब कुछ पैदा स्वयं कर लें।"

—सरदार पटेल

भारत में भुखमरी खेती के ह्रास होने के कारण होती है। गोपालन की कमी होने के कारण खेती की शोचनीय दशा हो गयी है। भारत में भुखमरी और बेकारी का कारण गृह-उद्योग का नाश भी है। इसके अलावे भी देश का बहुत सा धन विदेश में चला गया, जिसके कारण देश की आर्थिक हालत बहुत बुरी हो गयी है। एम्पलायमेंट एक्सचेन्ज की सामयिक रिपोर्ट से पता चलता है कि हजारों-लाखों भारतीय योंही बेकार बैठे रहते हैं। जब मिलें बन्द होती हैं तो और भी बेकारी बढ जाती है। मिलों में मजदूरों की छटनी हमेशा होती रहती है, इसका मुख्य कारण यह है कि पूंजीपति अपने माल की खपत पर मिल खोलता और बन्द करता है। भुख-

मरी के कारण के लिए हमें यह सोचना चाहिए कि लोग बैठकर देश की आय को तो नहीं कम कर रहे हैं ? मजदूरों में बैठनेवाले कम मिलते है। मध्य-वर्गीय में तो औरतों से काम लेना इज्जत के खिलाफ समझते है और जब भूख मरने की नौबत आती है तो खूब काम लेते है या अपना खर्च घूस-पेंच से चलाते है।

गाँव में पौनिया (हजाम, बढ़ई, लोहार, तेली, धोबी आदि) को गल्ले ही दिया जाता था पर धन जमा करने की प्रवृति ने पैसे का रूप लिया। सेफ्टीरेजर ने हजामों के मुँह की रोटी छीन ली। मशीन-से लकड़ी चीरने के कारण बढ़ई बेकार पड़ गये। यादव लोग भी मशीन से मक्खन निकालने लगे। स्त्रियाँ अब मिल के कारण चक्की नहीं चलाती है। तेली भी कोल्हू बन्द कर खेती, मजदूरी करने लगा। क्रोम के शौक के कारण गाँव का चमार जूता बनाना छोड़ दिया। खेतीहर मजदूरों की आमदनी बारह आने रोज से ज्यादा नहीं पड़ता है। फिर भी साल भर काम नहीं मिलता। खर्च के अनेकों रास्ते हो गये हैं। शादी, गमी, तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट और चाय का खर्च बढ़ गया है। भुखमरी के कारण पुष्टिकारक भोजन का अभाव है पर सन्तान होना ही चाहिए, चाहे भर पेट खाना मिले या न मिले। भिखारिन को लज्जा निवारण के लिए कपड़े भी नहीं तभी सन्तान एक गोद में, एक कन्धे पर, एक पीठ पर—दो

आगे, दो पीछे सैनिक की तरह चलते देखगे। यहाँ एक आम रिवाज हो गयी है कि आय में वृद्धि हो या न हो, संतान की वृद्धि दो वर्ष में एक अवश्य होनी चाहिए। माल्थस के अनुसार जन संख्या ज्यामितिक वृद्धि के अनुसार बढती है—उदाहरणवत्—१, २,४,८,१६,३२, और ६४ आदि या १,३,९ २७,८१,२४३ और ७२९ आदि के हिसाब से। उनके मत से खाद्य सामग्री के परिमाण की वृद्धि अंकगणित की वृद्धि के अनुसार बढती है—यथा—१,३,५,७,९, आदि के हिसाब से अन्दाज से दो तीन सन्तान अपनी औकात के मुताबिक पैदा करे। अल्पायु, जीर्ण, रोगी और निर्बल संतान से कुल, जाति, समाज, देश और राष्ट्र को लाभ नही हो सकता। बलवान् पुत्र ही से राष्ट्र का उपकार हो सकता है।

भूमि का उचित वितरण होना जरूरी है। क्योंकि किसी के पास हजार एकड़ जमीन है और किसी को कुछ भी नहीं। एक परिवार के लिए अगर औसत ढंग की जमीन हो तो १५ बीघे में काम चल जा सकता है। अतः सरकार को चाहिए कि पॉच आदमी के परिवार के लिए दस एकड़ जमीन का प्रबन्ध करे। कानून ऐसा बनाना चाहिए कि खेत का उचित बँटवारा हो। खेतों पर रैयतों का हक होना चाहिए जमीन्दारी को शीघ्र ही निमू ल करना चाहिए और खेतों की मालगुजारी गल्ले के रूप में लिया जाना चाहिए। जमीन्दारों को मुआवजा नहीं मिलना चाहिए क्योंकि उन्होंने किसानों

का शोषण बहुत किया है। अगर सरकार ऐसा ही चाहती है तो किसान से रुपये लेकर जमीन्दारों को शीघ्र दे दे और किसान को उसका बौन्ड दे दे। एक मन प्रति बीघे के हिसाब से सरकार को गल्ले के रूप में किसान से मालगुजारी वसूल करना चाहिए। खेती की चकबन्दी होना जरूरी है। जिस किसान को पालन-पोषण भर जमीन न हो तो सरकार को जमीन देना चाहिए या किसी जगह नौकरी देकर उसकी आय बढावे। रूस में भूमि वितरण व्यवस्था ने बेकारी को बिल्कुल मिटा दिया है।

पैसा–कमाऊ (money Crop) फसलो को रोपना बन्द करवा देना चाहिए। ऊख, लालमिर्च, तम्बाकू के खेती करनेवाले से अधिक टैक्स सरकार को लेना चाहिए। खेत में किसान ऐसी चीज अधिक पैदा करे जिसमें जानवरों को कुछ चारा भी मिल जाय जैसे धान, रब्बी मकई, और बाजरा आदि। अपने आवश्यकतानुसार ऊख की खेती भी किसान कर सकता है पर मिल के लिए ऊख की खेती करना अच्छा नही है। दक्षिण में मालाबार के किनारे आजकल नारियल के वृक्ष काफी तायदाद से लगाये गये है। पहले उसमें साग-सब्जी तथा खाद्य पदार्थ भी खूब उपजता था इस समय सब नारियल शहरों मे चालान हो जाता है और टाटापुरम् में हमाम साबुन बनता है। बिहार मे डालमियाँ नगर में वनस्पति घी बनने के कारण चीनिया बादाम की खेती

खूब होती है और सबका जमाया तेल तैयार कर लिया जाता है। मशीन लगाकर खाद्य समस्या को और भी जटिल बना दिया गया है। सरकारी रिपोर्ट के अनुसार २० लाख एकड़ जमीन में नारियल की खेती होती है और उसमें वनस्पति घी की २७-२८ मिलें चलती हैं। अगर भोजन पदार्थ पैदा किया जाता तो ५० लाख मनुष्य का पेट भर सकता था। बढती हुई संख्या को रोकने के लिए संतति नियमन बनाया जाता है। एक बढ़े हुए परिवार के लिए जमीन के कुछ टुकड़ों की आवश्यकता होती है पर एक मिल के लिए कई हजार एकड़।

भोजन में शकरकन्द का आटा का व्यवहार गेहूँ के साथ कर सकते हैं या ऐसे भी खा सकते हैं शकरकन्द में आलू से अधिक कैलशियम, चूना और विटामिन 'ए' पाया जाता है। इसके अलावे मूँगफली को कोल्हू में पेरवाकर उसकी खल्ली का उपयोग कर सकते है। इसमें प्रोटीन की प्रचुर मात्रा के साथ कुछ मात्रा में चर्बी, लवण और विटामिन भी पाये जाते है। अपने भोजन के साथ इसे खा सकते हैं। गेहूँ के आटे में मूँगफली की खल्ली मिलाकर पकायी जाय तो अच्छी बात है। ट्रावणाकोर, कोचीन और मालाबार में गेहूँ या शकरकन्द के आटे के साथ टेपिओ का व्यवहार करते हैं। आम की गुठली भी बड़ी मुफीद चीज है और उसका आटा भी मड़आ से खराब नहीं है। मिलों में गेहूँ के आटे के साथ पत्थर भी पीस कर खिला दिया जाता है। तेलों में

भी काफी हरकत की जाती है जिससे बेरी-बेरी का रोग हमेशा होते रहता है।

फलदार वृक्षों का रोपना भी जरूरी है। एक पेड़ पपीते में २७ सेर पपीता फलता है और एक एकड़ में ३०००० सेर। केले की बागवानी में भी किसानों को बहुत लाभ है और उससे खाद समस्या बहुत अंशों में हल हो जाती है। केला पूरा भोजन में गिना जाना चाहिए और अगर थोड़ा दूध मिल गया तो उसके समान किफायत और पुष्टिकारक भोजन मिलना दुर्लभ है। अतः किसानों को केले और पपीते की खेती करना आत्यावश्यक है। साग-सब्जी भी सभी के लिए जरूरी है भारत में वनस्पति और वृक्षों के पत्तों को खाकर गौतम, कणाद ने न्याय और वैशेषिक की गूढ फिलौसफी प्रोद्भावित की थी। दीर्घायु होने के लिए अन्न की उतनी आवश्यकता नहीं है। सात्विक भोजन से ही चिरायु मनुष्य हो सकता है अतएव भोजन में दूध, फल, तरकारी की मात्रा बढ़ा दी जाय तो शरीर पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा और रोग मुक्त रहेगा।

पशुपालन भी देश की खाद्य समस्या को मिटाने में सहायक हो सकता है। दूध के उत्पादन अधिक होने से बच्चे दूध पीकर रह जायँगे और अन्न की बचत होगी क्योंकि अन्न का प्रभाव इसलिए ज्यादा हो जाता है कि नौ मास के बच्चे भी अन्न ही पर पाले जाते हैं। इसका नतीजा यह होता है कि जवान खाते हैं तीन बार तो बच्चे खाते है तेरह बार। अतः

हर एक नागरिक का कर्त्तव्य है कि खेती की समस्या तथा खाद्य समस्या को दूर करने के लिए पशुपालन पर ध्यान दें।

खेत उसीके हाथ में रहे, जो जोते। आज भारत में खेत अधिक उसके पास है जो कभी अपने खेत में नहीं जाते हैं और जो कभी हल की मुठिया को नही पकड़ा। रोगी, विधवा, नावालिग अपने खेत को दूसरे को दे सकता है।

स्वदेशी सरकार हो पर भी गरीबी कम नहीं रही है। इसका कारण क्या है? सरकार पूंजीपति की पीठ सहला रही है। इसलिए तो दरिद्रता ज्यों की त्यों है। वह पश्चीमी ढंग के अर्थ-शास्त्र के अनुसार यहाँ की दरिद्रता मिटाना चाहती है पर गरीबो पहले से और उग्र रूप धारण करती जाती है, इसका मुख्य कारण उद्योगों का केन्द्रीकरण है। केन्द्रीकरण से धन भी एक जगह केन्द्रीभूत हो जाता है। हिन्दुस्तान ऐसे गरीब देश में धन का उचित बँटबारा होना आवश्यक है। रूस के समान राष्ट्रीयकरण उद्योग से भी धन का बँटबारा पूर्णरूपेण न होगा क्योंकि यहाँ नौकरशाही कभी भी इसको नही होने देंगे। जिनका नैतिक पतन हो गया है उससे राष्ट्र की भलाई नही होगी। अन्न, वस्त्र सम्बन्धी उद्योगों का केन्द्री-करण होना परमावश्यक है। मिल में अन्न न जाय तथा वस्त्र के लिए हाथ के चरखे, करघे से काम लेने से गरीबी और भुखमरी शीघ्र ही दूर होगी। मिल में अन्न के साथ पत्थर, लकड़ी भी पीस कर लोगों को खिला दिया जाता है। करुआ

तेल में सुरगुजा आदि मिला कर बेच दिया जाता है। कपड़े भी छिहर कर दिया जाता है कि जिससे किफायत हो और हाथ की बनी चीजों से सस्ता बिके। इस तरह से कारखानों में माँ के समान ममता नहीं है बल्कि हलवाई वाली प्रवृति है जो सड़े ब्राजिलियन गेहूँ के मैदे की रंगदार जलेबियाँ बना बना कर ग्राहकों को ठगता है। इसी तरह की प्रवृति मिलों में पाया जाता है। अतएव पूंजीपति वाले मिलों को बन्द कर देने से ही देश का कल्याण हो सकता है। मिलवाले अन्न की बर्बादी विज्ञापन में लई के रूप में खूब करते है। आजकल टीन पर, बीड़ी पर, रंग बिरंगे लेबुल साटे जाते हैं। उसमें भी कम अनाज की बर्बादी नहीं होती है।

किसान इतना भोला-भाला है कि मिल के साफ-सुथरी, चटकीली चीजो को फेर में आ जाता है और हाथ की बनी चीजों से नफरत करता है। मैंने एक आदमी को वनस्पति घी के बदले शुद्ध बादाम का तेल श्राद्ध में इस्तेमाल करने के लिए कहा तो वे कहने लगे कि शुद्ध बादाम का तेल तो अच्छा नहीं है क्योंकि दही खाते समय शुद्ध बादाम के तेल की पूड़ी में तीतापन आ जाता है। जमाया तेल नीम की जली लकड़ी ऐसी है। यह सबको मालूम होना चाहिए कि शुद्ध घी के समान जमाया तेल नहीं हो सकता है। तेल का सभी शरीर पोषण तत्त्वो को नष्ट कर देंगे तब दही के साथ पूड़ी में तीताई नहीं रहेगी। जाड़ा में खादी गर्म रहती है और गर्मी में ठण्ढ़ा।

जो मिलें माता के समान बच्चे को उपकार नहीं करे, वैसी मिल की यहाँ आवश्यकता नही है। बहुत से उद्योग हैं जिसका विकेन्द्रीकरण नही हो सकता है। लोहे के कारखाने, यातायात, रेल, पोस्ट और टेलीग्राफ आदि को राष्ट्रीय करण कर देश को लाभ पहुँचाना चाहिए।

मिल के अधीन काम करने वाला स्वतंत्र नहीं है। गांधी जी भी चाहते थे कि मनुष्य मशीन का गुलाम न रहे। जब किसी फैक्टरी में नफे का सवाल आ जाता है तभी वह बुरा कहा जा सकता है। लूट-खसोट की पद्धति समाज में सचमुच अच्छा नही है। महात्मा जी कहते है—

"आज का दुःख तो यह है कि शहर के लोगों में देहात के प्रति लापरवाही बढती जा रही है। वे यह भी मानते हैं कि बहुत निकट भविष्य में गाँव का नाश हो जानेवाला है। अगर हम हाथ का बना माल नहीं खरीदेंगे और मिलो और कारखानों की बनी चीजें ही खरीदते रहेंगे तो निश्चय ही यही होगा। इसलिए आज यहाँ जो एकत्र हुए हैं उन्हे ग्राम-वृति के सन्देश का प्रचार करने के लिए निकल पड़ना है। एक कारखाना कुछ सौ आदमियों को रोजी देता है पर हजारों को बेकार बनाता है। तेल की मिल बना कर टनों तेल निकाला जा सकता है, पर हजारों तेलियों की रोजी छिन्न कर। इसे मै संहारक शक्ति कहता हूँ। तहाँ दूसरी तरफ करोड़ों आदमियों के परिश्रम से काम लेना रचनात्मक शक्ति कहता हूँ।

इसीमें सर्वोदय सधता है। यन्त्रों की सहायता से ढेरों माल बनता है। पर अगर उन पर सम्मिलित स्वामित्व भी हो तो भी उनसे कोई लाभ नहीं। यहाँ आगे चलकर यह भी पूछा जाता है कि यन्त्र शक्ति का उपयोग करने से लाखों आदमियों के परिश्रम की बचत की जा सकती है। उनका समय बचाकर उन्हें अपना बौद्धिक विकास करने का मौका क्यों न दिया जाय ? पर ऐसा अवकाश एक खास मात्रा में ही जरूरी और फायदेमन्द होता है। पर ईश्वरीय संकेत तो यही है कि मनुष्य खुद अपने हाथों से परिश्रम करके अपना पेट भरे। और खास कर मुझे उस शक्ति से डर लगेगा जो जादू की लकड़ी घुमा कर हमारी खान-पान की जरूरतों की पूर्ति करने का लालच बताती हो।"

हर कांग्रेसवादी के सामने यह सवाल है कि देशी और विदेशी मिलों के कपड़ों को हटाकर उनके स्थान पर खादी की स्थापना किस प्रकार की जाय ? कांग्रेस मण्डलों में कई बार लोग यह ख्याल कर लेते हैं कि देशी मिलों का कपड़ा खादी के समान ही अच्छा है और फिर वह सस्ता है इसलिए खादी से वह बढकर है। पर यह कई बार सिद्ध कर दिया गया है कि देश के करोड़ों कारीगरों की बेकारी का ख्याल करते हुए यह सस्तेपन की बात तो एकदम बेबुनियाद है। इन करोंड़ों लोगों के हिसाब से तो मिल का कपड़ा हाथ के कपड़े से महंगा ही है। क्योंकि उनकी रोजी छीनकर और उन्हें

बेकार बनाकर मिल का कपड़ा बनाया जाता है। मान लो कि विदेशी गेहूँ सस्ता है इसलिए वह गेहूँ हम खरीद कर यहाँ के किसानों को बेकार बना दें तो हमारे देश का क्या हाल होगा ?

विकेन्द्रीकरण होने से देश पर कोई भय नहीं रहता है। चीन देश विकेन्द्रीकरण के कारण जापान का बहुत दिनों से मुकाबला करता रहा और जापान चन्द दिनों में नाश हो गया। बहुत लोग कह देते है कि विकेन्द्रीकरण से देश टुकड़ों में बट जायगा और गृह युद्ध छिड़ जायगा। पर ऐसी बात नहीं है। इसके प्रतिकूल विकेन्द्रीकरण से ही वास्तविक एकता और मातृभाव का उदय हो सकता है।

सरकार ने सूद को मूलधन से दूना नहीं होने का कानून बना दिया। नतीजा यह हुआ कि अब ऋण की दूनी रकम लिखाये जाते हैं ताकि व्याज से कम आने वाली रकम का बखेड़ा मिट जाय। बकाश्त के कानून भी ऐसे ही बने जिसके कारण जमीन परती रह जाती है और किसीको जोतने को नहीं दिया जाता है। सरकारी योजना भी बनायी गयी है वह घुड़दौड़ और भूखे को अंगूठे चटाने जैसा है।

---

# खादी ही क्यों ?

"मेरे हृदय में प्रतिक्षण यह भावना जागृत रहती है कि जिन लोगों ने खादी पर जीवन न्यौछावर किया है, वे अगर पवित्रता का हमेशा आग्रह नहीं रखेंगे, तो खादी लोगों को बुरी लगेगी ही—"

—म० गाँधी

अंग्रेजों ने १९०० मील लम्बे और १५०० मील चौड़े इस भरत खण्ड के, जीवन डोर के समान हजारों परिवार के पालनेवाले, गृहोद्योग को अमानुषी तरीके से नाश किया। महमूद गजनवी के बेकायदे लूट से हिन्दुस्तान को कुछ भी नुकसान नहीं हुआ। उन्होंने तो सिर्फ बड़े-बड़े वैभवशाली नगरों को लूटा था किन्तु अंग्रेजों के बकायदे लूट ने ग्रामों को तहस-नहस कर दिया। हिन्दुस्तान औद्योगिक राष्ट्र से हट कर कृषि प्रधान राष्ट्र बन गया। कृषि का सहारा लेने पर भी साल भर काम नहीं मिलता। हिन्दुस्तान की आबादी का $\frac{२}{३}$ भाग खेती में लगे हुए हैं, उस पर भी वर्ष भर काम नही मिलता। किसानों को कुछ महीने कठिन परिश्रम करना पड़ता है ओर तीन चार महीने तक कुछ कामों को लेकर लगा रहना पड़ता है या एकदम बैठना होता है। इस तरह खेती में कुछ दिन के लिए कड़ी मेहनत करनी पड़ती

हैं—साधारण रीति से दो बार बोवाई, कटाई, बरसात में कभी-कभी निराई और सर्दी में तीन बार सिंचाई और बाकी साल भर प्रायः कोई काम नहीं रहता। खेती भी यहाँ मौनसून पर निर्भर करती है। इसलिए किसानों को खेती पर निर्भर करना उचित नही।

ऐसी हालत में हिन्दुस्तान में ऐसे सहायक धन्धे की जरूरत है जिसको खेती में लगे रहनेपर भी लोग करें। खेती छोड़ कर शहर के मिलों में नौकरी करने से खेती के कामों में बाधा होने की नौबत आ सकती है। पंजाब ऐसे प्रान्त में तो कैल्वर्ट के अनुसार साल में पाँच महीने काम करना पड़ता है। गाँधीजी ने बेकारी की समस्या को कताई द्वारा हटाना चाहा—भग्न औद्योगिक सेतु को चरखे द्वारा निर्माण करना चाहा। रिचर्ड बी० ग्रेग ने उनका नाम 'राष्ट्र के महान् औद्योगिक एन्जीनियर' रख कर उनकी दूरदर्शिता का सम्मान किया है। गाँधी जी एक मिनट भी अपना समय व्यर्थ नही बिताते थे, ऐसी हालत में १० करोड़ से ज्यादे लोगों की शक्ति क्यों बरबाद होने देते। मनुष्य में $\frac{१}{१०}$ अश्व शक्ति काम करता है। भारत में १० करोड़ ७० लाख आदमी वर्ष मे सात महीने यों ही बैठे रह जाते है और उनकी १ करोड़ ७० लाख अश्व शक्ति यों ही बरबाद चली जाती है*।

*५५० पौंड वजन एक सेकन्ड मे एक फुट ऊँचा उठाने मे जितनी शक्ति की दरकार होती है उतनी को एक अश्वशक्ति (Horse Power) कहते हैं।

अगर चरखे भी चलावे तो १ अरब ७० करोड़ चरखे चला सकते हैं क्योंकि एक चरखा चलाने में $\frac{१}{१००}$ अश्व शक्ति की आवश्यकता होती है। हिन्दुस्तान के सब कारखानों में श्री बालू भाई मेहता जी के अनुसार १० लाख अश्व शक्ति से कुछ ही अधिक काम देते हैं। अगर १० करोड़ ७० लाख जन एक ही आने कमायेंगे तो वर्ष के अन्त में तीन महीने की कमाई ६०, १८, ७५, ००० रुपये हागे। इस बेकारी की समस्या कैसे दूर हो सकती है इसी पर बिचारना है। गाँधी जी ने चरखे से इस बेकारी की समस्या को दूर करना चाहा; सचमुच इसके बिना भारत की बेकारी दूर नही होगी। मिलों में थोड़े से मनुष्यों को काम मिलता है और मुनाफा एक आदमी को मिलता है। अगर हिन्दुस्तान के बेकार लोग अपना बेकार समय का सदुपयोग करे तो हिन्दुस्तान की सम्पत्ति मे काफी वृद्धि हो सकती है। दाने-दाने के लिए तरसने वालों के लिए एक पैसा भी अगर कताई द्वारा हासिल हो जाता है तो क्या कम है ?

अब देखना है कि खादी क्या है ? आजकल लोग हाथ के मोटे-झोटे कपड़े को ही खादी कहते हैं। पर खादी का मतलब कुछ दूसरा ही है। १९२० के असहयोग आन्दोलन के समय से जब खादी शास्त्र का निर्माण हुआ तब उसकी जो शास्त्रीय व्याख्या निश्चित की गई, वह इस प्रकार है। —"हाथ से कते और बुने कपड़े का नाम, फिर चाहे वे रूई के

हों, रेशम के हों, ऊन के हों, सनके हों, रामवाण के हों, अंबाड़ी के हों अथवा वृक्षों को छाल के हों, खादी है"। अखिल भारतीय चरखा संघ ने इसकी व्याख्या इस प्रकार से की है—"हाथ-लुढ़ी रुई से जीवन वेतन के सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी देकर हाथ से कते और हाथ से बुने कपड़े का नाम खादी है।"

कपड़े की कुल मिलें अभी तक हिन्दुस्तान में ४०५ के लगभग हैं और उसमें ६ लाख भी मजदूरों को काम नहीं मिलता है। मजदूरों को जीवन-निर्वाह भर वेतन नहीं दिया जाता। मिलों के मुनाफे के रुपये शेयर होल्डरों, एजेन्ट, मशीन की घिसाई, मकान का किराया, रुपये के व्याज मे खर्च कर दिया जाता है। पर खादी के उत्पत्ति केन्द्र में व्यवस्था में कम खर्च होने के कारण मजदूरी के रूप मे ७० फी सदी मिलती है जबकि मिलों के मजदूरों को मजदूरी के रूप में २० फी सदी मिलती है। ग्राम्य अर्थ-शास्त्र को यही ठीक रख सकता है। श्री गुलजारी लाल नन्द ने हिसाब लगाकर बताया है कि ५० करोड़ का मिल के कपड़े में मजदूरी के रूप में १० करोड़ जाता है और खादी तैयार होने पर ३५ करोड़ मजदूरों को दिया जाता है। अभी तक ५-६ लाख आदमी मिलों में काम करते है। यदि सभी मजदूरों को काम भी मिलों में मिले तो नतीजा यह होगा कि एक साल का तैयार कपड़ा सारे संसार के लिए कई वर्षों के लिए काफी

होगा। अधिक उत्पादन होने का ध्येय यही होगा कि दूसरे राष्ट्र को गुलाम कर अपनी माल को खपत करवाना।

खादी हाथ के बने कम पूंजी में चलने के कारण मॅहगी पड़ती है। पर इससे देश का देश ही में पैसा रहता है और देश के लोगों को काम मिलता है। मिलों के लिए रूई भी यहाॅ पैदा नहीं होती। लम्बी रेशे वाली रूई यदि बाहर से मंगाते हैं तो रुपये बाहर भेजने ही पड़ते हैं। चरखे पर छोटे-रेशे वाली रूई भी काती जा सकती है। मिलों में काफी पूंजी मशिनरी में लग जाती है। आर्थिक हालत सुधारने में खादी ही काम आ सकती है। इससे ज्यादा पैसा मिलता है।

खादी भावना का मतलब है—अपार धीरज, दरिद्र नारायण की सेवा, संसार के सभी जीवो के प्रति बन्धुभाव। खादी धारी से इतनी उम्मीद की जाती है कि अन्याय बर्दाश्त नही करेगा। छुआछूत नही मानेगा, जात-पात की झंझट से दूर रहेगा, ऊँच-नीच का सवाल नहीं उठायेगा; बेबसों की मदद करेगा। खादी मुल्क की सारी जनता की आर्थिक आजादी और समानता के आरम्भ की सूचक है। खादी अपनाने का मतलब है उसके गर्भ में समायी हुई सब चीजों को अपनाना। जीवन के उपयोगी वस्तुएॅ गाॅव के लोगों द्वारा बनी हुई हों और दिल में देश के प्रति शुद्ध भावना। इसके अलावे भी खादी का मतलब है कि इसकी पैदाइश गाँव ही में हो और करोड़ों आदमी करे। कपास बोने से

कपड़े बुनने तक सारी क्रियाएँ गाँव ही में पूरी होनी चाहिए— खादी सादा रहन-सहन सिखाती है और पाश्चात्य संस्कृति हमारी आवश्यकताओं को बढ़ाकर विलासी बनाती है। खादी का मतलब है स्वदेशी भावना और हाथ की चीजें बदसूरत होने पर भी इस्तेमाल करना, प० जवाहर लाल ने कहा था "खादी आजादी की वर्दी है" पर वास्तव में यह पारस्परिक सहयोग के आधार पर सत्य और अहिंसा का प्रतीक है। खादी ग्राम उद्धार के सब आन्दोलनों में मान लिया गया है कि कुटीर शिल्पो का राजा है—'King of Cottage Industries'

---

# क्रान्तिकारी चर्खा

"चरखा हर एक घर के लिए उपयोगी और आवश्यक उपकरण है। वह राष्ट्र के वैभव का और इसलिए स्वतंत्रता का प्रतीक है। वह औद्योगिक संघष का नहीं, बल्कि औद्योगिक शान्ति का प्रतीक है। उसका सन्देश संसार के राष्ट्रों के प्रति बैर का नहीं बल्कि सद्‌भाव और स्वावलम्बन का है। · 'यदि अहिंसा की उपासना करनी है तो चरखे की उसकी साकार मूर्ति, उसका प्रतीक मान कर उसे ऑखो के सामने रखना होगा। मै अहिंसा का दर्शन करता हूँ तब चरखे का ही दर्शन पाता हूँ।"

—म० गाधी

चरखे का मतलब है आपको तबाही से रोकना। डाक्टर मैन ने कहा है—चाहे और दृष्टि से गांधी जी उचित मार्ग से भटक गये हों लेकिन उन्होंने चरखे का जो पक्ष लिया है उसमें वह भारत की दरिद्रता के असली रहस्य के भीतर बैठ गये है। चरखे को भले ही आजकल के मनचले नौजवान मजाक उड़ावे, उनके लिए बैलगाड़ी मोटरगाड़ी के सामने तुच्छ जान पड़े पर जितना बैलगाड़ी ने लाभ पहुँचाया है उतना सुख रेलगाड़ी तथा किसी भी गाड़ी से मिलने की उम्मीद नहीं। रेलगाड़ी का विस्तार भारत में बहुत ही कम है। महात्मा गांधी जी के विचार से चरखा एक अत्यन्त

उपयोगी वस्तु है, इसलिए गांधी जी ने इस पर काफी जोर दिया है कि इसके बिना किसानों को भलाई नहीं। अधिक उपयोगी होने के कारण ये हैं—इसके लिए तुल्-तबील करने की जरूरत नही है और पूंजी भी कम ही लगती है। इसमें उतनी बुद्धि अथवा कौशल की भी जरूरत नहीं होती। मेहनत इतना कम पड़ता है कि बालक, वृद्ध सभी आसानी से कात सकते हैं। सूत के ग्राहक की कमी नही और यह बहुत दिनों से हिन्दुस्तान में होता आया है। इसके लिए मौनसून आदि पर निर्भर नही रहना पड़ता है और झोपड़ियों में भी हो सकता है। हाथ से सूत कातने का यह अकेला ही धन्धा हिन्दुस्तान के करोड़ों लोगों में सम्पत्ति का न्याय-पूर्ण बँटवारा करेगा।

स्थूल लाभ के अलावे भी सूक्ष्म तथा मानसिक लाभ अनेको है। यह कर्त्तव्यनिष्ठा, कष्टसहिष्णुता और एकाग्रता का पाठ पढाता है। चरखा कातनेवाला अपने समय की कीमत खूब पहचानता है और समय बरबाद होने नहीं देता। सद्गुणों की वृद्धि और आत्मोन्नति इससे होती है जो आर्थिक लाभ से कम नही है। बहुतो की दलील यह है कि चरखे के अलावे भी बहुत से सहायक धन्धे जो अधिक लाभ के है उसे क्यों न अपनाया जाय ? जैसे—(१) मछली पालना (२) पौल्टरी (मुर्गी, बतख पालना) (३) बढईगिरी (४) सिलाई और सुतारी (५) डेयरी और दुग्धालय (६) हाथ के करघे (७)

टोकरी और चटाई बनाना (८) रेशम के कीड़े पालना।

पर उपरोक्त धन्धे चलाने में चरखे की अपेक्षा ज्यादा झंझट है और इसके अलावे भी भोजन के बाद वस्त्र की आवश्यकता होती है। अतः बहुत से धन्धे जो ऊपर कहे गये हैं गांव में नही चल सकता। बहुत से लोग कहेंगे कि करघे पर काम करने से ज्यादे मजदूरी मिलती है इसलिए क्यो नहीं करघे ही का व्यवहार करे ? करघे का धन्धा अकेले कोई नहीं चला सकता है और उसमें पूँजी की जरूरत होती है और अगर कला-कौशल नही मालूम हो तो करघे का काम नहीं हो सकेगा। चरखा ही ऐसा सरल धन्धा है कि बाल, वृद्ध, नर-नारी सभी अपने फुरसत के समय में कर सकते हैं, और जब चाहें तो छोड़ सकते हैं। दूसरी बात यह है कि करघे के लिए सूत कौन देगा ? जब तक कताई का काम जोर से नही चलेगा, मिल से सूत मिलने की उम्मीद नहीं और उसपर निर्भर करना अच्छा नही होगा। मिले अपनी जरूरत के लिऐ सूत तैयार करती है और वह हाथ करघो को सूत देता रहेगा या नही इसमें मुझे सन्देह है। जुलाहे भी मिलों के सूत पर अवलम्बित रहें तो वे खुद बेकार होंगे ही और साथ ही देश के करोड़ों कत्तिनों को पेट पर लात मारेंगे।

मैं यह नही कहता हूँ कि मुख्य उद्योग को छोड़कर सूत काते। सूत उस समय कातें जब बैठा-बैठी और समय व्यर्थ गुजर रहा हो। आज कल ७० लाख मुकदमे प्रतिवर्ष

कचहरियों में दायर होते हैं—उसका मतलब यही है कि लोग बैठे रहने के कारण दूसरे की बुराई सोचते रहते है। "चरखा किसी गरीब विधवा के हाथ से चलता है तो उसे एक पैसा दिलायेगा, किसी जवाहर लाल सरीखे के हाथ में वह भारतवर्ष की मुक्ति का साधन बन सकता है", चरखे को अपनी आजीविका के साधन के रूप में नहीं बल्कि धर्म-कर्त्तव्य के रूप में हमें अपनाना चाहिए। भारतवर्ष जिस साम्यवाद को पचा सकता है वह साम्यवाद तो चरखे की गूंज में गूंज रहा है।

---

# महायंत्र देव !

"इस चोषण को हटाने के लिए पाश्चात्य मनुष्यों को हटाना आवश्यक नहीं है। पाश्चात्य मनुष्य भारत से चले भी जायँ तो भी चोषण जारी रह सकता है। यदि मनुष्यों के कामों का अपहरण करने वाले महायन्त्र यहाँ बने रहें और बढ़ते रहे तो यही के चोषक आर्थिक विषमता उत्पन्न करते रहेंगे। आर्थिक अतिवैषम्य के कारण तो संसार में महायन्त्र और उनका दुरुपयोग है।"

—स्व० रामदास गौड

महमूद गजनबी तैमूर, नादिरशाह का आक्रमण भारत में हुआ पर उससे यहाँ की आर्थिक स्थिति पर कुछ भी असर नही हुआ। कला-कौशल में भारत इतना आगे बढा हुआ था कि धन का लोग परवाह नहीं करते थे। सादा रहन-सहन और ऊँचा विचार था। अतिथियों के आने पर उनका स्वागत लोग भरपूर करते थे पर आज कोई अपने द्वार पर किसी को ठहरने तक नहीं देता, भोजन कौन कराता है ? भारतीय वैज्ञानिक समाजवाद ही सुख-समृद्धि का कारण था। आज वर्णाश्रम के लोप होने के कारण सभी जगह अशान्ति पायी जाती है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपने-अपने काम में व्यग्र रहते थे और आपस में द्वन्द्व चलता रहता था कि कोन श्लाघनीय काम करता है। उस समय

मोची भी अपने काम में प्रतिष्ठा के कारण ब्राह्मण से कम नहीं समझे जाते थे। आज की दुनिया में मनुष्य ब्रह्मचर्य्य आश्रम में ही गृहस्थ आश्रमी बन जाता है और कुंजी का झब्बा जबतक अपने पास रखे रहता है तबतक उसके प्राण-पखेरू न उड़ जाय। यही कारण है एक ही आश्रम में सभी प्राणी भटक रहे है और जगत कोलाहलमय हो गया है क्योंकि पहले एक आदमी गृहस्थ आश्रम को छोड़ देता था और उस जगह को दूसरा व्यक्ति पूरा करता था।

कलयुग में धन ही का बोलबाला हो गया है। कार्ल मार्क्स ने पूंजीवाद और साम्राज्यवाद को वैषम्य का कारण बतलाया है। आज पूंजीपति लोहा लोहे के टॉगों पर खड़े है, वे टॉगें लोहे के महायंत्र हैं। टॉगे इतनी मजबूत है कि उसको उखाड़ फेकना आसान नही हे। महायंत्रदेव का महल गरीबों के खून रूपी सुर्खी पर बना हुआ है। उसीमें महा-यंत्रदेव दिन भर ताण्डव नृत्य करते रहते हैं। ट्रैक्टर तो खुले मैदानो में धरती माता के वक्षःस्थल चीरता रहता है और उसके सीने पर रोम रूपी दूब को उखाड़ फेकता है जिस पर गोपगण के असंख्य गोमाता चर कर पृथ्वी को शस्य श्या-मला बनाती थीं। अब तृण की जड़ें रसातल में चली गयी और हजारों गौएँ इधर उधर भूख के कारण मारी-मारी फिरने लगीं। अंग्रेजो से यह देखा नहीं गया और कसाईखाने में यंत्र द्वारा बध करने का उपाय किया जिससे उसकी तकलीफ कम हो।

जो भारत माता वस्त्रपूर्णा थी वह अब नग्न हो गयी। मनुष्य में विवेक है और वह भला बुरा समझता है पर यंत्रदेव तो क्या समझे कि कौन नगा है? कौन भूखा है? हम अन्न-वस्त्र के बिना बेहाल हैं और कारखानों में उतने ही कपड़े बनाये जाते हैं जितना महँगे कपड़े बिके। ऐसी हालत में यंत्रों पर निर्भर रहना अच्छा नहीं है। चीनी की मिलों की करामात देखिये—चीनी का उत्पादन उतना अधिक नहीं किया जाता है। मिल मालिक समझता है कि कम उत्पादन में क्यों न महँगा बेचकर मुनाफा उठा ले। सरकार जितना मिलों पर नियन्त्रण करती है उतनी ही चीनी महँगी होती जाती है।

विद्युत्-योजना के कारण कई जगह पूँजीपति लोग अमेरिका से खरीद कर पम्प लगा दिये है। इसका भीषण परिणाम हुआ है पानी ३०-३५ फीट की जगह पर ६०-६५ फीट नीचे चला गया है जिसके कारण गरीबों का आम, कटहल का बाग सूखने लगा है और जलाकर कोयला बनाने का काम शुरू हो गया है। दूसरी ओर अमीर सन्तरे और केले आदि फल उपजाकर पैसे के लिए शहरों में चालान करना शुरू कर दिये है। गरीबों को फल अब मयस्सर नहीं होता। बिहार के पटने जिले के बिहार, फतुहा, बख्तियारपुर थाने में ट्यूबवेल लगा है। जब पानी उससे खींचता है तो लोगों को पानी पीने को भी नहीं मिलता।

सिन्दरी (बिहार) के रसायनिक खाद के कारखाने ने यहाँ की जमीन को मरुभूमि बनाने का अच्छा कदम उठाया है। इसमे ६० करोड़ रुपये भी खर्च किये गये है। वनस्पति घी से हमारे गौओं की संख्या कम हो रही है और हम मृत्यु के निकट पहुँचने की तैयारी कर दिये है।

यंत्रों में उत्पादन ही का दोष है जो मनुष्य को तबाह कर रहा है। इसमें मानव समाज की भलाई करने की प्रवृत्ति होती तो मै पहले इसको स्वागत करता। उत्पादन के दो रूप होते है। एक में त्याग के द्वारा अच्छा नागरिक तैयार करना और दूसरे मे लालच से समाज का शोषण करना। इस समय यंत्र समाज का केवल शोषण ही कर रहा है। अगर यन्त्र मे माँ के समान बच्चों की भलाई करने की प्रवृत्ति है तो इसे कौन हटाने कहेगा ? पर ज्योंही हलवाई वाली प्रवृत्ति आती है, लोग उससे नफरत करते है। क्योंकि माता मिठाईयाँ बनाती है तो शुद्ध दूध, शुद्ध घी और शुद्ध आटा देती है और बच्चे को स्वस्थ रखना चाहती है। दूसरी ओर हलवाई सड़ी-गली चीजों को रंगदार बनाकर ग्राहको से पैसा ठगना चाहता है। पटने के आसपास वाले दूध के व्यापारी शुद्ध दूध जिसमें साल्ट, प्रोटीन आदि पोषक तथा शरीर वर्द्धक तत्त्व होता है, बेच देता है। बेचने के बाद अपने बच्चे के लिए एक प्याला चाय खरीद लाता है जिससे उसके बच्चे की कोमल अंतड़ियाँ भी कठोर हो जाती है। पैसों का अर्थ-शास्त्र इसी प्रकार का है।

दूध अनाज छोड़ कर नोटों का ढेर लगाने का धन्धा आत्म-घातक है।

अगर उद्योगीकरण में माँ के समान लाभ पहुँचाने की चेष्टा है तो उत्तम है और अगर बनियावाली प्रवृत्ति है तो अच्छा नही। एक आदमी रामायण छापकर धन कमाता है दूसरा नशीली वस्तुओं की दूकान खोलकर। यांत्रिक औद्योगिककरण से जर्मनी, फ्रान्स, चेकोस्लोविया आदि में इतने कारखाने होकर भी जीवन की आवश्यक वस्तुएँ नहीं मिल पाती। अगर भारतीय नेता पश्चिमी ढंग से यांत्रिक उत्पादन द्वारा देश का कल्याण करना चाहते है तो वे हिमालय का बटखरा बनाना चाहते है। हमारा देश २० वर्ष में गरीबी की चरम सीमा पर पहुँच जायगा। हमारा देश और देशो से बड़ा है और हमारी दृष्टि केवल पैसों की ओर न जानी चाहिए। स्वर्गीय श्री रामदास गौड़ जी ने ठीक ही कहा है—"महा यंत्रों का अति-स्थापन विनाश का ही कारण बनेगा। अति-उत्पत्ति जहाँ होगी, वही अति-विनाश भी होगा। महायंत्र से अति उत्पादन होता है। लोभी उससे लाभ उठाना चाहता है, वह भी अति-लाभ से नही ऊबता। जब एक को अति लाभ होगा, अनेक को अति हानि होगी!" अतएव भारत में सच्चा साम्यवाद लाने के लिए, यंत्रों को दूर ही से प्रणाम करना होगा क्योंकि हमारी झोपड़ियाँ इनका भार नही उठा सकती हैं।

# स्वावलम्बी गाँव कैसे होगा ?

"यह स्पष्ट है कि जो कुछ नीति हम वर्तें, उसका ध्येय कृषि तथा उद्योग में अधिक उत्पादन का हो। उसके बिना राष्ट्रीय आय बहुत कम पड़ती है और लोगों का वेतन तथा मजदूरी के स्तर उठाने की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती है। यह स्पष्ट है कि अधिक उत्पादन कुछ लोगों के हित के लिये नहीं हो बल्कि सभी लोगों में उचित रूप से वितरित हों। अधिक उत्पादन के बिना हम लोग वृहद् योजनाओं को लेकर आगे नहीं बढ सकते हैं जिससे उज्ज्वल भविष्य सम्भव है।"

—पं० जवाहर लाल नेहरू

जबतक स्वावलम्बी गाँव नहीं होगा तबतक भ्रातृभाव का होना गैरमुमकीन है। क्योंकि ग्रामोद्योग के नष्ट होने के कारण हम एक दूसरे पर निर्भर नहीं करते हैं और समझते हैं कि अपनी जरूरत की चीजों को शहर से मँगा लेंगे। किसानों के तरकश में खेती के अलावे कोई दूसरा तीर नहीं हुआ तो वे शोषक के फंदों में फँसे बिना नहीं रह सकते। गाँव के स्वावलम्बी बनाने के लिये ग्रामोद्योग को फिर से कायम करना होगा। किसानों की आमदनी दो ही तरह से बढ सकती है। (१) शोषण बन्द कर (२) उनकी आमदनी बढा कर। किसानों का सबसे बड़ा रोजगार खेती है। खेती ही पर

उद्योग धन्धे भी निर्भर करते हैं। 'पर यह केवल जीविका का साधन नहीं, वह जीवन का मार्ग है। शताब्दियों से मनुष्यों की बहुत भारी संख्या के लिये वह जीविका निर्वाह का साधन और जीवन-पथ प्रदीप दोनों रही है।" किसानों ने अपना खर्च इस तरह से बढा दिया कि शादी, गमी, मुकदमें और शौक तबाह किये रहता है। यही कारण है कि किसान सिर्फ खेती के सहारे अपना काम चला नहीं सकता है। किसान के बहुत बच्चे तो नौकरी के लिये मारे-मारे फिरते हैं और कोई किसान अपने ही घर पर अनेकों तरह के धन्धे फैलाये हुए हैं। पैसे के लिये जमीन बढती जाती है पर वह सदा कंगाल ही नजर आता है।

## खेतिहर मजदूर को तादाद में बढ़ती

| १८६२ की मर्दुमशुमारी | १९२१ की मर्दुमशुमारी | १९३१ की मर्दुमशुमारी | १९३३ अन्तर्राष्ट्रिय संघ का तखमीना | १९४४ अंतराष्ट्रीय श्रम संघ का तखमीना |
|---|---|---|---|---|
| ७५ लाख | २ करोड १५ लाख | ३ करोड ३० लाख | साढे तीन करोड | ६ करोड ८० लाख |

रजनी पामदत्त 'आज का भारत' में
मद्राज के वर्ग–भेद के वारे में आॅकड़े दिये हैं।
(अंग्रेजी संस्करण पृ० १९७)

किसान अपनी गौएँ चरने की भूमि भी जोतता चला जा रहा है। कोई आदमी बढाने के लिए सार्वजनिक चीजों को खरीद रहा है। जगल, खान, तालाब और नदी पर किसी एक व्यक्ति का अधिकार नहीं होता। अगर कोई आदमी उस पर खरीद कर हक जामता है तो उसे नरक जाना पड़ता है। इस तरह की बातें हमारे धर्म शास्त्र में लिखी हुई है। बहुजन हिताय कोई तालाब बनवा सकता है पर वह निजी स्वार्थ के लिए नही। इन चीजों को बेचने का भी हक नही है। आब पाशी की चीज से सभी लोगो को फायदा होता है। अगर किसान इन सब चीजो को करने लगा तो उसका कौन अपराध है? भूखा आदमी कौन सा पाप नहीं करता? उसके ग्रामोद्योग तो अमानुषी तरीके से नष्ट कर दिये गये हैं।

प्राचीन काल में तिलक और दहेज की प्रथा नहीं थी। आजकल लड़का-लकड़ी की शादी होती ही नही, रुपये की चमक से आँखें चौंध हो जाती हैं। लड़का या लड़की योग्य हो, इसकी कोई परवाह नहीं करता। जब तक मनुष्य अपने खर्च को नहीं घटावेगा तब तब वह बुरा काम करता ही रहेगा। एक समय था कि खेतों से अन्न पैदा कर, कुछ कपास पैदा कर घर की बूढ़ी स्त्रियाँ चरखे चलाकर वस्त्र की पूर्ति कर लेती थीं। गोपालन इतना होता था कि दूध की नदियाँ बहती थीं। कंस की रानियाँ दूध से ही स्नान करती

थी और मुस्लिम शासन काल में भी दूध कोई पूछता नहीं था। शहरों का विकाश डेग-डेग पर नहीं हुआ थां। सारी जरूरतें किसान को घर ही पर पूरी हो जाती थीं।

पर जमाना बदल गया है। आदमी से खर्च रुकता नही। चरखे की छोटी आमदनी पर हँसी उड़ती है। कहता है कि दिन भर चले अढ़ाई कोस। एक दो पैसे से बीड़ी सिगरेट भी नहीं चलेगा। पर मै तो कहता हूँ जब तक खर्च का रास्ता बढ़ता जायगा, उसे शान्ति नहीं मिलेगी। चरखा आर्थिक संकट हरण है। "चरखे-करघे के विरोधियों को क्या मालूम कि आज भी खेती के बाद देश में सबसे बड़ा तथा सबसे अधिक फैला हुआ धंधा करघों द्वारा कपड़ों की बुनाई का हो धन्धा है।" राजेन्द्र बाबू भी तो चरखे ही के पक्ष में हैं—वे कहते है —"चरखे से सिर्फ सूत ही नहीं काता जाता, बल्कि एक किस्म की सादगी आ जाती है और सादगी बड़ी चीज है। ज्यों-ज्यों हम सादगी को छोड़ कर अपनी जरूरते ज्यादा करते जाते हैं हम संघर्ष के नजदीक जाते हैं"—गांधी जी का कहना कौन मानता है? उनकी जिन्दगी में तो कुछ लोग माने, मरने पर कौन मानता है?

"गृह-उद्योगों के बिना तो हिन्दुस्तान के किसान का सर्व-नाश हो जायगा। जमीन की पैदाइस में से वह अपना जीवन निर्वाह नहीं कर सकता। सहायक धन्धा उसके लिए जरूरी है। चर्खा सरल, सस्ता और उत्तम धन्धा है।....हाँ, भारत

के किसान अपनी जमीन से रोटी पा रहे है। मैंने उन्हें चर्खा प्रधान किया ताकि वे मक्खन पा सके और यदि आज मै लगोटी धारण करता हूँ तो इसका एक मात्र अर्थ यही है कि मै उन अर्ध-भूखे जन समूह का प्रतिनिधित्व करता हूँ।…उनको एक पेशे की जरूरत है और चरखा ही एक ऐसा पेशा है जो लाखों के लिए हो सकता है। प्रत्येक कृषि प्रधान देश के लिए एक ऐसे सहायक उद्योग की आवश्यकता होती है जिसमें लोग अपने बचे समय लगा सकें। चर्खा सदा से भारत का ऐसा उद्योग रहता आया है। कताई कर्तव्य है और धर्म है। भारत मरणप्राय है मृत्यु शय्या पर पड़ा है--पॉव ठण्ढे हो गये हैं। जल्दी कीजिए न तो यमपुरी चल जायगी—यदि आप उसे बचाना चाहते हैं तो जो मै कह रहा हूँ उसे थोड़ा कीजिए। मैं सावधान किये देता हूँ कि समय रहते चर्खा सम्हालिए या नष्ट हो जाइये।……मिल को तो रुपये पैदा करने की चिन्ता है। भुखमरी दूर करने की अमोघ औषधि चरखा है। चरखे के नाश होने से भारत की स्वतंत्रता का नाश हुआ। वैसे ही इसके उत्थान का अर्थ भारत की स्वतंत्रता का उत्थान होगा।" सर विलियम वैबरिज तक की राय है कि "इंगलैण्ड और अमेरिका में बड़े पैमाने के धन्धों से जो सत्यानाशी बुराइयाँ हुईं, उनके अनुभव के आधार पर भारत में घरेलू धन्धे ही बेहतर रहेंगे, तब हम ग्रामों के साम्यवाद को छोड़ कर पश्चिम के शहरी साम्यवाद के पीछे क्यों दौड़े ?"

कन्ट्रोल के जमाने में कपड़े की तंगी को पूरा करने में चरखे-करघे ने खूब मदद पहुँचायी। यदि चरखे न चलते तो यहाँ के निवासियों को कपड़ा मिलना मुश्किल हो जाता। पर अफसोस की बात है कि सरकार ग्रामोद्योग को बढ़ाना नहीं चाहती। शुद्ध खादी को मिल का सूत बाजार से बाहर निकाल रहा है जिस तरह भैंस, गाय को गाँव से बाहर निकाल रही है। आज खादी भंडार में शुद्ध खादी नहीं पायी जाती है। बुनकर मिल का सूत का ताना देकर बुन देता है। अतः यह दोष मिल की उपस्थिति के कारण हो रहा है। जिस तरह से वनस्पति घी ने शुद्ध घी को तंग किया है, उसी तरह मिल का सूत भी चरखे के सूत को। फिर भी करघों की करामात देखिये।

"सन् १९१९-२० में हमने ९० करोड़ गज कपड़ा बाहर से मंगाया था जबकि गत वर्ष कुल पौने पाँच करोड़ तथा इस वर्ष ( १९४९-५० में ) ५ करोड़ गज कपड़ा ही आया या आने की सम्भावना है। उत्पादन तथा विदेशी आयात के आँकड़े नीचे दिये जाते हैं:—

| वर्ष | उत्पादन करोड़ गजो मे | | विदेशो से आया | योग | प्रति व्यक्ति के लिए उपलब्ध |
|---|---|---|---|---|---|
| | मिलो का | करघो का | | | गज |
| १९१९ २० | ३४४ | ५६ | ९० | २९० | ९·३४ |
| १९३९-४० | ३७९ | १८२ | ५६ | ६१७ | १६·६७ |
| १९४१-४२ | ३७२ | १६० | १८ | ५५० | १४·२ |
| १९४२-४३ | ३२९ | १५० | १ | ४८० | १२·० |
| १९४३-४४ | ४४१ | १६० | ·३ | ६०१ | १५·० |
| १९४४-४५ | ४३० | १५० | ·५ | ५८० | १४·५ |
| १९४५-४६ | ४२३ | १३७ | ·३ | ५६० | १४·० |
| १९४६-४७ | ३५४ | १३५ | १ | ४९० | १२ २ |
| १९४७-४८ | ३५७·८ | १४० | २·७ | ५००·५ | १४·६४ |
| १९४८-४९ | ४२४·५ | १४० | ४·७ | ५६९·२ | १६·६ |
| १९४९-५० | ३४० | १४०·५ | ५ | ४८५ | १४·३ |

—युगधारा अप्रैल १९५०

आवश्यकताओं को बढाना जीवन का लक्ष्य नहीं होना चाहिए। उतनी ही चीजों को व्यवहार में लावें जिससे जीवन सुचारु रूपेण चल सके। यदि सभी लोग जरूरत के अनुसार चीजों का व्यवहार करें तो संसार में गरीबी हो ही नहीं और न कोई भूखों मरे। बनावटी आवश्यकताओं की वृद्धि के कारण कनुष्य नाजायज तरीकों से रुपये हासिल करने

को सोचता है। चरखा ही एक ऐसा गुरु है जो मनुष्य को मानवता की ओर ले जा सकता है। इसलिए गाँव को खुश-हाल बनाने के लिए ग्रामोद्योग का अवलम्लन करना आवश्यक है। "मनुष्य जीवन का एक मात्र उद्देश्य धन संग्रह ही नहीं है। इसके अलावा बौद्धिक, सदाचारिक, सामाजिक, धार्मिक तथा सौन्दर्य जनित आदि अन्य बातों से उसे प्रयोजन है। और जब इनका प्रभाव मानव जीवन पर पड़ता है तो ये आर्थिक दृष्टिकोण को एकदम उलट देती हैं।"

ग्रामोद्योग से मानव जाति का कल्याण है। इसमें सच्ची और पूर्ण आर्थिक व्यवस्था रहती है जो अहिंसा की सच्ची कसौटी है। आर्थिक व्यवस्था का अन्तिम लक्ष्य आध्यात्मिक होना चाहिए। उसकी सच्ची कसौटी यह नहीं है कि उसके भौतिक साधनों में कितनी वृद्धि होती है बल्कि व्यक्ति का विकास कितना होता है। सहयोग, आत्म-त्याग तथा भातृभाव की वृद्धि उसमें कितनी होती है। पहले जमाने में संयुक्त परिवार की संख्या अधिक थी और परिवार को खुशहाल बनाना उद्देश्य था पर आजकल प्रत्येक व्यक्ति अपने ही स्वार्थ में मस्त रहता है। उस समय जीवन बीमा नहीं होती थी। परिवार का निकम्मा आदमी भी भरण-पोषण कर पाता था और भीख माँगकर किसीका गुजारा नहीं करना पड़ता था। आज के समान वर्ग-व्यवस्था मे संकीर्णता नहीं थी। उस समय एक मोची और देव मन्दिर

में पूजा करने वाले ब्राह्मणों में कोई अन्तर नहीं था।

उस समय उत्पादन भी गाँव का ख्याल रख कर होता था। उत्पादन का उद्देश्य धन बटोरना नहीं था बल्कि हर एक व्यक्ति गाँव की आवश्यकताओं के अनुसार उत्पादन करता था क्योंकि उसके खरीददार गाँव के लोग होते थे। लेन-देन का आधार द्रव्य न होकर चीजों का अदल-बदल था। धन से किसी की इज्जत नहीं होती थी बल्कि समाज में सेवा के कारण आदरणीय होता था। यही कारण है कि हम लोग सत्य हरिश्चन्द्र तथा दानी कर्ण का नाम आज भी नहीं भुला रहे है।

हमारे गाँव में विकेन्द्रीकरण ही प्राचीन आर्थिक संगठन का आधार था। श्री शंकरराव देव ने नये विधान पर कड़ी आलोचना की है, वे कहते हैं—"हमें सहकारिता की नींव पर स्थापित विकेन्द्रित शक्ति और उत्पादन के आधार पर ही अपनी सामाजिक और आर्थिक संस्थाओं का निर्माण करना चाहिए। दुर्भाग्य से हमारे नये विधान में ऐसी संस्थाओं के निर्माण की कोई व्यवस्था नहीं है। यह विकेन्द्रित होने के बजाय केन्द्रित अधिक है, इसलिए इसमें गांधीवाद जीवन के लिए बहुत अवसर नहीं है।" आज गाँव में सैकड़े ९० आदमी रहते हैं इसलिए गाँव में प्रत्येक उद्योग की स्थापना करनी होगी। खेतिहरों को साल भर में ६ महीने बैठे रहना पड़ता है और खेती के कामों को छोड़कर बड़े-बड़े कारखानों

में काम करने नहीं जा सकते, इसलिए गॉव ही में घरेलू उद्योगों का होना जरूरी है। गॉव में पूॅजी का अभाव है इसलिए ऐसे औजार से काम लेंगे जो गॉव में उनको मिल सके। इस देश में मजदूरों का बाहुल्य है। बड़े पैमाने पर उत्पादन तो और बेकाम कर देगा। इसलिए जहॉ पूंजी का अभाव है और मजदूरों का बाहुल्य है वहॉ ग्रामोद्योग ही सबसे ज्यादा अच्छा होगा।

नीचे लिखे तालिका से पता चलेगा कि किस उत्पादन प्रणाली से लाभ होगा।

| उत्पादन की प्रणाली | पूॅजी प्रति मजदूर लागत | प्रति मजदूर उत्पादन | अनुपात | पूॅजी की प्रति इकाई मजदूर पर लगे |
|---|---|---|---|---|
| | रु० | रु० | | |
| १ आधुनिक मिल | १२०० | ६५० | १.६ | १ |
| २. पावर लूम | ३०० | २०० | १.५ | ३ |
| ३ ऑटोमेटिक लूम | ९० | ८० | १.१ | १५ |
| ४. हाथ के करघे | ३५ | ४५ | ६.८ | २५ |

—पूॅजीवाद समाजवाद ग्रामोद्योग पृ० २१५

इसलिए मशीनों से काम लेना काल का डंका बजाना होगा। यहॉ मजदूरों का बाहुल्य है और पूॅजी का अभाव है। हिन्दुस्तान में मजूरों के बचाने की समस्या नहीं है

बल्कि करोड़ों भूखों को काम देने की समस्या है। बड़े पैमाने के उत्पादन से मुँहमोड़ लें और ग्राम-उद्योगों पर निर्भर करें। सदाव्रत या भीख की सहायता से अधःपतन होता है। उत्ताम दान तो यह है कि गरीबों को काम दें जिससे उसका पेट भरे, जिससे ग्रामोद्योगों को सहायता मिले; उसीका कल कारखाना खोलना चाहिए।

जब गॉव के निवासी अपने गाँव की बनी चीजें नहीं खरीदेंगे तो उसका कौन खरीददार होगा? तेली कहता है कि मेरा तेल कोई नहीं लेता। चमार कहता है कि मेरा जूता तो बिकता ही नहीं इसलिए मैं आसनसोल चला गया था। पर सच पूछा जाय तो वह खुद ही अपनी चीज का इस्तेमाल नहीं करता। वह भी फैशनेबुल क्रोम का ही जूता चढ़ाये रहता है। तेली भी मिल ही का तेल खाता है। तब भला बताओ—कौन उनकी चीज ले? किसान भी दो पैसे किफायत के लिए चार कोस शहर चला जाता है। गॉव के लोग समझते हैं कि कोल्हू का तेल मँहगा पड़ता है; पर गौर कर देखे तो मँहगा कुछ नही है। मान लेते है कि तेली से मोची ने एक सेर तेल लिया, उसमें तेली को वह चार पैसा देता है। अगर तेली भी एक जोड़ा जूता उससे लेता है तो चार आना पैसा उसको लौटा देता है। इस तरह से नफा नुकसान का कोई प्रश्न ही नहीं उठता और गॉव का पैसा घूम कर फिर गाँव ही में रह जाता है।

लेन-देन का आधार रुपये होने के कारण ग्रामोद्योग को आगे नहीं बढ़ने देता। इसलिए जबतक रुपये पैदा करने का जरिया न हो, एक की माँग दूसरे से पूरी नहीं की जा सकती। जब किसी को नकद मजूरी देते हैं तो वह घाटे में रहता है। रुपये के प्रयोग से मनुष्य अनुचित लाभ उठाता है। रुपये के कारण अनावश्यक वस्तुयें भी खरीद ली जाती हैं।

औरंगजेब के उत्तराधिकारियों द्वारा कुछ भी प्रोत्साहन मिलता तो ग्राम उद्योग का ह्रास मिलों द्वारा इतना जल्दी नहीं होता। आपस में मुगलों का शासन के लिए लड़ना ही घरेलू उद्योगों के विनाश का कारण हुआ। अतः गांव के कार्यकर्त्ताओं को इसका पुनरुद्धार करना चाहिए। चर्खा प्रचार के बाद कोल्हू पर आना चाहिए। और मिलों के तेलों का आना बन्द करवाना चाहिए। बन्द करवाने के लिए ग्रामीणों से लड़ना उचित नहीं बल्कि शारीरिक, आर्थिक हानि दिखलाकर खरीदने के लिए मना करना चाहिए। मधुमक्खी पालन होना भी जरूरी है क्योंकि मधु दवा के काम आता है और एक किसान को ५० रुपये आमदनी बिना परिश्रम के हो जाती है। मधुमक्खी-पालन से फल और अनाज खूब उत्पन्न होता है। मधुमक्खी पुरोहित का काम करती है। यह फलदार फसलों के गर्भाधान में खूब मदद करती है। साबुन भी सज्जी मिट्टी या सोडा से बनाने का प्रबन्ध करना चाहिए क्योंकि कास्टिक सोडा विदेशी है और बन्द होने पर मिलना

दुर्लभ हो जायगा तो लोगों को भारी तकलीफ होगी। इसके अलावे भी गुड़ पेरने का धन्धा अच्छा है। इससे जानवरों को कुछ दिन के लिए हरा चारा भी मिल जाता है और किसान को तीन महीना का काम मिल जाता है।

चमार भाइयों को चाहिए कि मृत पशुओं के अवशेष वस्तुओं को उचित रूप से इस्तेमाल कर जनता को लाभ पहुँ-चावें। हड्डी का चूर्ण तथा आँतों से ताँत बनाने की कला की जानकारी रखना उनको जरूरी है। सोदपुर आश्रम कलकत्ते में तथा दरभंगे में काम सिखाया जाता है। सरकार को भी इसके लिए शिक्षण केन्द्र खोलना चाहिए जिससे घरेलू उद्योगों द्वारा यह काम किया जा सके। क्रोम भी घर ही पर बनाया जा सकता है। चमार गरीब है, जाहिल और अशिक्षित है। उसे मृत जानवरों को ले जाने के लिए ठेला गाड़ी नही है। इससे उसे फी फर्द दो रुपये नुकसान उठाना पड़ता है क्योंकि घसीटते हुए चमड़ा को ले जाता है जिससे चमड़ा खराब हो जाता है। हर साल भारत में २ करोड़ ५७ लाख पशु मरते है। अगर नुकसानी का हिसाब लगाया जाय तो बहुत हो जाता है। दो रुपये लापरवाही से ले जाने में आठ आना मांस, एक रुपये की हड्डी एक रुपये की चर्वी तथा चार आने सींग, और पुट्ठा में इस तरह चार रुपये बारह आने एक जानवर में नुकसान होता है। इस तरह २ करोड़ ५७ लाख में १२,१८,१२,००० रुपये वार्षिक हानि होती है। चमार

शोषित बहुत हो चुका है। दूसरे लोग मदद करे या धर्म का भेद भाव हटा कर इस काम में लगा जॉय तो देश की आय बढ़ जा सकती है।

जब बूचड़ खाने में गोरे फौजियों के लिए ठीकेदारी में धर्म नहीं गया तो देश के उपकार के कामों में भी उनकी जाति नहीं जायगी क्योंकि मृत चाम के उपयोग में कोई दोष नहीं है। निम्न लिखित उद्योग को काम में लाया जाय तो गॉव का काया कल्प शीघ्र ही हो जाय। ( १ )सूत कताई ( २ ) आटा पिसाई ( ३ ) धान कुटाई ( ४ ) ईंट का भट्टा ( ५ ) तेल घानी ( ६ ) गुड़ से चीनी बनाना ( ७ ) बुनाई ( ८ ) साबुन बनाना ( ९ ) कागज बनाना ( १० )चमड़ा पकाना ( ११ ) चमड़े का सामान बनाना ( १२ ) सरेस, तॉत बनाना ( १३ ) लोहारी ( १४ ) बढ़ईगरी ( १५ ) भेड़ पालना ( १६ ) कम्बल बनाना ( १७ ) कुम्हारी ( १८ ) दरी कालीन बनाना ( १९ ) कपड़ा सीना ( २० ) अण्डे मछली आदि का काम ( २१ ) दियासलाई बनाना ( २२ ) रोशनाई बनाना ( २३ ) शीशा चूरी आदि ( २४ ) रंगाई छपाई ( २५ ) सोनारी ( २६ ) पेंसील बनाना ( २७ ) लाख का काम ( २८ ) पत्थर का काम ( २९ ) पशुपालन ( ३० ) मधुमक्खी पालन ( ३१ ) सींग का काम ( ३२ ) खाद बनाना ( ३३ ) रेशम के कीड़ों का पालना और रेशम कातना।

लोग कहेंगे कि गॉव का माल भद्दा और देखने में बुरा

लगता है; इसमें क्यों अधिक खर्च करें ? पर उनको मालूम होना चाहिये कि जैसे-जैसे चीजों की खपत बढ़ती जायगी वैसे-वैसे चीजें भी अच्छी होती जायंगी। अगर सच्चा स्वराज चाहते हैं तो ग्रामोद्योग द्वारा उत्पादित वस्तुओं का ही व्यवहार करें और गाँव को आत्म निर्भर बनावें। ग्रामोद्योग में खादी सूर्य की तरह केन्द्र स्थान है और बाकी सब उद्योग सूर्य के आस-पास चक्कर काटनेवाली ग्रहमालिका की तरह हैं।

---

# सर्वोदय क्या है ?

"अपने से पहले सबके भले की इच्छा करना, उसके लिए त्याग करना और त्याग से जो वाह्य दुःख हो उससे आन्तरिक सुख अनुभव करना, अपना सर्वस्व समाज को अर्पण कर उसमें से सहज भाव से जो उच्छिष्ट मिल जाय उससे सन्तुष्ट रहना ही सर्वोदय का स्पष्ट अर्थ है। जिस समाज में इस तरह की भावना हो, वह भोग प्रधान नहीं, त्याग प्रधान होता है। 'ईशावास्यमिदं सर्वं' के श्लोक में भी यही वस्तु है कि मनुष्य सब कुछ अपने समाज को दे देता है और जो सहज भाव से उच्छिष्ट मिल जाय उससे सन्तुष्ट रहता है। सर्वोदय के लिए मानव में केवल आसुरी मनोवृत्ति का न होना ही काफी नहीं है। उसमें उत्ताम मानवी वृत्ति होना आवश्यक है और वह यह है कि 'मै सबके पीछे और बाकी सब मेरे आगे'।"

—आचार्य विनोवा भावे

सर्वोदय के भीतर शुद्ध भावना है 'किसीका पतन न हो। सभी का भाग जगे। सभी फले-फूले, सभी पुष्पित हों और वसुन्धरा के सभी अंग स्वस्थ खिले और उल्लास से मुस्कुराएँ।' सर्वोदय ही में सबकी उन्नति, सबका हित, सम्पूर्ण हित और सम्पूर्ण उत्थान—यही है सर्वोदय का अर्थ।

पर हिन्दुस्तान में जो तरीके अपनाये जा रहे हैं उससे सबों का कल्याण होने की गुंजायश नहीं। मुझे सन्देह हो रहा है कि लोग किस तरह से नवार्जित गणतंत्र की रक्षा करेंगे। काँग्रेस अपने उद्देश्य से हटती जा रही है इसका परिणाम यह होता है। मजदूर, और किसान साम्यवाद और समाजवाद की ओर टकटकी लगाये देख रहे हैं कि शायद उससे शान्ति और सुख मिले।

हमारी संस्कृति की आधार शिला ही अपने स्थान से भ्रष्ट हो गई है। स्वार्थ ने हम लोगों पर बुरा असर लाया। जनता इतनी अशिक्षित है कि हर सुधार के लिए सरकार की ओर नजर गड़ाये रहती है। इसका परिणाम यह होता है कि सरकार जनता के अधिकारों का अपहरण करती है। गाँधी जी चाहते थे कि प्रजातंत्र शासन और शासक के बल पर नहीं रहे बल्कि प्रत्येक नर नारी के संयोग से बने। पढ़े लिखे लोगों के हाथ से निकाल कर स्वराज्य जन-जन के हाथ में ले जाना चाहते थे। गाँधी जी पहले जनता को जागृत करना चाहते थे। जनता को रचनात्मक कार्य द्वारा जागृत कर स्वराज्य का बोझ लादने योग्य बना रहे थे। केवल सेवा ही द्वारा जनता को सचेतन बनाया जा सकता है और आत्म-विश्वास पैदा किया जा सकता है। आज हम केवल सरकार के कार्य्यों का छिद्रा-न्वेषण करते है। ये आरोप भी अपने स्थान पर ठीक है और सरकार को बुरा नहीं मानना चाहिए। पर एक नागरिक के

रूप में हमारा क्या कर्त्तव्य है उसका भी तो ख्याल रखना जरूरी है। गाँधी जी काँग्रेस का नाम बदलकर 'लोक सेवक संघ' रखना चाहते थे पर नेताओं ने सोचा कि 'सेवक' शब्द से छोटे समझे जायँगे अतएव 'काँग्रेस' शब्द ही रहने दिया।

सर्वोदय शोषण हीन, वर्गहीन, सामाजिक जीवन का चित्र है। सर्वोदय से मानव का कल्याण होगा। लोग देशोत्थान के लिए पश्चिमी देशों की भाँति औद्योगिक-करण के पक्ष में हैं। वे गृह उद्योग की हिमायत उसी समय तक करते हैं जिस समय तक देश में पूर्ण रूपेण औद्योगिक-करण नहीं हुआ है। अतः यंत्रों का स्वागत कर शोषक समाज को कायम करना चाहते हैं। यंत्र जहाँ भी होगा वहाँ पूँजीपति का होना जरूरी है क्योंकि बड़े-बड़े यंत्रों के लिए रुपये की आवश्यकता होती है।

अधुना पद लोलुपता अब पहले से और अधिक बढ़ गयी है। एक समय काँग्रेसी नेता ने ऊँचे पदों को ठुकराकर सीने पर गोलियाँ खाना मंजूर किया था। आज वे ही पद, पैसा और परमिट के लोभ में पड़ जाने के कारण जनता की नजरों से गिरते जा रहे हैं। ऐसा करने से नवार्जित प्रजातंत्र कायम नहीं रह सकेगा। स्वराज्य तो इतना ही हुआ है कि राज्य का परिवर्तन हो गया है, गोरे हाथों से काले हाथों में आ गया है। सत्ता तो लोगों के हाथ आ गई है लेकिन आज स्वराज्य का अनुभव कोई जनता नहीं कर रही है इसका कारण क्या है? मालूम पड़ता है कि स्वराज्य हिंसा के तरीके से प्राप्त हुआ है और

सत्ताधारियों के हाथ में स्वराज्य है। गाँधी जी को इस स्वराज्य से काफी दुःख हुआ क्योंकि इस स्वराज्य में हिंसा की बू थी। इसलिए स्वराज्य जैसे ही मिला भारत में खून की नदियाँ बह गयीं। हिन्दुस्तान में हिंसा वृत्ति, द्वेष, भोग, लिप्सा, सत्ता की वासना हममें जागृत हुई और वे दृश्य हिन्दुस्तान में हमने देखे जिनकी कल्पना भी नही कर सकते थे।

केवल सत्ता हाथ में आने से स्वराज्य नही होता और न राष्ट्र के चित्त का समाधान होता है। व्यक्तिगत चारित्र्य ही से समाज में सुख शान्ति हो सकती है। केवल छिद्रान्वेषण करने से तो कोई फायदा नहीं होता। अपना अवगुण अगर पता लगावे तो भले ही कुछ फायदा पहुँच सकता है पर दूसरे के अवगुण ढूँढ़ने से ढूँढनेवाले को कोई फायदा नहीं। पण्डित जवाहर लाल नेहरू, सरदार पटेल, राजेन्द्र बाबू जो दिल्ली में बैठे हुए हैं, हम उनकी सत्यता पर अविश्वास नहीं करते पर उनके नीचे के अधिकारी वर्ग अच्छे नही है। सोचना तो चाहिए कि उनको भेजे कौन है, यह तो मेरा दोष है कि हमने वैसे व्यक्तियों को चुनकर मंत्री बनाया है। अगर दूसरे को चुनकर लावे तो क्या काम चल जायगा ? इसलिए अधिकारी वर्ग के बदलने से भी काम नही चलेगा। किसी व्यक्ति का अच्छा होना चरित्र पर निर्भर करता है क्योंकि सत्ता चलानेवालों का रंग सत्ता पर चढ़ता है जैसा कि विनोवा भावे ने कहा है। भगवान कृष्ण के हाथ में शस्त्र सुदर्शन कहलाता है और राक्षस

के हाथ में वही कुदर्शन हो जाता है। इसलिए नेता या शासक को देश की दुर्गति के दलदल से बाहर निकालने के लिए अपना चरित्र ठीक करना चाहिए। स्वामी रामतीर्थ ने एक बार घोषणा की थी:—

आवश्यकता है, सुधारकों की।
उनकी नहीं, जो दूसरों का सुधार करें।
बल्कि उनकी जो पहले अपना सुधार करे॥

तुलसीदास ने भी कहा है:—

पर उपदेश कुशल बहु तेरे,
जे आचरहिं ते नर न घनेरे।

व्यक्तिगत चरित्र ही महत्त्वपूर्ण है। सत्ता में दोष हो तो चरित्रवान् व्यक्ति ही उस दोष को दूर कर सकता है और सत्ता को कल्याणकारी बना सकता है। लेकिन हममें दोष हो तो उसे निकालने की शक्ति सत्ता में नहीं है। क्योंकि सत्ता असत्ता, वह जड़ है, चेतन नहीं। जिस तरह से चरखा पर सूत कातनेवाला, सूत टूटते समय पूनी और चरखा के दोप को दूर कर सकता है पर यदि उसीमें दोष हो तो कौन दूर करेगा? अगर हमारे शासक में दोष रह गया है तो हमारी कमजोरी के कारण। किसी पर दोष मढ़ने के पहले हमें सोच लेना चाहिए कि हम राष्ट्र की कितनी सेवा कर रहे हैं। भारत में अन्न, अशिक्षा, जाति भेद मिटाने में मै कहॉ तक सहयोग दे रहा हूँ। यदि प्रत्येक नागरिक इस महान् यज्ञ म जरा सा

भी सहयाग देते तो आज गाँव की यह दशा न रहती। सड़को पर नारा लगाने और पैम्फलेट बाँटने से कुछ नही होगा। घर मे कुएँ के आसपास कुछ साग-सब्जी भी लगा देते तो कम से कम एक आध रोज की तरकारी जरूर हो जाती और गन्दगी भी नहीं रहती।

स्वराज्य स्वर्ग की तरह उपभोग करने से मनुष्य का पतन होगा। अधिकार लिया है तो सेवा करो। विष्णु और जनक के समान अलिप्त रहना चाहिए। भगवान्, शंकर या शुकदेव के समान वैराग्य सम्पन्न होना चाहिए। प्राचीन समय में राजा प्रजा को अपने पुत्र के समान मानते थे। यही कारण है कि राजा और प्रजा दो श्रेणी बन गयी।

"प्रजानां विनयाद्धानात् रक्षणात् भरणादपि।
स पिता पितरस्तांसा केवलं जन्महेतव ॥"

अर्थात् जनता को शिक्षा देने, उसकी रक्षा करने और पेट भरने के कारण सरकार पिता बन गयी थी। पिता का काम (इस राम राज्य में) बच्चे पैदा करना ही रह गया था। "जनता का प्रेम प्राप्त कर और तू साम्राज्य पायगा। जनता का प्रेम गँवा और तू मिला मिलाया साम्राज्य गँवा देगा।"

इसलिए हमारे देश में जबतक नेता और शासक सच्चरित्र, न्यायी, सत्याग्रही, निस्स्वार्थ, निष्पक्ष और लोक हित का पूर्ण ध्यान रखनेवाले नहीं होते तबतक ऐसे स्वराज्य से जनता को कोई लाभ नहीं। जनतंत्र में या किसी तंत्र

में नाती पोतावाद, भ्रष्टाचार रहने से देश रसातल की ओर चला जायगा।

सर्वोदय योजना मध्यवर्तियों का उन्मूलन चाहती है। यह तो एक उत्पादक श्रेणी चाहती है। उसकी नजर में भारतीय कृषि में जमीन्दार ऐसे कोई चीज बीच बिचवा न रहें। केवल विधवा, अपंगु, शारीरिक परिश्रम नही करने योग्य ही अपने खेतों को दूसरों को जोतने के लिए दे सकते हैं और जो कमायेगा सो खायेगा, इसीसे सर्वोदय का विकास होगा। किसी भी मनुष्य के पास भरण-पोषण से अधिक खेत नहीं रहना चाहिए क्योंकि अधिक रहने से खेत की उपज में वृद्धि नहीं होगी। आज अन्न संकट का मुख्य कारण यह भी है कि खेत के मालिक वे ही लोग है जिन्होंने हल के मुट्ठे पर हाथ नहीं धरे हैं। कोई व्यक्ति स्वतः ३० एकड़ जमीन से ज्यादा नहीं रखेगा। एक परिवार के लिए औसत किस्म की जमीन १० एकड़ काफी मालूम पड़ती है।

गाँधी जी सर्वोदय समाज द्वारा भारत के सभी प्राणियों को स्वराज्य का अमर फल चखाना चाहते थे। स्वतंत्रता का कल्प वृक्ष तो बापू ने रोप दिया था और सर्वोदय समाज द्वारा अमर फल उसमें उगाना चाहते थे। बापू अपने सर्वोदय समाज में समस्त वर्णों और समस्त वर्गों के उच्च कोटि की सात्विक नैतिकता के धागे में पिरोकर भारत की अखण्डता और अभेदता का गौरव पूर्ण आदर्श विश्व के सामने प्रस्तुत

करना चाहते थे। गाँधी जी चारों वर्णों को रखना चाहते थे कि जिसमें समाज का काम अच्छी तरह से हो। शूद्र आज स्वकर्म में लीन रहने के कारण भिखमंगा ब्राह्मण से भी नीच समझा जाता है, इस तरह की बात नहीं चाहते थे। शूद्र भी ब्राह्मण की तरह आदरणीय होना चाहिए यदि वह समाज सेवा में मशगुल है। ऊँच-नीच का भेद आज जगत् में इतना फैल गया है कि जिसके कारण चारों ओर कलह ही दिखलाई पड़ता है। जगत् में शान्ति तभी होगी जब सबकोई अपने-अपने धर्म में लगे रहेंगे। हिन्दू धर्म में घमण्ड से पूर्ण होकर उच्च बनने का आदेश तो नहीं दिया गया है इसलिए ब्राह्मण अपने ज्ञान से, क्षत्रिय अपने रक्षात्मक शक्ति से, वैश्य कला-कौशल से तथा शूद्र अपने अध्यवसाय से लोगों की सेवा करे। सभी को एक दूसरे की सेवाकर सुख पहुँचाना अनिवार्य है। इसका यह मतलब नहीं है कि ब्राह्मण शारीरिक श्रम न करें।

जितना हमारे देश में उच्च वर्ण के हिन्दुओं ने देश का अपकार किया है उतना अंग्रेजों ने भी नहीं किया। हमने ही हिन्दू धर्म में छुआछूत को स्थान दिया जिसका परिणाम यह हुआ कि समाज से सेवाभाव का शब्द अन्त-र्धान हो गया। जबतक हम निर्बलों के प्रति किए गये अन्यायों एवं पापों का प्रतिकार नही करते हैं तबतक हम सभ्य कहलाने योग्य नहीं हैं। यदि ऐसी हालत में भी सभ्य

कहलावें तो असभ्य और क्रूर कौन कहलायेगा ? बापू को हरिजनों के प्रति बड़ी ममता थी। कई बार उन्होंने कहा—'मुझे कोई जान भी मार दे तब भी मैं हरिजनों को अपनाने से बाज नहीं आऊँगा। मैं पुनर्जन्म नहीं चाहता पर अगर मेरा जन्म हो तो मैं एक अस्पृश्य ही होना चाहूँगा। इसलिए कि उनके प्रति किए गये अपमानों, उत्पीड़नों और कष्टों में पूर्ण रूप से भाग ले सकूँ और उन्हें उनकी दयनीय दशा से मुक्ति प्रदान करा सकूँ।' महात्मा जी अछूतों का उद्धार कर उसको उसके पेशे से हटाना नहीं चाहते थे—'उनके परम्परागत पेशे छुड़वाए जायँ अथवा उन पेशों के प्रति उनके मन में अरुचि पैदा की जाय, अतः बापू तो यही चाहते थे—"बुनकर बुनता रहे, चमार चमड़ा कमाता रहे और भंगी पाखाना साफ करता रहे और तब भी वह अछूत न समझा जाय। अतएव एक ओर सवर्णों को अस्पृश्य को अपनाने कहते थे दूसरी ओर अस्पृश्य को अपने कर्त्तव्य पर डटे रहने की शिक्षा देते थे।

स्त्रियों को भी उठाने की चेष्टा में गाँधी जी हमेशा व्यग्र रहे। नारी समाज की रीढ़ है और इस अन्धकारकूप से उसे निकाल कर प्रकाश में लाना चाहते थे। स्त्रियाँ केवल बनावटी सिंगार या भोग वासना मात्र के लिए ही न रहें परन्तु पुरुषों के सहधर्मिणी के रूप में स्थान लें। स्त्रियाँ भी ब्रह्मचर्य रह कर देश की सेवा कर सकती है। यह कोई जरूरी नहीं है कि

सब कोई विवाहित ही रहें। गाँधी जी ने ललकार कर हिन्दू समाज को चेतावनी दी—"स्त्री जाति के प्रति रखा गया तुच्छ भाव हिन्दू समाज में घुसी हुई सड़न है, धर्म का अग नहीं है।" स्त्रियों का हृदय कोमल है और उनमें धैर्य भी अपार है। स्त्रियाँ नाम की अबला है, उनमें शक्ति कभी भी पुरुषों से कम नहीं है। लड़ाई में एक बार चीन में एक स्त्री के पाँच लड़के मारे गये थे। वह रो रही थी। एक आदमी ने उससे पूछा कि तुम क्यों रो रही हो?—उसने जवाब दिया "मै इस-लिए रो रही हूँ कि मुझे अब एक भी पुत्र न रहा जिसको लड़ाई मे भेजूँ।" स्त्रियों ने भी स्वातंत्र्य संग्राम में भाग लेकर दिखा दिया कि वे पुरुषों से जरा भी कम नही है। इसीका परि-णाम है कि वे सभी क्षेत्रों में पुरुषों के समान ही सुविधा का उपभोग कर रही हैं।

वेतन सम्बन्धी विषमता ही आधुनिक अशान्ति और आन्दोलन का कारण है। मिल में जब चीजों की माँग रही तो मजदूरों को उचित वेतन देते है। फिर जब मन्दगी आती है तो मजदूरों को निकालते रहते है या कम वेतन देते हैं। पर ऐसा होना उचित नहीं है क्य क घर द्वार छोड़ कर वह नौकरी करता है, उसको देखनेवाला वहाँ कोई नहीं है। अत-एव कारखाने के मालिक को उसे पुत्र के समान मानना चाहिए और संकटों में मदद करनी चाहिए। धनिकों को यह न समझना चाहिए कि धन मेरा है, जैसे मन में आवेगा, वैसे

खर्च करेंगे। उनको तो अपने समाज का भी ख्याल रखना जरूरी है। एक आदमी धन जमा करे और दूसरे को मोटा-मोटा अनाज भी नसीब न हो तो अन्याय है। श्रम-जीवियों को भी जीवनोपयोगी वस्तुएँ तो जरूर मिल जानी चाहिए। अतएव इस असमानता को दूर करने के लिए परमार्थ, परोप कार की भावना होना जरूरी है। हर एक आदमी को जीवन-यात्रा की आवश्यक वस्तुओं का उपयोग करना चाहिए। खाने पीने में कोई धनिकों को कमी नहीं करने कहेगा पर इसमें भी मर्यादा का ध्यान रक्खे। विलासिता प्रिय जीवन बिताना उचित नही। समाज में सब को सुखी बनाने का यत्न करना चाहिए। आवश्यकताओं को बढ़ाना उच्च रहन-सहन का लक्षण नहीं है बल्कि विवेकपूर्ण और संयमशील जीवन बिताना ही उच्च संस्कृति का परिचायक है। आज दुनिया में एक अजीव हवा बह गई है। ज्यादे असवाब को देख कर भद्रता का मूल्य निर्धारित करने लगे हैं।

व्यापार में निष्कपट भाव का प्रदर्शन रहे। जरूरत से ज्यादा लाभ उठाना समाज को लूटना है। कम भाव में खरी-दना और ऊँचा से ऊँचा भाव में बेचनेवाली मनोवृति को हटाना ही होगा—रस्किन ने कहा है—'जिस प्रकार सिपाही का पेशा जनता की रक्षा करना है, धर्मोपदेशक का उसको शिक्षा देना है। चिकित्सक का उसे स्वस्थ्य रखना है, वकील का उसमें न्याय प्रचार करना है। उसी प्रकार व्यापारी का

उसके लिए ( अर्थात् व्यापार के लिए ) आवश्यक माल जुटाना है। जिस तरह सिपाही जान देकर देश और समाज की रक्षा करता है उसी प्रकार व्यापारी को भी समाज की रक्षा करनी चाहिए "—व्यापारियों में दगा फरेब बढ़ने ही के कारण शुद्ध चीजों का मिलना असम्भव हो गया है।

जनता ने स्वराज्य प्राप्ति के लिए बेहद जोर लगाया और समझा था कि अंग्रेजों को भारत से निकलते ही हमारी गरीबी दूर हो जायगी पर नतीजा कुछ दूसरा ही निकला। अब सारा दोष काँग्रेसी सरकार पर मढा जा रहा है। पर लोगों को मालूम होना चाहिए था कि हमने नेताओं को राजनैतिक क्षेत्रों में सहयोग दिया था और हमने राजनैतिक आजादी पायी। सर्वाङ्गीण आर्थिक आजादी के लिए तो सरकार को आर्थिक कामों में मदद करनी चाहिए। इसलिए गाँधी जी केवल एकांगी क्रान्ति की ओर न ले जाकर सामाजिक, आर्थिक क्रान्ति की ओर ले जाना चाहते थे। गाँधीजी बार बार कहते थे कि सत्य और अहिंसा के बलपर काम करे क्योंकि इससे किसी का शोषण नहीं होगा। आज यदि खेतिहर अपने खेतों में समाज के लिये अन्न न उपजाकर गन्ना या जूट को पैदा करता है तो उसे सत्यगामी नही कहेंगे। जब वह गाँव और समाज की ओर नहीं देखता, तो उसे मिलों के शर्तबंद एजेन्ट कहेंगे क्योंकि वह खेत का स्वतंत्र मालिक नहीं है।

इस समय तो कलमय उत्पादन का बोलबाला है। मनुष्य

का काम हटता जा रहा है। पहले जमाने में हर एक परिवार में स्त्री, पुरुष, बाल-बच्चे के साथ मिलजुल कर काम करते थे पर अब स्त्री भी स्वतंत्र हो गयी है क्योंकि उसका पुरुष अन्य ठौर के कारखानों में काम करने लगा है। उस समय भाई-भाई, स्त्री-पुरुष एक दूसरे के दुःख दर्द में शामिल रहते थे। स्त्रियों की जरूरत घर ही में पूरी हो जाती थी। पर अब स्त्रियाँ भी अपनी जरूरतों को पति से पूरा न होते देख तलाक प्रथा को अपनाने लगी हैं। पहले तो घर ही में जीवनोपयोगी चीजों का प्रबन्ध हो जाता था। पैसा का बोलबाला नहीं था। स्त्रियों को किसी चीज की आवश्यकता नहीं होती थी क्योंकि वही तो गृह लक्ष्मी थी पर अब उसके हाथ पाॅव पति के सहयोग के बिना निकम्मा हो गया है और पतिदेव उसकी जरूरत पूरा न कर सके तो दूसरे पति चुनने की भी कोशिश करती है। यह सब कलमय उत्पादन का दोष है जो स्त्री पुरुष, भाई बन्द को एक दूसरे से हटा रहा है और गृह उद्योगों को नष्ट कर रहा है। कलमय उत्पादन में यह भी तो दोष है कि मजदूर यह भी नहो जानता कि उसने आज क्या पैदा किया जैसे बड़े कारखाने में चिमनी के पास कोयला झोंकनेवाला या इंजिन चालू करनेवाला क्या जाने कि कौन सा सामान आज कारखाने में बना है? भारत में हौर्लिक्स के सेवन करने वाले यह नहीं जानते कि यह किस वस्तु से बनायी गयी है। बाजार के आॅटा खानेवाले को क्या मालूम कि यह कौन

सा पत्थर या लकड़ी मिलाकर बोरों में बन्द कर दिया गया है ? कलमय दुनिया में मजदूर दिन भर काम करता और शाम को कबूतरों की तरह अपने दरीबों में खाकर सो जाता है।

चर्खात्मक समाज में तो घर के सभी परिवार मिलजुल कर काम करते है तथा गाँव के भाइयों का सहयोग रहता है । कभी अपनी सलाह से काम करता है, कभी दूसरे से मशवरा भी लेता है। वहाँ बनावटी प्रेम की बू भी नहीं आती । चर्खात्मक समाज में तो जीवन यापन भर ही पैसा मिलता है इसलिए रक्षा तथा व्यवस्था के लिए पुलिस और सेना आदि की आवश्यकता नहीं होती—पुलिस और सेना पर आज पूँजीपति की तोंद मोटी होती जा रही है। सेना के लिए गरीबों का जेब टटोला जा रहा है। कलमय उत्पादन में मालों की खपत होना भी जरूरी है अतएव रेलों की आवश्यकता पड़ती है, और रेल बनाने के लिए गरीबों की जमीन छीन ली जाती है। श्री रामकृष्ण शर्मा अपनी पुस्तक नव भारत में लिखते हैं—"सच पूछा जाय तो कलमयी उत्पादन मँहगा ही पड़ेगा—कलमय उत्पादन को जीवित रखने के लिए लाखों, अरबों जाने दुर्घटनाओं तथा अस्वस्थ परिस्थियों में फँस कर विनष्ट होती जा रही है तो इस बड़ी मँहगी का मँहगापन आँकना हमारे लिये असम्भव हो जाता है । कलमयी उत्पादन से मनुष्य की सामाजिकता क्षीण हो जाती है, समाज की संघटन-धूरी टूट जाती है, नैतिक विकास गतिहीन हो जाता है ।"

चर्खात्मक समाज में तो 'आर्थिक श्रम' होता है क्याकि अपना स्वार्थ-सिद्धि के लिए दूसरों के स्वार्थ पर धक्का नहीं पहुँचता है। चोरी में भी आर्थिक श्रम हाता है पर उसमें दूसरों का अनिष्ट होता है। बहुत से लोग कहने लगते है कि चर्खा कातने से क्या लाभ होता है ? सिर्फ समय की बर्बादी है, 'दिन भर चले अढ़ाई कोस'। इससे देश का उद्धार तो कभी भी नहीं हो सकता है। जीवन भर मर मिटने पर भी मनुष्य को नाम मात्र का लाभ पहुँचायेगा। पर इस तरह के प्रश्न करनेवालों को सोचना चाहिए कि चर्खात्मक समाज का ध्येय अपने परिवार को स्वावलम्बी बनाना है क्योंकि चर्खा प्रत्येक व्यक्ति को १ घंटा चलाकर साल भर के कपड़े की जरूरत याने २४ गज पूरा कर लेना है। यह काम व्यावसायिक उत्पत्ति के तौर पर नहीं किया जा सकता है। यह सामाजिक तौर पर करने से मानव का कल्याण होगा। इसका ध्येय महान् है। चर्खात्मक समाज पहले अपने परिवार को सम्पन्न कर समाज को सम्पन्न करने का प्रयत्न करता है। कताई तो धन्धे के रूप में नहीं अपनानी चाहिए। यह तो रोजाना के फालतू समय में दैनिक कार्यों की भाँति ( स्नान, ध्यान, पूजा, पाठ, भोजनादि ) करनी चाहिए। इसलिए यह प्रश्न करना कि दिन भर मे कितने सूत कातते हो, सही नहीं मालूम पड़ता है। यह तो प्रश्न उसी तरह का है जिस तरह से कोई पूछता है कि एक घन्टे म कितना खाते हो, स्नान करते हो। सभी कार्यों को मजदूरी के तराजू पर नहीं तौला जा सकता। पैसे

घन्टे से तौल कर इसकी इज्जत कम कर देना अच्छा नही है। गाँधी जी तो यहाँ तक कहते है कि हाथ कताई श्रम-विभाजन के सिद्धान्त से मुक्त हो जैसे खाना-पीना और सोना है। इसका ध्येय जीवनोपयोगी आवश्यकताओ की पूर्ति करना है। चर्खात्मक समाज से जीवन का उत्थान होता है। नारियों की शील की रक्षा होती है। इसलिए जीवन तुष्टि की कसौटी पर ही इसका मूल्याङ्कण होना चाहिए।

चर्खात्मक विधान में चर्खे को विजली से युक्त करना अच्छा नहीं होगा जैसा कि जापान करने लगा है। विजली से चर्खे करघे चलने से विकेन्द्रीकरण नही होगा और घर के परिवारों की मदद तथा अपने पड़ोसियों के सहयोग से वंचित करने से कलमय उत्पादन से कम ही अन्तर रहेगा। गाँधी जी ने चर्खे को हाथ से चलाने की सलाह दी। चर्खे से सम्पत्ति की वृद्धि कई गुणा नहीं होती है जो किसी दूसरे का शोषण कर सके। इसीके द्वारा श्रम विभाजन और कार्य विभाजन सुचारु रूप से हो सकता है। चर्खात्मक समाज में तो बाहरी आक्रमण का भय भी नहीं रहता है क्योंकि धन सिमिट कर एक के पास नही आता है। चर्खात्मक मार्ग तो अहिंसात्मक मार्ग है। हिन्दू—मुस्लिम अनमेल होने का कारण मिल भी हो जाता है क्योंकि पारस्परिक सहयोग को छिन्न-भिन्न कर दिया है। अंग्रेजो के भारत में डेरा डालने के पहले सुभान जुलाहे से हमलोगों का काम चल जाता था,

वह कपडा बुन कर हमें देता था। पर मिल खुल जाने से सुभान मियाँ मसौढ़ी में जाकर ढिबरी मियाँ हो गये हैं क्योंकि अब वह टीन का दीपक और लालटेन की मरम्मत करते है, फिर वह अपने गाँववाले से अहसानमन्दी क्यों रक्खे ? आज हरतालों की भरमार इसी कलमय विधान की करतूत है। जब जरूरत से अधिक उत्पादन होगा और मुनाफे का बँटवारा मालिक और मजदूर में उचित रूप से नहीं होगा, तब समझिये कि आपस में नोक-झोंक, संघर्ष चलता ही रहेगा। बड़े-बड़े कारखानों की विराट उपज को खपाने के लिए बाजार ढूँढना ही पड़ता है। अगर हँसी खुशी और चाल फरेब से काम नही चला तो युद्ध की नौबत आ जाती है। आज अंग्रेज यहाँ से गये फिर भी भारत को विभाजन कर किस तरह पाकिस्तान और हिन्दुस्तान को लड़ाकर अपना उल्लू सीधा करना चाहते है। वे चाहते हैं कि मेरा बाजार आंज भी इन देशों में कायम रहे और ये दोनो राष्ट्र आपस में लड़ते रहें। काश्मीर की समस्या को उलझाने में अंग्रेजों का हाथ कम नहीं रहा है।

कलमयी उद्योग व्यवस्था में शोषण और हिंसा के अलावे है क्या ? गाँधी जी मशीन के पक्ष में कभी भी नहीं रहे जो मानव को विनाश करने पर तुली हुई है। इसलिए अगर कोई देश भक्त भारत के गाँव का पुनरुद्धार करना चाहते हैं तो कलमयी व्यवस्था को छोड़ कर चर्खात्मक उत्पादन

की ओर चले, तभी गरीब देश का उत्थान होने की उमीद है। हिटलर और चर्चिल की राहपर चलकर तो भारत का अनिष्ट ही होगा।

चर्खात्मक समाज की आधारशिला नारी है। अतएव नारियों से काम लेना आवश्यक है नहीं तो बेकारी के समय वे अन्ट-सन्ट सोचती रहेंगी। घर में सास पतोहू में भी झगड़ा बेकार रहने के कारण हो जाया करता है। नारी को केवल अङ्कशायिनी बनाने से काम नहीं चलेगा, उनसे भी हर कामों में सहयोग लेना चाहिए। मैं यह नहीं कहता कि वे भी सेना में भर्ती हों पर घरेलू कामों का करना स्त्रियों की तन्दुरुस्ती के लिए हितकर है। पुरुषों को केवल स्त्रियों की सुन्दरता और नाज-नखरे के फेर में नहीं आना चाहिए। ऐसा करने से समाज का पतन हो जायगा।

देश में अशिक्षा का बोलबाला है। एक सौ पचास वर्ष तक अंग्रेजों के रहने पर भी यहाँ की जनता मूर्ख रही। अगर सैकड़े दो मनुष्य की शिक्षा जुटी भी तो विडम्बना मात्र है। अशक्त को शक्ति देने का एक मात्र उपाय है शिक्षा केवल शिक्षा—अन्न, स्वास्थ्य, शक्ति सब कुछ इसी पर निर्भर है। मेकाले की शिक्षा में केवल किताबी बोलियों को दुहराना है और उसी पर छात्रों का उद्धार अवलम्बित है। इस देश में वणिक् राज्य को चलाने के लिए किरानियों को तैयार करने के हेतु शिक्षा दी गयी थी। राणा प्रताप और शिवाजी

का हिज्जे यदि आ गया सो पण्डित। आठ चौके बत्तीस कठस्थ करने ही को हम शिक्षा समझते है। यदि ऐसा न कर सके तो अपने को भारी अपराधी समझते हैं। परन्तु वास्तव में देखा जाय तो जिस चीज से पेट भरते है—उस विषय की शिक्षा को कम कीमत समझना मूर्खता के सिवा और कुछ नही। रूस मे एक आदमी को अनपढ रहते देख वहाँ के निवासियों को ग्लानि होने लगती है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर कहते है—"भारतवर्ष की छाती पर जितना दुःख आज अभ्रभेदी होकर खड़ा है, उसकी एक मात्र जड़ है अशिक्षा—यथेष्ट शिक्षा प्रचार की त्रुटि।"

राष्ट्र निर्माता गाँधी जी शिक्षा म अहिंसक क्रान्ति लाना चाहते थे इसलिए उन्होंने शिक्षा का आमूल परिवर्तन करना चाहा। जो शिक्षा केवल तर्क वितर्क से दी जाती है, वह मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अच्छी शिक्षा नही है। प्रसंगानुसार जो बातें पाठको को बतायी जाती है, वह विद्यार्थियों के मस्तिष्क पर अमिट छाप छोड़ कर रहती है। अतः गाँधी जी ने बुनियादी तालीम (नयी तालीम) का प्रचार किया—इसके द्वारा किसी खास पुस्तक द्वारा पढाई नहीं होती है। शिक्षकों को काम करते समय जो अनुभव प्राप्त होता है, उसी अनुभव को छात्रों के समीप रख देते हैं। इस तरह से छात्र अपने अनुभव तथा आचार्य के अनुभव के बल पर विषय को आसानी से समझ लेते हैं।

शिक्षा केवल पाठशाला ही में प्राप्त हो, ऐसी बात नही है। डाक्टर जाकिर हुसेन साहेब कहते है—"तालीम सारी जिन्दगी का काम है, जिन्दगी की पहली सांस से शुरू होती है और आखिरी सांस तक चलती है।"

नयी तालीम में काम और ज्ञान अलग वस्तु नहीं है। दोनों में चोली दामन का नाता है, घड़ा और मिट्टी का सम्बन्ध है। एक को दूसरे से अलग नहीं कर सकते हैं। इसी शिक्षा को समवायी पद्धति कहते हैं। किताबी ज्ञान के साथ उद्योग के ज्ञान को जोड देना समवायी पद्धति नहीं है। समवायी पद्धति में उद्योग के द्वारा ज्ञान दिया जाता है। उद्योग द्वारा साहित्य का ज्ञान ऊँचे दर्जे में नहीं दिया जा सकता है। अतः शिक्षक साहित्यिक ज्ञान देने के लिए प्रकृति निरीक्षण पर ज्यादे ध्यान रक्खें। महात्मा गाँधी जी की नयी तालीम में और जौन डेवी की प्रोजेक्ट पद्धति में अन्तर यही है कि नयी तालीम में उत्पादित वस्तुओं की कीमत आँके जा सकते हैं पर डेवी की प्रोजेक्ट पद्धति में ऐसी बात नहीं है। इसका यह मतलब नहीं कि स्कूलों के उत्पादन में व्यावसायिक मनोवृत्ति आ जाय। स्कूल को प्रयोगशाला के रूप में समझें न कि कारखाने के रूप में।

बुनियादी शिक्षा पारस्परिक सहयोग की वृद्धि के हेतु अपनायी गयी है। इससे समाज की जड़ मजबूत होगी और बेकारी दूर होगी। बुनियादी तालीम का ध्येय यह नहीं

है कि भौतिक साधनों का उत्पादन कितना हो रहा है बल्कि यह है कि व्यक्ति का विकास कितना हुआ है, यानी सहयोग, आत्म-त्याग और भातृ-भाव की वृद्धि कहाँ तक हुई है। पुरानी तालीम में विद्यार्थी बेकार होकर निकलते हैं किन्तु नई तालीम में बाकार होकर निकलते है। काम द्वारा ज्ञान प्राप्त करने से बुद्धि शुद्ध हाती है और आत्मा को खुराक मिलती है। इसलिए पाठ्य क्रम में सफाई और स्वास्थ्य पर अधिक जोर दिया गया है। स्वास्थ्य ही पर राष्ट्र का उत्थान निर्भर है और वास्तव में बुनियादी पाठशाला का पहला पाठ 'सफाई' से शुरू होता है। जब तक गुरु-छात्र का स्वास्थ्य या मन नहीं स्वस्थ रहेगा, तब तक वे भावी पीढियों को बनाने में असमर्थ रहेंगे। इसलिए स्वाश्रयी आधार ही शिक्षा का प्राण है। स्वाश्रयी होने से वर्ग-विहीन समाज कायम होगा।

श्री आनन्द प्रकाश जी लिखते हैं :—"वर्त्तमान शिक्षा का दुष्परिणाम आज समाज में विभिन्नता लानेवाली पुरानी तालीम है। आज समाज राहु और केतु में बॅट गया है। एक (शिक्षित) को हाथ नहीं है। दूसरे (अशिक्षित) को सर नहीं है। इसलिए दोनों अज्ञान आपस में झगड़ते रहते हैं। ज्ञानी वह जो अपने चारों ओर का ज्ञान रखता है। "..................गीता में कर्म की महिमा इस प्रकार से कही गयी है। कर्म से प्राप्त ज्ञान वास्तविक ज्ञान है और जिसने वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर लिया

वह मोक्षपद प्राप्त कर लेता है।" नई तालीम का मुख्य उद्देश्य मनुष्य का मानसिक, शारीरिक और अध्यात्मिक उन्नति है। इसलिए ऐसे समाज में न शोषक रहेगा, न डाक्टर—यही गान्धी जी का काल्पनिक 'राम राज्य' है और तभी बुनियादी शिक्षा का सच्चा नाम 'अहिंसक क्रान्ति' सार्थक हो सकता है।" समाज ४ नवम्बर १६४८।

समाज में प्रौढ़ शिक्षा का भी प्रचार होना आवश्यक है क्योंकि आज शहरी विधान बन जाने से गॉव के अशिक्षित व्यक्ति कुछ नहीं समझेंगे और लोकतंत्र का परिणाम और बुरा होगा। अशिक्षित जनता वोट देकर पॉच वर्ष के लिए अपना हाथ काट देती है। मेरे गॉव में मंगल राम कुछ मांझी भाइया को पढाना शुरू किया तो गॉव वाले मेरे नजदीक आने लगे और कहने लगे कि उसको मना कर दीजिए कि वह नही पढ़ावे। आश्चर्य तो मुझे उस समय अधिक हुआ जब कि गॉव के एक सच्चे नेता इस बात के लिए मुझसे अनुरोध करने लगे। मैंने कहा कि वह कोई बुरा काम तो नही कर रहा है। वह तो वही काम कर रहा है जिसे समस्त प्राणी को निष्पक्ष होकर करना चाहिए। किसी की सेवा कर मनुष्य का दिल जीतना अच्छा है न कि अन्धकार में रखकर अपना काम निकालना। अतः सरकार को भी प्रौढ़ शिक्षण में दिल खोल कर मदद करनी चाहिए। मगल राम अपने खर्च से कई

बार पटने आया कि वयस्क शिक्षण बोर्ड से कुछ सहायता मिले पर इन्सपेक्टर साहेब उसके गाँव में कभी भी मुलाहजा के लिए नहीं गये और न कुछ सहायता ही मिली। स्लेट, पेन्सिल की मदद मिल जाती तो गरीबों की बहुत भलाई हो जाती। विश्वविद्यालय में यह नियम बना लेना चाहिए कि जो विद्यार्थी पाँच व्यक्तियों को पढावेगा वही प्रमाण-पत्र पाने का अधिकारी होगा। ग्राम सरकार द्वारा इसकी खबर पहले ही मँगा लेनी चाहिए—जबतक मनुष्य को शुद्ध भावना दिल में नहीं आवेगी, तब तक इसमें बेगारी की गुंजाइश है। गर्मी और पूजा की खोखली छुट्टियों का छात्र लोग उपयोग करें तो समाज की भलाई बहुत कुछ हो सकती है।

अस्पृश्यता को मिटाने में ब्राह्मण लोगों का हाथ अधिक होना चाहिए क्योंकि हिन्दू धर्म की बागडोर उन्हीं के हाथ में है। वे ही धर्म के ठीकेदार हैं। खाने पीने में रुकावट तथा ऊँच-नीच की भावना छोड़कर धर्म में आज कुछ नहीं रह गया है। जब ब्राह्मणों ने पढाना छोड़ दिया तो देश मूर्ख होकर गुलाम हो गया। अतः आज भी आजादी को कायम रखने के लिए उनको पढ़ा लिखा कर छुआछूत दूर करना होगा। आज अछूत भी काम से मुख मोडने लगा है और वह भी समझता है कि मै शारीरिक काम करता हूँ इसलिए मै नीच समझा जा रहा हूँ। जिस समय से समाज में यह बात घुस गयी है कि 'पूजिये विप्र जो वेद विहीना'; उस समय से

समाज पतनोन्मुख है। अतः शारीरिक श्रम करनेवाले हरिजनों से भी प्रेम कर अपने भाई के समान समझें और वे लोग भी काम को पहले की भाँति दिल से करें।

हमारे गाँव में हरिजन लोगों ने कच्चे अरहर की फलियों को खेतों से चुराकर अपनी भूख की ज्वाला शान्त की पर परिश्रम करना कबूल नहीं किया। यदि ऐसा करेंगे तो भारतवर्ष में भुखमरी और बढ़ेगी। अतएव सभी प्राणियों को श्रम की प्रतिष्ठा कर उत्पादन की ओर बढ़ना चाहिए और जो अधिक काम कर समाज की सेवा करेगा, उसीको ऊँचा समझना चाहिए। जाति के बल पर ऊँचा होने से समाज रसातल में चला जायगा। गाँधी ने कहा है—"Those who are without work are thieves"—Yonng India 13-10-24. जो बिना कमाये खाते हैं वह निश्चय ही चोरी करके खाते है। इसलिए जो समाज में अपने श्रम से दूसरों की सेवा करें, उन्हें अधिक इज्जत देनी चाहिए।

सर्वोदय का सरल अर्थ है सबकी भलाई। सर्वोदय का विश्वास है कि मनुष्य सादगी द्वारा दुनिया में सुख प्राप्त कर सकता है। बनावटी आवश्यकताओं को बढ़ाने से दुःख को बढ़ाना होगा। आवश्यक वस्तुओ को इस्तेमाल करने से मनुष्य सुखी रह सकता है। चमक-दमक की चीजों के इस्तेमाल करने से मनुष्य की आँखे चकाचौन्ध हो जाती है और अच्छा बुरा सोचने का अवसर नहीं मिलता। स्वावलम्बी

बनने से ही समाज सुखी होगा। कताई करने से ही मनुष्य स्वावलम्बी हो सकता है।

सर्वोदय से शासन विहीन समाज की स्थापना हो सकती है जिसको राम राज्य कहते हैं। यह राम राज्य बापू के बताए हुए रचनात्मक कार्यों से पूरा होगा। सर्वोदय का दूसरा नाम 'ज्ञान मय कर्म योग' है। अतः इसके कार्यकर्त्ता को निष्पक्ष भाव होकर जनता की सेवा करनी चाहिए। निष्कपट कार्यकर्त्ता ही से सरकार को कामों में मदद मिलती है। वास्तव में सरकार को सत्पथ पर आरूढ रखने के लिए रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं को सरकार के लिए दिशा सूचक बनना होगा।

———

# क्या गाँधीवाद पीछे को ओर ले जाता है?

"मेरा विश्वास है कि उचित स्थान पर नहीं रखे जाने से कोई भी यंत्र विश्व की सेवा न कर उसका अनिष्ट ही करेगा।

—गाँधी जी

आज कल बहुत से पढ़े हुए लोग भी यह कह बैठते है कि वैज्ञानिक युग में जब कि दुनिया तीव्र गति से आगे बढ रही हैं, उस समय हम क्यों पुरानी चीजें चर्खा, तकली से खेलवाड करें। उन लोगों के दिल में मशीन का युग स्वर्णयुग है। कुछ अंशों में मानता हूँ कि मशीन मनुष्य को लाभ भी पहुँचाता है। संक्षेप में मशीनों से होने वाले लाभ ये है:—कठिन से कठिन काम मशीन द्वारा आसानी से हो जाता है और शारीरिक शक्ति क्षीण नहीं होती। जैसे रेल के सामान या पुल के सामान हाथ द्वारा बनाना असम्भव है। इसके अलावे भी सूक्ष्मातिसूक्ष्म वस्तु मनुष्य नहीं बना सकता है। छोटी घड़ी के कल-पुर्जे हाथ द्वारा बनाना मुश्किल है या अन्य मशीन के पुर्जे भी मशीन से हो एक समान तैयार हो सकते हैं। मशीन की बनी चीजे सस्ती होतो हैं इसलिए गरीबों के लिए भी सुलभ है। नीरस काम भी मशीन द्वारा सुचारु रूप से होता है, नालियाँ साफ करना, कूड़ा-कचड़ा

ढोना, लकड़ी चीरना, रन्दा इत्यादि। मशीन के द्वारा दूरी की समस्या हल हो गयी है। रेल, हवाई जहाज तथा रेडियो ने दूर की चीजों को बहुत निकट ला दिया है।

इसके अलावे मशीनों के साथ-साथ बहुत सी हानियाँ भी हैं जिनपर विचार करना जरूरी है। मशीनों से वस्तुओं का उत्पादन अधिक हो जाता है और बेकारी बढ जाती है। मशीन इस देश के लिए उपयोगी नहीं है जहाँ आबादी की अधिकता हो। मशीनों से कारीगरी को धक्का पहुँचता है। इसमें मनुष्य के बुद्धि-विकास का मौका नहीं मिलता। मशीन से काम होने के कारण माल अधिक बनता है और उसकी बिक्री न होने पर मजदूरो की कटौती होती है। यही कारण है कि केवल वेतन-सम्बन्धी झंझटो के कारण मिलो में झगड़ा होता रहता है। भिन्न २ औद्योगिक देशों में इसी के कारण पारस्परिक संघर्ष, द्वेष और युद्ध का बिगुल बजता रहता है। कल कारखाने शहरों में खड़े किये जाते हैं जिससे काम करने वालों का स्वास्थ्य चौपट हो जाता है। आजकल बड़े-बड़े शहरों में अधिकतर मजदूर सडकों पर सोकर जीवन गुजारते है। गन्दी हवा में काम करने के कारण जल्दी से ही इस संसार से डेरा कूच कर डालते है।

कहने का तात्पर्य यह है कि मशीन में एक बड़ा गुण है कि काम जल्दी से सम्पन्न होता है और देखने में बहुत सी चीजें भड़कीली मालूम पड़ती हैं। इसके अलावे मशीन में मनुष्य

को गुलाम बना दिया है। इसमें बुद्धि विकास होने की आशा नहीं रहती है। जबसे इंगलैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति हुई है तबसे वहाँ के कोई उच्च श्रेणी के लेखक, कवि नहीं हुए है। एलिजाबेथ के बाद सभी की कल्पना शक्ति ढप पड़ गयी। वैज्ञानिक युग से फायदा कुछ हुआ भी है तो यह कि राजनैतिक चेतनता बढ़ रही है। मशीनों के कारण पूँजीपतियों की संख्या बढ़ गई है और मजदूरों का रक्त शोषण के उपक्रम बहुत जोरों से जारी है जिसके फलस्वरूप फ्रांस में रूसो, वाल्टेयर, रूस में टाल्सटाय आदि क्रान्तिकारक लेखक पैदा हुए हैं।

महात्मा जी कहते हैं—" मिलों की संख्या में कितनी ही बुद्धि क्यों न हो, वे हमारी दरिद्रता की समस्या को हल नहीं कर सकतीं। हमारा जो रक्त-शोषण हो रहा है, उसे रोक नहीं सकतीं और हमारी झोपड़ियों में १२५ करोड़ रुपये नहीं बाँट सकतीं। वे केवल सम्पत्ति का और मजदूरों का केन्द्रीकरण करती हैं और इससे 'एक तो स्वभाव से ही चंचल और ऊपर से उसे पिला दी शराब' ऐसी स्थिति हो जाती है।"

मशीनों के साथ काम करने के कारण शरीर, मन और आत्मा का नाश हो जाता है। मनुष्यों को मशीन से काम चलता तो हमारे पूर्वज इसे तो जरूर इस्तेमाल करते पर उन्होंने देखा कि इससे हानि छोड़ कर लाभ नही होगा; इसलिए इसकी ओर ध्यान नहीं दिया। जनता का श्रम आराम और

विनोद एक ही साथ लेना चाहिए। इन सब चीजों को मशीन द्वारा प्राप्त नहीं कर सकते हैं। मशीन के साथ काम करने से मनुष्य राक्षस बन जाता है और वेदना को मिटाने के लिए शराब तक पीनी पड़ती है। खेती, बागबानी, कताई, बुनाई मनुष्यता का पोषक है और मानव का इससे बुद्धि-विकास होता है। मशीन के साथ काम करने से मनुष्य यन्त्रवत् हो जाता है। डाक्टर पट्टाभि सीतारमैया कहते हैं "पश्चिमी सभ्यता मशीन से मुख मोड़ रही है—उसकी चाल बदलने लगी है—वह कलों की पूजा को छोड़ कर मनुष्यों की पूजा को अपना आदर्श बना रही है। इस आदर्श के दरसाने वाले देवता रस्किन और टाल्स्टाय आदि हैं। इंजिनों के पहियों के नीचे दब कर वहाँ के भाई-बंद नहीं— वहाँ की सारी जाति पिस गई, जीवन के धूरे टूट गये, उनका समस्त धन घरों से निकल कर निश्चित स्थानों में एकत्र हो गया, साधारण लोग मर रहे हैं, मजदूरों के हाथ पाँव फट गये हैं, लहू चल रहा है, सरदी से ठिठुर रहे हैं। एक तरफ दरिद्रता का अखंड राज्य है, दूसरी तरफ अमीरी का चरम दृश्य! परन्तु अमीरी भी मानसिक दुःखों से विमर्दित है। मशीनें बनाई तो गई थीं मनुष्यों का पेट भरने के लिए—मजदूरों को सुख देने के लिए—परन्तु वे काली-मशीनें ही काली बनकर मनुष्यों को भक्षण कर जाने के लिए मुख खोल रही हैं। इंजिनों की वह मजदूरी किस काम की

जो बच्चों, स्त्रियों और कारीगरों ही को भूखा और नंगा रखती है, और केवल सोना, चांदी, लोहा आदि धातुओं ही का पालन करती है। भारतवर्ष जैसे दरिद्र देश में मनुष्य के हाथों के बदले कलों से काम लेना काल का डंका बजाना होगा। दरिद्र प्रजा और भी दरिद्र होकर मर जायगी। चेतन से चेतन की वृद्धि होती है। मनुष्य को तो मनुष्य ही सुख दे सकता है। परस्पर की निष्कपट सेवा ही से मनुष्य जाति का कल्याण हो सकता है। धन एकत्र करना तो मनुष्य जाति के आनन्द मंगल का एक साधारण सा--महातुच्छ उपाय है। यदि हम लोग दस उंगलियों की सहायता से साहस पूर्वक अच्छी तरह काम करें तो हम मशीनों की कृपा से बढ़े हुए पश्चिम वालों को वाणिज्य के जातीय संग्राम में सहज ही पछाड सकते हैं"।

मिलों के बढाने से हमारी दरिद्रता का नाश नही होगा। हमारे भूखे, नंगे भाई इन्हे नहीं खरीद सकेंगे और खेती छोड़ कर बाहर किसी के यहाँ काम करने नहीं जा सकते हैं। उस पर भी आबादी को घटा कर साढ़े तीन करोड़ करना होगा, क्योंकि ३२ करोड़ आदमी क्या करेगा? आज रेल गाड़ियाँ और मोटरें चल रही हैं। क्या यह युग युगान्तर तक चलता रहेगा? कोयले की कमी भले ही आज महसूस नहीं हो पर पेट्रोल की कमी तो भारत में सदा से चली आ रही है। किन्तु वास्तव में रेल और अस्पताल ऊँची और शुद्ध संस्कृति की कसौटी नहीं हैं।

गाँधी जी की बात सच निकली। गत दो महायुद्धों ने यह सिखला दिया कि केन्द्रित औद्योगिककरण देश के लिए कितना भयावना है। यह तो जगलीपन, असभ्यता की ओर ले जाता है। मानव प्रेम को एकदम खत्म कर देता है। इसलिए जीवनोपयोगी अन्न और वस्त्र के लिए दूसरे देश पर निर्भर रहना अच्छा नही है। उन्नीसवी शताब्दी के मध्य में स्वेज की नहर और रेलों के कारण यहाँ का कुटीर शिल्प चोपट नहीं हुआ पर अंग्रेजो के मुक्त व्यापार ही ने इसे सर्वनाश कर दिया। अग्रेजो की नीति थी कि बृटेन के भोजन का प्रबन्ध करे। अंग्रेजो के लिए--अपने देश के लिए भोजन का प्रबन्ध करना ही भारत के लिए विष हो गया। मार्क्स का कहना है कि भारत रूई के कारोबार मे दुनिया मे बढ़ा चढ़ा था पर वही विलायती वस्त्रों से भर गया।

गाँधी जी सभी तरह के मशीनों का विरोध नहीं करते थे। मशीनें जब चाहिए कि काम ज्यदा है और काम करने वाले कम हैं। पर हिन्दुस्तान में काम करने ही वाले अधिक हैं और ज्यादा आदमी बेकार रहते हैं। आज भी अन्न जो हिन्दुस्तान में होता है उससे किसी न किसी प्रकार काम चल जा सकता है। पर मिलों में जाने के कारण अन्नों की कमी और बढ़ जाती है। लोगों का कहना है कि १० फी सदी अनाज मिल में व्यर्थ चला जाता है। उसके साथ ही साथ हिन्दुस्तान का स्वास्थ्य भी चौपट हो रहा है। ग्रामोद्योग

संसार को पीछे की ओर नहीं ले जाना चाहता है; उसका ध्येय है कि गाँव का उद्धार हो और उसमें जान आ जाय। विदेशी शासक ने सिर्फ गाँव को उपभोक्ता बना दिया है पर गृह उद्योग स्वावलम्बी बनाना चाहता है।

---

# शिक्षा जीवन के लिए है

"हमारी शिक्षा में बुद्धि को कुछ व्यायाम करानेवाली, कल्पना को खुराक देने वाली और साहित्य को रास्ता दिखाने वाली शिक्षा बारहसिंगे के भारभूत सींगों की तरह है, और जीवन देनेवाली उद्योग की शिक्षा उसके बेडोल दिखानेवाले, किन्तु मजबूत पैरों की तरह है। सींगों की शोभा के सामने इन पैरों को लज्जा आती है। लेकिन राष्ट्रीय जीवन में उपयोग तो इन्हीं का है।"

—आचार्य काका कालेलकर

उपर्युक्त कथन का अर्थ यह है कि एक बारहसिंगा अपने सींग पर घमण्ड कर रहा था। कह रहा था कि ईश्वर ने मुझे ऐसा बढ़िया सींग दिया पर पैर न मालूम क्यों बदसूरत बना दिया है। मुझे तो इन पैरों पर शरम आती है। कहाँ छिपा दूँ इन्हें, कहाँ फेक दूँ इन्हें ? और ये बदसूरत खूर ? काश ! ये न होते ! कुछ दिन के बाद जब वह जंगल में चर रहा था कि शिकारी अपने कुत्ते के साथ शिकार करने के लिए आये और बारहसिगे का पीछा किया। मजबूत पैरों ने उसे बचाने की चेष्टा की पर उसके लुभावने सींग झाड़ी में फँस गये। पैरो ने पूरी ताकत लगाई, लेकिन सब बेकार ! सींगो के कारण ही उसकी मौत हो गई।

बारहसिंगे की तरह आज भी कई पढ़े लिखे लोग कहते है कि हाथ-पैर का उपयोग करने से न केवल मनुष्य की इज्जत घटती है, बल्कि उनकी बुद्धि भी मन्द हो जाती है। बुद्धि प्रधान लोगों को शारीरिक मेहनत का कोई काम नही करना चाहिये। ऐसा नियम करने के पहले, उसके साथ साथ, एक ऐसा भी नियम बना लेना था कि खाने जैसा पार्थिव काम भी उन्हें न करना चाहिए। केवल साहित्य ही खाकर और काव्य रस पीकर, और व्याकरण ओढकर ही उन्हें रहना चाहिए, जिस तरह से हमारे देवता अन्न को नही खाते केवल सूंघ कर तृप्त हो जाते हैं।

जे० सी० कुमारप्पा महोदय ने कहा है कि "शिक्षा सबसे बड़ी कुंजी है जो जीवन को बनाने के लिए सभी विभागों में प्रवेश कराती है।" शिक्षा का मतलब यह नही है कि पाँच वर्ष की उम्र होने पर दस साल तक स्कूल या कालेज की शिक्षा ले ली। इससे तो सिर्फ अक्षरों की भेंट हो जाती है। क्या शिक्षा का अन्त और ध्येय यही है? यदि शिक्षा ने सभ्य नागरिक, योग्य पति तथा अच्छा पिता तैयार नही किया तो कुछ नहीं किया। इसका ध्येय विशाल है और माता की गोद से शुरू होकर भू-माता की गोद तक अन्त होने वाली है। शिक्षा हिसाबी अंकों को मस्तिष्क पर लादना नहीं है। वास्तविक शिक्षा तो वही है जिससे व्यक्तित्व का विकास हो। पर दुर्भाग्य-वश थोड़ा सा लिखना-पढना ही शिक्षा समझ लिया है।

शिक्षा और साक्षरता में काफी भेद है। केवल अक्षर का जानने वाला ही शिक्षित नहीं है। विना बुद्धि विषम विद्या। बहुत से ऐसे भी संसार में हैं जिनका हाथ कभी भी कलम-पाटी की ओर नहीं गया है और शिक्षित हैं। अनेकों शास्त्र-वेत्ताओं की गिनती भी मूर्ख में आ सकती है। पल्लवग्राही ज्ञान तो बहुत से प्राप्त कर लेते हैं पर गम्भीर ज्ञान होना दुर्लभ है। पुस्तक ज्ञान प्राप्त करने का एक साधन है। सत्संग से भी मनुष्य शिक्षित होता है। कबीरदास भी सत्संग के ही बदौलत महान् कवि, दार्शनिक हो गये है। "शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खाः यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्"। शास्त्र को पढकर भी लोग मूर्ख होते हैं, जो कर्त्तव्य शील हैं वही यथार्थ विद्वान् है। पढने लिखने से क्या हुआ जो किसी अच्छी बात को व्यवहार में नहीं लाया। विद्या पढकर भी यदि व्यवहार में नहीं लाता है तो वह व्यक्ति दूसरों के भार को ढोनेवाले (गधे) की तरह केवल दुःख उठानेवाला होता है, जैसा कि हितोपदेश में कहा गया है।

. ...... . ... . ... . . . .......

पराथभारवाहीव क्लेशस्यैव हि भाजनम्।

इसी बात को फारसी के कवि शेखसादी ने भी कहा है।

इल्म चन्दा कि वेशतर खानी।
चू अमल नेस्त दर तू नादानी॥

न मुहक्किक बुवद न दानिशमन्द ।
चार पाये बरो किताबे चन्द ॥

बहुत किताबे तूने पढ़ी पर उसको अमल में नही लाया तो क्या किया ? अगर पढकर अक्लमन्द तथा शिक्षित नहीं हुआ ता वह चौपाये के समान है जिस पर किताबे कुछ लदी है ।

प्लैटो ने कहा है कि " Education is the development of body and mind"—शिक्षा वह साधन है जो शारीरिक और मानसिक शक्तियों को बढावे । गॉधीजी ने कहा है कि "Education is the development of body, mind and soul together " अर्थात्—शिक्षा वह साधन है जो शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियों को बढावे । जाकिर हुसेन साहब कहते है कि " Education is the purposeful effort of the society to maintain and improve itself " अर्थात् शिक्षा वह साधन है जिससे मानव अपनी स्थिति को कायम रखते हुए आगे बढने की कोशिश करता है । हमारे देश मे अग्रेजी शासन काल मे शिक्षा का उद्देश्य किरानियों का उत्पादन था । मैकाले का शिक्षा सम्बन्धी यही विचार था कि अंग्रेजी हुकूमत को कायम रखने के लिए सस्ते में किरानी मिले । इसलिए जितने नौकर सरकारी महकमे में है वे सब किरानीगिरी के काम में मशगुल रहते हैं । इसलिए यह बात सच है कि हमारे दिमाग भी वैसे ही हो गये है कि हम शासन की बागडोर लेकर अच्छी

तरह से शासन नहीं कर सकते हैं, किरानी ता सिर्फ अपने औफीसर के हुकुम का तामील ही करता है, उसे क्या प्रयोजन कि हम स्वतंत्र होकर कुछ सोचें ?

प्राचीन काल में विद्यार्थी गुरुकुलों में पढते थे और गुरु लड़को को पढाने-लिखाने तथा चरित्र-निर्माण को छोड़ कर कोई काम नहीं करते थे। गुरु विद्यादान को पेशा नहीं समझते थे, जिस तरह पिता अपनी सन्तान के पालन-पोषण को पेशा नहीं समझता है। गुरु विशेष पढ़ाते लिखाते नहीं बल्कि छात्र उनके सत्संग से सब कुछ सीख लेते थे। प्राचीन काल में सुदामा और कृष्ण ने सन्दीपन मुनि के आश्रम मे, राम लक्ष्मण ने विश्वामित्र के आश्रम मे काम ही द्वारा शिक्षा पायी थी। आरुणी ओर एकलव्य की ज्ञान-प्राप्ति भी इसी तरह हुई थी। बुद्ध भगवान् ने भी कहा है :—

"बहु सच्चं च सिप्पं च विनयो सुसिक्खितो
'बृहु श्रौत्यं च शिल्पं च विनयोश्च सुशिक्षितः'

सुन कर, काम करके तथा विनय द्वारा मनुष्य शिक्षित हो सकता है। ईसा मसीह ने उसी बात को दुहराया जब छात्र उनके पास आये, मुझे पीछा करो। उन्होंने किताब पढने के लिए नहीं दिया था। उनलोगों को उनके पद चिन्ह को अनुकरण करना पड़ा, पर पश्चिमी सभ्यता का रंग चढने के कारण यहाँ की शिक्षा में भी तबदीली होने लगी। भारत में इसका खुदरा व्यापार चलने लगा। जिस तरह से थोक विक्रेता से

खुदरा विक्रेता माल लाता है और अपने ग्राहकों को देता है, उसी तरह प्रोफेसर, शिक्षक भी वही काम करने लगे। अपनी बुद्धि तो इतनी विकसित हुई नहीं, वे दूसरे लेखकों के विचारों को लड़कों को देने लगे जैसे कोई अर्थ-शास्त्र के प्रोफेसर जाथर-बेरी की किताब पढ़कर आते हैं और उसी को लड़के के सामने रख देते है, या चौधरी और सेन की नोट पर ही काम चला लेते हैं। इस तरह के दुकानदारीवाले सौदे से विद्यार्थी को कुछ ज्ञान नहीं होता, उसके मस्तिष्क पर कोई अमिट छाप नहीं पड़ता। अध्यापक तो सिर्फ रुपये के लिए लडकों के सामने खड़े होते हैं और रात में जो कुछ याद किया लड़कों के सामने दुहरा देते हैं। पुराने जमाने में शिक्षक गॉव ही का होता था और उनको जमीन दे दी जाती थी जिससे उनके बाल-बच्चों की परिवरिश हो। गॉव के शिक्षक होने के कारण वे छात्रों का समय बर्बाद नहीं होने देते थे। अगर कुछ पढाने में गुरु अन्यमनस्क भी हो जाते तो गॉववालों से डर रहता था। आजकल बोर्ड के शिक्षक या सरकारी स्कूल के शिक्षक स्कूल समय से दो घंटे बाद आवें या दो घंटे पहले जायँ तो कौन देखनेवाला है? वे इसकी कुछ परवाह नहीं करते। इन्सपेक्टर साहब साल भर में एक बार आये तो आये, नहीं तो और भी अच्छा हुआ। इसलिए प्राचीन शिक्षा-प्रणाली जो गॉव की मदद से चलायी जाती थी, वह अच्छी होती थी।

गाँधी जी ने सन् १९३७ में सभी शिक्षा शास्त्रियों को बुलाया

और उनसे राय लेकर वर्धा शिक्षा योजना निकाली। इस योजना का मतलब था कि शिक्षा काम के द्वारा दी जाय। स्कूली शिक्षा यहाँ के लिए एकदम बेकार सिद्ध हुई क्योंकि इससे शारीरिक विकास कुछ नही होता था। राष्ट्रीय शिक्षा के लिए अनेकों जगह विद्यापीठ स्थापित हो गये और प्रान्तीय भाषा द्वारा पढाई होने लगी। दस्तकारी का काम स्कूल मे होने लगा। पहले उद्योग का स्थान इसमे नहीं था। अंग्रेजी शिक्षा में विद्यार्थी अपनी औकात से ज्यादा खच करते थे जिससे गाँव की गरीबी और बढ़ रह रही थी।

लोगो का ध्यान गाँव की ओर गया। उनलोगों का विचार हुआ कि ग्रामीण शिक्षा ऐसी हो जो सर्वाङ्गीन विकास करे। ब्राह्मण लोग विद्यादान जाति देख कर करते थे, इसी का परिणाम हुआ कि आज भारत में अधिक निरक्षर भट्टाचार्य है। जब हमने ब्राह्मणो को छोड़ कर अंग्रेजो से शिक्षा पायी तो यहाँ ब्राह्मण कहाँ रहे? क्षत्रियों के रहते भी गुलाम रहे तो क्षत्रिय कहाँ? वैश्यो के रहते भी हमारी लूट खसोट अंग्रेजो द्वारा हुई तो वैश्य कहाँ? 'धर्म सिर्फ उत्सव से शुरू और अन्त होता है। यह धर्म नही है।

आज हमारी शिक्षा शराब की आमदनी पर चल रही है पर गरीब ही लोग अधिक शराबी हैं। गरीबो की झोपड़ियो को जलाकर मध्यम वर्ग के लोगो को शिक्षा देना, देश को बर्बाद करना है। कोई राष्ट्र गरीबों के खून पर आगे नहीं

बढ सकता है। पाप को कमाई के कारण शिक्षा का पसार नहीं हुआ। विद्यादान द्वारा धर्म करने से पाप दूर नहीं होता। शिक्षा के लिए सरकार को आमदनी का दूसरा जरिया निकालना चाहिए जिससे निरक्षरता जल्दी यहाँ से भाग जाय।

साक्षरता कोई शिक्षा नही है। इस लिए बुनियादी तालीम का प्रसार हुआ है कि लोगों को शराब पिलाकर सरकार शिक्षा प्रदान न करे। वास्तविक शिक्षा में उद्योग वैज्ञानिक ढंग से सिखाना चाहिए। इसलिए काम द्वारा शिक्षा लड़कों को आरम्भ ही से देनी चाहिए और तब पढाना शुरू करना चाहिए। चित्रकला सीखने के बाद लड़को से अक्षरों को लिखाने का काम करवावें। यदि बचपन मे उनके कोमल अंगों से काम नहीं लिया जायगा तो लकवा मार देगा फिर औद्योगिक शिक्षा से लाभ नही होगा। गरीब देश में शिक्षा और उद्योग का एक दूसरे से अलग रखना लाभदायक नहीं है। आजकल खेती का ह्रास होने का कारण यह है कि किताबी शिक्षा में विद्यार्थी लीन हो गये हैं। किताबी शिक्षा न करके व्यावहारिक बनाने के लिये किंडर गार्टन, डाल्टन, मौन्टेसरी आदि पद्धतियों का प्रसार संसार भर में हुआ। पर इन पद्धतियों में भी वास्तविकता का आभास होते हुए भी वास्तविक जीवन के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। गाँधी जी ने कहा कि "शिक्षा मनुष्य के वास्तविक कार्य-क्रम के जरिये ही होनी चाहिए। तभी कर्म द्वारा वास्तविक

शिक्षा हो सकेगी और तभी शिक्षा के लिए कर्म किया जायगा– वह समाज के उपयोग में आ सकेगा नहीं तो सारी कर्म शक्तियों का अपव्यय ही होगा।" हर एक देश में तालीम देश, काल के अनुसार दी गयी है। जर्मनी ने १९'४ ई० में महा युद्ध में हारने के बाद सैनिक शिक्षा प्रत्येक पाठशाला में अनिवार्यरूप से लागू कर दी और स्कूल तथा कालेजों में विद्वानों के बदले सैनिक तथा कीरीगर निकलने लगे। रूसी शिक्षा में भौतिकता का बहुत बड़ा स्थान है। रूसी विचार धारा के अनुसार जन कल्याण का एक मात्र सोपान भौतिक सुख ही है। रूस को सारी शक्ति अत्यधिक सुख और आराम की सामग्रियों के उत्पादन में लगाई जाती है। इस समय रूस भी युद्ध की ओर बढ रहा है और इसने जर्मनी की शिक्षा प्रणाली अपनायी है। स्कूलों में सैनिक शिक्षा दी जा रही है। इंग्लैण्ड भी तिजारती शिक्षा देकर अपने उपनिवेशों तथा साम्राज्य को बढाने में तत्पर रहा है। इस समय भी हमारी तालीम ऐसी हो जिससे समाज में स्वतंत्रता और स्वावलम्बन हो। प्रगतिशील विचार वाले यही चाहते हैं कि समाज में साम्य और एकता स्थापित हो। इसलिए लोगों की राय है कि वर्ग-हीन समाज कायम हो। रईस, बाबू, मजदूर इन तीनों वर्गों में से किसी एक को रहने दे जो अधिक उप-योगी है। मजदूर वर्ग ही अपने पेशे पर कायम रहकर संसार को जीवित रख सकता है।

अब सवाल आता है कि इन वर्गों को कैसे हटाया जाय। यूरोप में हिंसा द्वारा हटाने की कोशिश की गई पर कुछ लाभ नहीं हुआ। महात्मा जी तो अहिंसा ही के द्वारा हटाना चाहते थे। दुनियाँ में प्रकृति के किसी अंश का नाश नहीं होता केवल रूप का परिवर्तन हो जाता है। इसलिए रईस बाबू को उत्पादक श्रेणी में मिला देना है। यह काम सहयोग द्वारा ही हो सकता है क्योंकि हिंसात्मक तरीके से किसी को अपने में नही मिला सकता। रचनात्मक कार्यक्रम के द्वारा ही वर्ग हीन समाज की स्थापना हो सकती है। नई तालीम का जो ढंग है वह इसी दिशा की ओर ले जाना चाहती है। पुरानी तालीम में मजदूर वर्ग के लोग भी रईस बाबू की श्रेणी में आ जाते थे पर बुनियादी तालीम हर एक वर्ग को अपने पैरों पर खडा होने का मौका देता है। इसलिए पुरानी तालीम में बाबू लोगो की तायदाद बढती है पर बुनियादी तालीम मे घटती है। नई तालीम में तो वही पढता है जो काम करता है और बाबू लोग जो काम करने से हिचकते है, अपढ़ रह जाते है। नई तालीम में बुद्धि विकास के तीन साधन माने गये है एक तो प्राकृतिक वातावरण, जिसमें वह जन्म लेता है, दूसरा सामाजिक वातावरण, जिसमें उसकी जिन्दगी बीतती है, और तीसरा धन्धे का काम जो उसके जीवन के लिए उपयोगा है। बुनियादी शिक्षा में बच्चों को खेती, बागवानी और दस्तकारी की जानकारी हो जाती है।

मनुष्य का जो स्वाभाविक कर्म आत्म-रक्षा की चेष्टा है उसी कर्म के अनुभव से ज्ञान प्राप्त करना है और यही नई तालीम का सिद्धान्त है। कर्म ही जीवन का सार है। पक्षी को उड़ने के लिए दो परों की जरूरत है, एक पर से उड़ा नहीं जाता, उसी तरह जब ज्ञान और कर्म, ये दोनों पर एक दूसरे के साथ सहयोग करते है तभी जीवन उन्नत बनता है और तभी जीव बंधन से मुक्त होकर शिवरूप से अनन्त में विहार करता है। तुलसीदास ने अपनी रामायण मे लिखी है कि "कम प्रधान विश्व करि राखा। जो जस करहि सो तस फल चाखा॥ सकल पदारथ यहि जग माही। कर्म हीन नर पावत नाहीं।" यह जो कहा गया है कि 'चित्तस्य शुद्धये कम'—कर्म चित्त की शुद्धि के लिए है—वह अक्षर अक्षर सच है। और भर्तृहरि ने साफ कह दिया है कि बुद्धि की शिक्षा कर्म द्वारा ही हो सकती है—'बुद्धिः कर्मानुसारिणी।' उपनिषदों में 'मंत्रोपनिषद' के रूप में जिसकी बडी प्रतिष्ठा है, वह ईशावास्योपनिषद भी एक जगह कहता है कि जब कर्म और ज्ञान अलग-अलग हो तब ये मनुष्य को अंधियारे गढ़े में ले जाते है और जब ये दोनो पारस्परिक सहयोग करते हैं तो मनुष्य मोक्ष भी पा लेता है। दिमागी तालीम से मनुष्य में कुशलता नही आती है। वह गेन्द की तरह यो ही उछलता रहता है और फिर नीचे गिर पड़ता है। और जो कहीं सूई चुभ गई तो हवा निकल कर दया का पात्र रह जाता है।

इसलिए जो बुद्धि हाथ-पैर का उपयोग नहीं करती वह बेकार और आत्म-विश्वास से शून्य होती है। हाथ-पैर की शिक्षा से बुद्धि का विकास होता है, स्वावलम्बन और संयम ये चारित्र्य के दो फेफड़े है।

भारत में प्रयोग होनेवाले भिन्न-भिन्न-शिक्षण-पद्धतियों के विषय में कुछ कह देना चाहता हूँ। इस तरह यहाँ चार प्रकार की पद्धतियाँ हैं। (१) केवल पद्धति (२) समुच्चय पद्धति (३) संयोजन पद्धति (४) समवाय पद्धति। केवल पद्धति में तर्क और विचार शक्ति का ही विकास होता है। इसलिए उसे 'केवल पद्धति' कहते हैं। समुच्चय पद्धति में कुछ देर पढ़ाना है और कुछ देर काम कराना है। पर इस शिक्षा में काम और पढाई में कोई सम्बन्ध नहीं। काम करते हुए ज्ञान हासिल नहीं होता है। संयोजन पद्धति को प्रोजेक्ट मेथड भी कहते हैं। पढ़ाने के लिए कुछ काम कराया जाता है जिससे पढाये हुए ज्ञान की पुष्टि होती है। बम्बई के विषय में पढ़ाना हो तो बम्बई का चित्र बनायेंगे और उसे मिटा देंगे। इसमें ऐसा काम नहीं करवाते है जिससे कुछ उत्पादन हो। 'समवाय पद्धति' द्वारा बुनियादी शालाओं मे पढ़ाई होती है। काम द्वारा ज्ञान दिया जाता है। समवाय पद्धति में किसी एक जीवन व्यापी उद्योग से ज्ञान प्राप्त कराया जाता है। उद्योग द्वारा बच्चों की सारी शक्तियों का विकास करना होता है। बच्चों को जीवनोपयोगी ज्ञान देकर उनको

जीवन निर्वाह के लिए एक समर्थ साधन देना होता है। विनोवा जी ने कहा है कि "समवाय पद्धति में उद्योग और शिक्षा में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। एक को दूसरे से अलग कर ही नहीं सकते हैं, जिस तरह से मिट्टी और घडा में सम्बन्ध है। मिट्टी और घड़ा दोनों न एक वस्तु है न अलग, क्योंकि केवल मिट्टी से पानी भी नहीं भर सकते है। बच्चों की सब शिक्षा किसी दस्तकारी के आधार पर होनी चाहिए। उद्योग शिक्षा को गरमी पहुँचाये और शिक्षा उस पर प्रकाश डाले, ऐसी प्रणाली को 'समवाय पद्धति' कहते हैं।"

वेसिक स्कूलो में बच्चे को तकली पर काम करते देख कर बहुत से शिक्षित व्यक्ति भी मजाक उड़ाने लगते हैं और कहते हैं कि तकली से क्या ज्ञान हासिल होगा। मै तकली के द्वारा शैक्षणिक संभावनाओं को संक्षेप में लिख रहा हूँ।

अर्थशास्त्र—तकली वस्त्र की आवश्यकता की पूर्ति करती है जो मनुष्य के लिये भोजन के बाद जरूरी है। अतएव यह स्वावलंबन और आत्मनिर्भता का पाठ पढाती है जो अर्थ-शास्त्र का विषय है। यह विकेन्द्रीकरण और स्वावलम्बन का अर्थ-शास्त्र है, उत्पादन के सस्ते और सादे साधनों का यही मार्ग है। तकली चर्खे से अधिक अच्छी है, क्योकि वह अधिक सादी और सस्ती है। ओर इसलिये करोडों व्यक्तियो तक वहुत आसानो से पहुँच सकती है। तकली अपनी कीमत एक रोज में चुका देती है

और चर्खा १५ दिन में।

विज्ञान—तकली के गर्भ में बहुत सा विज्ञान भरा हुआ है। प्रति दिन के कामों में उसका व्यवहार, स्प्रिंग का सिद्धान्त, धुनकी, डंडी-तराजू का सिद्धान्त, लीभर का सिद्धान्त, कंपन का अर्थ, केन्द्राकर्षण का सिद्धान्त आदि बहुत सी वैज्ञानिक बातों की जानकरी हो जाती है।

(१) पदार्थ विज्ञान—तकली के द्वारा हम यंत्र और यंत्रशात्र की परिभाषाओं पर पहुँच जाते है। तकली कैसे घूमती है। देवप्रकाश नैय्यर का कहना है "इसके द्वारा न्यूटन की गति का पहला नियम—द्रव्य, और बल ( Force ) की परिभाषा, बल के तीन अंग बल का नकशा खींचना, गति और वेग, केन्द्रगामी बल और केन्द्रत्यागी बल ( सेन्ट्री पीटल और सेन्ट्री फूगल ) आदि। तकली खड़ी क्यों हो जाती है ? इस प्रश्न के उत्तर मे हम न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण- नियम, समानान्तर बल और उनका परिणाम, अक्ष रगड़, रगड़ के नियम, फिस-लती रगड़, घूमती या फिरती रगड़, तरल घर्षण शक्ति और शक्ति नाश, भूमि के पृष्ठ को क्रिया और प्रतिक्रिया, न्यूटन का तीसरा नियम, प्रवेग और गतिहीनता और उनको कागज पर कैसे दिखाना, आवेग और आवेग-परिवर्तन आदि।"

(२) रसायन शास्त्र—रसायन शास्त्र भी तकली के घेरे में आ जाता है। सलाख लोहे की बनती है और चकती पीतल की, जो ताम्बे और जस्ते की मिश्र धातु है। "मूल तत्त्व,

साधारण मिश्रण और रासायनिक प्रत्ययों की परिभाषा अपने आप बीच में आ जाती है। तकली में जंग लगने के कारण से रासायनिक और भौतिक परिवर्तन, मूलतत्व और रासायनिक प्रक्रिया, परमाणु और अणु आदि बातों के विषय में जान जाते हैं। पीतल की चकती पर हरी वस्तु पैदा होते देख कर हमें 'हाइड्रोजन सल्फाइड' और उसके ताँबे पर होने वाले प्रभाव में ले जाता है।"

( ३ ) गणित और रेखागणित—जब तकलियाँ लड़कों में बाँट दी जाती हैं और बच्चे घुमाना शुरू करते हैं, तब संख्या, जोड़, घटाव, गुणा और भाग आदि बीच में आ जाते हैं। सूत का अंक, कस, अपेक्षित बट, सूत का व्यास, फलित गति आदि का अभ्यास बिना गणित की पुस्तक पढ़े ही पाठकों को आ जाता है। इससे रेखागणित की भी जानकारी कम नहीं होती है। तकली किस चीज पर नाचती है ? उसका आकार प्रकार क्या होना चाहिये ? तकली को बीच में क्यों घुमाया जाता है ? इन प्रश्नों के उत्तर के सिलसिले में हम यह सिखा सकते हैं—कोण क्या है ? लघु, विशाल और समकोण क्या होते हैं ? इसके द्वारा बिन्दु, रेखा, लम्बी या खड़ी रेखा की परिभाषा की जानकारी प्राप्त कर लेते हैं। आयत, समकोण, त्रिभुज और लघु कोण, त्रिभुज के क्षेत्रफल निकालना आ जाता है। लोहे की सलाख के जरिये बिन्दु, रेखा, अक्ष, ठोस, वृति, केन्द्र, परिधि, त्रिज्या,

आदि की परिभाषा इस तरह से जान लेते हैं कि जिसको रेखा-गणित की पुस्तक द्वारा महीनो लग जायगा। इसके द्वारा वृत्ति का क्षेत्रफल, परिधि और एक ठोस घनफल कैसे निकाला जा सकता है। चकती और सलाख की गोलाई का विचार हमें चाप, त्रिज्या, खण्ड और छूती रेखा की परिभाषा में ले आता है" तकली के डिब्बे के द्वारा हम आयाताकार घन का घनफल निकालना सीख लेते हैं। सूत की कुकड़ी द्वारा हम शुण्डाकार वस्तु के ढालू पृष्ठ का क्षेत्रफल और घनफल निकालने के तरीके सीख लेते है।

शरीर-विज्ञान—कताई में अनेको आसनों का प्रयोग किया जाता है जैसे पलथी, तलवा, जंघा, पिंडली आदि। इन सब आसनो के जरिये शरीर के बढ़ाव में मदद मिलती है। हाथ और पैर का अच्छा व्यायाम होता है। आँख की कसरत हो जाती है। सूत के संसर्ग से स्पर्श-शक्ति बढ़ती है। श्री देव प्रकाश नैय्यर लिखते है कि—"कौन से आसन में सबसे अधिक सुविधा होती है ? यह जानने के लिए हमें उस शकल का अध्ययन करना होगा जो शरीर का ढाँचा प्रत्येक आसन में लेता है। बाँहो और टाँगो की पेशियों की अलग-अलग शकले, जो इस समय बन जाती हैं और इन पेशियो की बनावट और उनके हिलने-डुलने के तरीके भी साथ में ही आ जाते है। फिर कातने में कई पेशियों को मिलाकर तकली चलाना पड़ता है। यह हमें ज्ञान तन्तुओ के द्वारा शरीर के सब भागो

पर नियन्त्रण करने के विषय मे ले जाता है। प्रतिक्षिप्त क्रिया और उसका स्थान, और सुषुम्ना रज्जु इस वस्तु को समझा देती है कि थोड़े से अभ्यास के बाद आदमी बिना ध्यान दिये कैसे कात सकता है। यह समस्या कि निकलते सूत की ओर किस तरह ध्यान लगाना, कि आँख पर जोर न पड़े हमें आँख की बनावट, वर्त्तन ( Refraction ) और झपकी के प्रभाव आदि में ले जाती है।" बायाँ हाथ से कुछ काम नही होता है इसलिए छोटी तकली भी उस हाथ से नही घुमा सकते है। यदि एक सप्ताह अभ्यास किया जाय तो बाये हाथ से तकली आसानी से घुमा सकते हैं और हाथ में ताकत भी आ जाती है। इससे सिद्ध होता है कि शरीर विज्ञान की दृष्टि से यह एक उत्तम वस्तु है।

मनोविज्ञान—मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी यह ज्ञान प्राप्त करने का एक उत्तम साधन है। बालकों द्वारा उत्पादन कराने से उनमें आनन्द प्राप्त होता है जो जीवन के लिए एक अमूल्य चीज है। मोटा सूत भी यदि उत्पादन हुआ तो लड़के उसे अपनी कमाई हुई चीज समझ कर आनन्द से विभोर हो जाते हैं। जिस तरह से बाप अपनी कानी, लंगड़ी संतान पैदा करने पर भी उसे आदर ही की दृष्टि से देखता है ओर अन्य लड़कियों से अपनी बेटी को ही अधिक मानता है। ऐसा वह किस लिए करता है? वह समझता है कि इसको मैने पैदा किया है। आगे श्री नैय्यर जी लिखते हैं—

"जब हम कातने के ताल और संगीत के मन पर प्रभाव कातने की औद्योगिक चिकित्सा, मन की अशान्ति के तार पर प्रभाव और तार के मन पर प्रभाव आदि विषयों का अध्ययन करते है तो मनोविज्ञान बीच में आ जाता है। उद्योग की ठीक व्यवस्था के द्वारा मन का शिक्षण हमें मनोविज्ञान के संसार में ले जाता है। टोली में कातने का मनोविज्ञान अध्ययन दूसरा रुचिपूर्ण क्षेत्र खोल देता है। ऊपर की बाते जादूभरी तकली के—जिसे हम नीची दृष्टि से देखने के अभ्यस्त हो गये हैं—ज्ञान कोष को समाप्त नहीं कर देती फिर भी वे इस बात पर पूरा विश्वास दिलाने के लिए पर्याप्त हैं कि यदि हम कपड़े के उद्योग को सपूर्ण रूप में ले (अर्थात् कपास से लेकर कपड़े तक) तो उसके द्वारा हम ऊँची से ऊँची शिक्षा पा सकते हैं।"

इतिहास—सूती वस्त्र का उपयोग कब से भारत में आ रहा है? ऋग्वेद में—कातने बुनने की चर्चा कई बार आयी है—"मुझे चिंताएँ इस तरह खाये जाती है जिस तरह चूहे बुनकरों के सूत खा जाते हैं।" अनन्त पूजा और जनेऊ को धारण करने से पता चलता है कि सूत का प्रयोग भारत में बहुत दिनों से चला आ रहा है। रामायण, महाभारत में कई बार रूई की सामग्री का प्रयोग हुआ है। महेंजोदारो की खुदाई में तकलियाँ मिली है, उससे पता चलता है कि पहले के लोग भी तकली चलाते थे। ईसा से ८०० वर्ष पूर्व आश्व-

लायन श्रौत सूत्र में रूई की चर्चा आती है कि रूई से बने सामान रेशम से तुलना की जाती थी और पटुआ से ब्राह्मण लोग जनेऊ बनाते थे। ईसा के ४५० वर्ष पूर्व हेरो डोटस लिखते हैं कि "भारत में बहुत से जंगली वृक्ष हैं जिसमें भेंड़ के रोएँ के समान फल लगते हैं।"

भूगोल—तकली के लिए पीतल कहाँ से आता है और कैसे बनता है? लोहा कहाँ से आता है? रूई कैसी जमीन में पैदा होती है? कैसी आवहवा चाहिए? हाँ, रूई की उपज मिश्र से क्यों कम है? संसार में रूई के उत्पादन में भारत का कौन सा स्थान है? इन सब बातों की जानकारी सहज ही हो जायगी।

भाषा और साहित्य—भाषा में शब्द और वाक्य होते हैं, जो वस्तुओं और क्रियाओं को दिखाते है। साफ है कि वे तो प्रत्येक क्रिया में आते ही हैं। उद्योग द्वारा भाषा की जानकारी जल्दी आ जाती है और लड़के काम में आने वाले शब्दों को भूलते नहीं है। कला को दो हिस्सों म बाँट सकते हैं। ललित साहित्य और उपयोगी साहित्य। काम के द्वारा उपयोगी साहित्य का मजा ले सकते हैं। अतः ऐतिहासिक, भौगोलिक साहित्य, अर्थ शास्त्र, राजनीति, समाज शास्त्र, विज्ञान और कला सम्बन्धी साहित्य हमारे बड़े काम की चीजे है। कबीर के ताने बाने के रहस्यात्मक पद भी बड़े अनूठे हैं।

"ताना नाचे बाना नाचे, नाचे सूत पुराना।
करिगह भीतर कबिरा नाचे, यह सद्गुरु कर बाना।"

चित्रकला—कताई करते समय, उद्योग सम्बन्धी उपकरणों का चित्र बनाना पड़ता है जैसे तकली, धुनकी इत्यादि। इससे बालकों को चित्र कला का भी ज्ञान हो जता है

# नारी का आदर्श

"नारियों में केवल अपनी संतानो की नही, बल्कि सम्पूर्ण राष्ट्र की माता होने की भावना और योग्यता होनी चाहिए। यह मातृत्व का व्यापक तथा सामाजिक रूप है। इसीके सहारे नारियाँ एक व्यक्ति को नहीं, बल्कि पूरी जाति के चरित्र निर्माण में सहायक हो सकती है।"

—श्री मती कमल ओम प्रकाश आर्य

इस तरह की नयी आर्थिक व्यवस्था तथा सामाजिक आदर्श शिक्षा के बिना पूरा नही हो सकता है। इस काम की सफलतापूर्वक पूर्ति में महिलाओं का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अहिंसात्मक तरीके से काम तो स्त्रियाँ द्वारा ही हो सकता है क्योंकि स्त्री कमज़ोर होती है। हिसा प्रधान समाज में स्त्रियों का स्थान गौण हो जाता है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ कहीं ज्यादा सहनशील, धीर, त्यागी, उदार, धार्मिक तथा अनुशासन प्रिय होती है। बालकों के चरित्र निर्माण में स्त्रियो का स्थान प्रमुख है। नारी चाहे तो पुरुष या पुत्र को उठा दे या गिरा दे। शिवाजी के चरित्र-निर्माण में पूरा हाथ उनकी माँ का था। तुलसीदास को अमर बनाने वाली कोन हुई? यदि सीता और द्रौपदी नहीं होती तो रामायण और महाभारत ऐसे महाग्रन्थ भी पृथ्वी पर नजर

नहीं आते। वाल्मीकि और व्यास की लेखनी ऊँघती ही रह जाती।

हर्ष के काल में स्त्रियों की दशा अच्छी रही। हर्ष की बहन राज्यश्री बड़ी पढ़ी लिखी थी। उसके बाद देश में बारम्बार आक्रमण होने के कारण स्त्रियों की तरक्की नहीं हो सकी। आजकल स्त्रियों में पर्दा और अशिक्षा है। मुस्लिम शासन काल में रजिया, नूरजहाँ, मुमताजमहल, अवध की बेगम ने राजनैतिक क्षेत्र में उतर कर सुचारु रूपेण शासन भार वहन किया। इंग्लैण्ड में रानी मेरी, एलिजावेथ, विक्टोरिया का भी काम श्लाघनीय रहा। भारत में रानी लक्ष्मी, रानी दुर्गावती का नाम मुझे बरबस याद आ जाता है।

नारियों का स्थान बहुत पुराने जमाने से ऊँचा चला आ रहा है। शबरी, मीराबाई, मन्दोदरी आदि धार्मिक स्त्रियाँ आज भी प्रातःस्मरणीय है। महिला शब्द का मतलब ही है पूजने योग्य। गृहस्थ आश्रम में नारी बिना काम नहीं चलेगा इसलिए स्त्री-शिक्षा का प्रचार होना जरूरी है। एक पुरुष को शिक्षित करने से एक व्यक्ति शिक्षित होता है और एक स्त्री को शिक्षित करने से एक परिवार शिक्षित होता है। इसलिए लड़कियों की शिक्षा पर अधिक ध्यान देना चाहिए क्योंकि वे ही सामाज के आधार है। उन्हें भोजन, स्वास्थ्य, सफाई, बच्चों के पालन-पोषण की शिक्षा दी जानी चाहिए। जब तक वे लोग शिक्षित नहीं होंगी तब तक जात-पाँत हटाना

मुश्किल होगा। पहले जमाने में स्त्रियाँ इतना काम जरूर कर लेती थी।

"स्वच्छ रखती थी घर द्वार बुहार सदा,
धान कूट लेती औ चाकी भी चलाती थी।
सूत कातती थी और माखन विलोती वर,
भोजन विशुद्ध निज हाथ से बनाती थी।
करती सिलाई, लड़ाती लाड़-लाड़ले को,
पाठ करती थी, निज पति को जिमाती थी।
आय और व्यय का हिसाब लिखती थी,
हरि गाथा सुनती थी पुण्य जीवन बिताती थी

—कल्याण 'नारी अंक'

इसलिए ग्रामोत्थान में स्त्रियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि गृह-लक्ष्मी वे ही है। चाहे तो डालडा का प्रयोग करा सकती है, मिल का तेल या आटा खिला सकती है। मिल का पौलिश चावल भी पका सकती है। वे सब कुछ कर सकती है। अगर गाँव की खादी पसन्द न आयी तो मिलों के कपड़े ला सकती है। अन्धविश्वास के कारण नित्य बकरे भी कटवा सकती हैं। इसलिए कोई भी समाज अपनी महिलाओ की उपेक्षा कर आगे नहीं बढ सकता।

आजकल स्त्रियाँ काम काज बहुत कम करती हैं। खास कर बड़े घरो में तो कुछ भी काम नहीं रहता। शिशुपालन, भोजन पकाना और गप्प करना ये ही मुख्य काम रह गये हैं।

'अपने घर में घर भर सूत, दूसरे घर में घर भर थूक' वाली कहावत याद रहे तो घर में झगड़ा न हो और चर्खा खूब चले जिससे वस्त्र की तंगी भारत से हमेशा के लिए दूर हो जाय। पर आज कल तो शृंगार और सजावट से इतना प्रेम हो गया है कि अपने बच्चों के प्रति भी विशेष धयान नही दे पाती। सुबह को बिना शौचादि कराये बच्चों को खेलने के लिए घर से बाहर कर देती हैं। उधर बच्चों के मुख पर मक्खियाँ भिन भिनाती रहती हैं इधर माता शृंगार के साधन निकाल कर घण्टों भर अपने सजाने में लगा देगी।

ग्रामोद्योग में दो कामों को स्त्रियाँ अच्छी तरह से कर सकती हैं। चर्खा चलाना और धान कूटना। साधारण घरों में तो आज कल भी स्त्रियां धान कूट लेती हैं। इसलिए इनका स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है। बड़े घरों की स्त्रियाँ अधिक बीमार रहती हैं क्योंकि शारीरिक परिश्रम कुछ नही करतीं और विलासी जीवन बितासी है

पुरुषों में एक दोष आ गया है कि स्त्रियों को उन्होंने अपना सहचरी नहीं समझा है। वे अपने स्वार्थ के आवेश में अपने को मालिक समझ बैठे हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि पुरुषों से स्त्रियों को कोई शिक्षा नहीं मिलती। दुनिया की बातों से स्त्रियाँ आज कल अलग हो गयी हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि पुरुषों ने उन्हें अपना गुलाम समझ लिया है।

———

# हमारे देश की योजनायें क्या हो ?

योजना बनाने का ध्येय यह होता है कि किस-किस तरकीब द्वारा उद्देश्य की पूर्ति हो। हर एक देश में खास-खास इसका महत्त्व है। भारतवर्ष में ऐसी योजना बने जो इस देश के अनुकूल हा। उन्नति शील देश तभी हो सकता है जब उसकी योजना कामयाब हो जाती है। हमारे देश में तो योजना का ध्येय ऐसा होना चाहिए कि गरीबी, भुखमरी जल्दी से जल्दी चली जाय। स्वतंत्र भारत में आज भी अनेकों प्राणी घास के बीज के माड़ से जी रहे है।

दरिद्रता का अर्थ तो लोग कई ढंग से लगाते हैं, कोई कहते है कि खरीदने की शक्ति नहीं हो तो गरीबी कहेंगे। पर वास्तव में एक अमीर आदमी मोटर रखना चाहता है और खरीदने में असमर्थ है तो क्या उसको गरीब कहेंगे ? बनावटी उत्पन्न आवश्यकताओं की पूर्ति में असमर्थ व्यक्ति को गरीब नहीं कहेंगे। मनुष्य के लिए जरूरी चीजे अन्न, वस्त्र और आश्रय है। टेबुल और कुर्सी जीवन के मुख्य उपयोगी चीजो में नहीं आती है।

हिन्दुस्तान में न मालूम कितनी योजनायें बनी हैं पर किसी का लक्ष्य ऐसा नहीं है जो भारत के अनुकूल हो। आजकल की योजनाएँ जो बनी हैं वह दामोदर भैली प्रोजेक्ट, कोशी

प्रोजेक्ट आदि है जो खनिजों से अधिक सम्बन्ध रखते है। इस योजना का ध्येय है काफी बिजली शक्ति उत्पन्न करना। मालूम पडता है कि बिजली ही हमारे जीवन का मूल साधन है। पर हिन्दुस्तान में ऐसी योजना बनानी चाहिए जो हमारे पेट तअल्लुक रक्खे। हो सकता है कि दामोदर योजना, कोशी योजना से खेती का भी काम हो पर उसकी पूर्ति होने में काफी समय तथा काफी धन व्यय करना होगा। हमें योजना तो छोटी बनानी चाहिए कि जल्दी ही पूरी हो जाय। फल्गू याजना बनाने से किसानों को बहुत लाभ हो सकता है पर छोटी योजना पर ध्यान ही कौन ले जाता है ? खिजरसराय, घोसी, इस्लामपुर, एकंगरसराय, हिल्सा, मसौढी और फतुहा थाने की जमीन में धान की फसले कसरत से उपजा सकते है यदि फल्गु नदी का पानी बेकार न जाय। प्रबन्ध न होने के कारण पानी बहकर फतुहा के पास जाकर हमेशा बाढ ले आती है और ऊपरी भाग में पानी का अभाव रहता है। अतएव फल्गू योजना से बाढ की रुकावट तथा उपर्युक्त थानों में नहर का काम कर सकती है यदि उसमें छिलका देकर पानी रोक कर उसके भरे हुए नदी के मुंहों को खोल कर काम में लाया जाय। इसमें रुपये भी कम लगेंगे और दामोदर योजना से कम उपयोगी भी नही होगी यद्यपि इसमें विद्युत् का संचालन नही होगा। गरीब देश में लोगों के जेब को देखते हुए योजना बनाना ज्यादा अच्छा है। हमारे देश में टाटा और बिड़ला योजना के लिए

करोड़ों रुपये की जरुरत है और गरीबों की सैकड़ों एकड़ जमीन बर्बाद कर पूरी होगी। अतएव योजना सोच समझ कर बनाने से ज्यादे लाभ होगा जो देश के अनुकूल हो।

अफगानिस्तान में पक्की सड़के नही हैं। पहाडी देश होने के कारण रेल, तार का भी समुचित प्रबन्धन हीं है, इसलिए उसको पिछडा देश कहते है। पर भारत में इन सब चीजों की सुविधा रहने पर भी खाने पीने की कमी रहती है और इसको हम सभ्य देश कहते हैं। नेपाल भी अफगानिस्तान की तरह है। नेपाल और अफगानिस्तान में इफरात भोजन खाने के लिए है पर बदन तगडा होने के कारण खराब सड़क पर भी नही गिरते है। भारत में तमाम कीमती सड़के बनी हुई है पर भूखे पेट है और कीमती सड़को पर भी ढनमनाते रहते है। अब आप ही बताये कौन पिछड़ा देश है भारतवर्ष या अफगानिस्तान? यहाँ सरकार गरीबो से पैसा वसूल कर अफसरो तथा पूँजीपतियों के लिए पक्की सडक वनाती है पर गरीब लोग पक्की सडक के अगल-बगल में चलते है क्योंकि उनके पैरों का बचाव होता है और उनकी गाड़ियों के बैल के खुर भी जल्दी नही घिसते हैं। सरकार को इसके लिए अमीरों से टैक्स वसूल करना चाहिए था क्योंकि उनको मोटर के टायरो का बचाव होता है। किन्तु गरोब किसान से टैक्स वसूल किये जाते है, यद्यपि उनको जरा भी पक्की सडकों से लाभ नहीं है। सड़को के लिए योजना जल्दी ही बनानी चाहिए—क्याकि एक हजार का आबादीवाला गाँव कच्ची सड़को से मिला हुआ होना चाहिए।

———

# समाजवाद क्या चाहता है ?

"समाजवाद एक वर्ग सिद्धान्त है और इसका उद्देश्य है शोषक वर्गों को मिटाना और एक ऐसे समाज का निर्माण करना जिसमें सभी श्रमजीवी हों और वे राष्ट्र की सारी सम्पत्ति के मालिक और संचालक हों।"

—श्री जयप्रकाश नारायण

इस युग में कोई घास के दाने का माड़ खाकर जी रहा है और किसी को खाते-खाते अनपच हो रहा है। किसीका भूख से चला नहीं जाता और कोई अधिक खाकर बीमार ही रहता है। किसीको एक पैसे नहीं, कोई पैसे रखने के लिए सन्दूक खोजता फिरता है। समाजवाद इस असमानता को मिटाना चाहता है। वह चाहता है कि सारे कल कारखाने पर राष्ट्र का कब्जा रहे। पूँजीवाद में एक जगह धन इकट्ठा हो जाता है पर समाजवाद चाहता है कि सभी को बराबर-बराबर बाँट दे। यह संघर्ष, कलह, मारपीट से दूर रहकर सहयोग और शान्ति स्थापित करना चाहता है। समाजवाद का यही आधार स्तम्भ है। उत्पादन और विभाजन का उद्देश्य व्यक्तिगत लाभ न होकर समुदाय का लाभ होगा।

इसलिए जब तक पूँजीवाद रहेगा एक वर्ग दूसरे वर्ग का शोषण करता रहेगा। समाजवाद चाहता है कि कलकार-

खाने केवल धनिकों को धनिक बनाने के लिए नहीं हों बल्कि प्रत्येक प्राणी के लिए समान रूप से उपयोगी हों। इस तरह से नफे का बँटवारा इसके द्वारा होता है। समाजवाद का यह उद्देश्य है कि धनिकों के पास से सम्पत्ति व्यक्ति समुदाय के हाथ में चली जाय। पूँजोपतियों का आदर्श है 'सब कुछ अपने लिए।' पर समाजवाद का आदर्श है 'सब कुछ सब लोगों के लिए।' इसका ध्येय यही है कि अन्न-वस्त्र जरूर दें जो इसके मुहताज हों। वह तो समाज में दरिद्रता का अन्त कर देना चाहता है।

आज धन की असमानता के कारण एक छोटा है और दूसरा बड़ा। गरीब माथे पर चिराग लेकर अमीरों के महलों को उजाला करता है। भूख के कारण उसे इतना भी नहीं सूझता कि तेल कहाँ चू रहा है। यदि धन सभी के पास हो जाय तो गरीब, अमीर का सवाल ही नहीं उठेगा। ऊँच नीच का भेद भाव हट जायगा। आदर्श तो सचमुच समाजवाद का अच्छा है पर क्या इसके लिए वह कोशिश कर रहा है, या शासन भार ग्रहण करने का उपाय है? कल-कारखाने के रहने से क्या मजदूरों की स्थिति सुधर जायगी? सरकार के अधीन आने पर नौकरशाही पंजे में आ जायगा जिसका नतीजा तो और बुरा होगा। सिर्फ "किसान मजदूर का राज हो" नारा से काम नही चलेगा। मिलें, रेलें और कारखाने में हड़ताल कराने से काम नही चलेगा। यदि वे सचमुच समाज

वाद स्थापित करना चाहते है ता देहातों में आश्रम बना कर इसका प्रचार करें। केवल नारे के बहकावे में ले जाने से कुछ फायदा नहा होगा। यदि शासन— भार अपने कन्धे पर उठाना चाहते हैं तो दूसरी बात है। गाँधी जी क्या समाजवाद नहीं चाहते थे? गाँधी जी पक्के समाजवादी थे तभी तो चर्खे का प्रचार करना चाहा। कपड़े के मिलों में उत्पादन कर बंटवाने से तो अच्छा यही है कि मजदूर चर्खे पर काम कर अपने ही घर आमदनी बाँट ले।

समाजवादी लोग हमेशा से इसी उधेड़ बुन में है कि 'किस तरह से किसान मजदूर राज्य हो'। पर नारा लगाने से थोड़े ही पूँजीशाही या नौकरशाही राज्य खत्म होगा। इसके लिए कर्त्तव्यनिष्ठ होकर काम करना होगा। जबतक कल कारखानों की बनी चीजे इस्तेमाल करते रहेंगे मजदूर राज नही होगा। किसान मजदूर राज का अर्थ भी यह रहना चाहिए कि वे लोग अन्न, वस्त्र और आश्रय मे स्वतंत्र रहे। किसान मजदूर का केवल नारा लगाना और कुछ भी रचनात्मक काम न करना; यह तो स्वांग है। जिस तरह रात में कोई नाटक मे राजा बन जाता है और किसीको फाँसी देता है, किन्तु दिन में वह घास छिलता है उसी प्रकार समाजवाद की सभा में खूब हो-हल्ला होता है कि 'किसान मजदूर राज हो'। पर दूसरे दिन हल्ला करनेवाले भूल

जाते है कि हमें इसके लिए क्या करना चाहिए ?

समाजवाद कल कारखने का हिमायती है, फिर भी समाजवाद का मुख देखना चाहता है। यह तो मेरे विचार से असम्भव सा मालूम पड़ता है क्योंकि मशीन रहते समाजवाद सुचारु रूप से स्थापित नहीं होगा, अगर होगा भी तो नामके। मशीन में काम करनेवाला मनुष्य यंत्रवत् हो जाता है। बुद्धि विकाश का कुछ अवसर नहीं मिलता। मशीन तो खानेवाला है। जब काम नहीं रहेगा तो मनुष्य की क्या हालत होगी ? आज कल-कारखानों के मजदूरों की हालत शोचनीय है। उनके रहन-सहन का यथोचित प्रबन्ध नहीं। जो मिलता है सो शराब में खत्म हो जाता है। ताता नगर में यद्यपि शराब की दूकान नहीं है फिर भी वहाँ के मजदूर दूसरी जगहों से शराब मँगा कर पीते हैं। मेरे यहाँ के दो आदमी जो अपने सगे भाई थे, टाटा कम्पनी में काम करते थे पर शराब की बुरी लत पड़ने के कारण दोनों दुनिया से चल दिये। कारखानों में खुली हवा नहीं मिलती है इस लिए मनुष्य अधिक थक जाता है।

अगर समाजवाद कल कारखानों को रहते पैसे का उचित बँटवारा करेगा तो ऐसा होना नामुमकिन है। कल-कारखानों से हमारी दरिद्रता दूर नहीं होगी, वह मजूरों को इकट्ठा करेगा। ग्रामोद्योग ही ऐसी चीज है जो इस काम को कर सकता है क्योंकि बड़े पैमाने पर उत्पादन में दोष अनेको है। इसमें

ऊपर बताया जा चुका है कि बुद्धि विकास में बाधा होती है। बड़े पैमाने में मजूरों को प्रबन्ध करने का अवसर नहीं मिलता। ग्रामोद्योग की पुरानी प्रणाली में मजूर खुद अपना मालिक होता था। वह सोचता था कि वह कैसे उत्पन्नकरेगा। कभी औजारों को सुधारता, कभी काम करने के तरीकों को। मनोविज्ञान के पण्डितों का कहना है कि काम में विविधता होने स काम करने में मन लगता है और जी नही ऊबता, जैसे सूर्य को आदमी रोज देखता ह इसलिए उसकी ओर ध्यान भी नही देता पर सूर्य-ग्रहण की ओर तो जरूर चला जाता है। इसके अलावे बड़ कारखानों में कलात्मक ज्ञान नही होता है। ग्रामोद्योग में जुलाहा तरह-तरह का तर्ज तथा रँगों से नये-नये रूप निकालने की कोशिश करता है। यदि तर्ज और रँग पसन्द नही आया तो बदल भी देता है।

मशीन पर काम करनेवाला माटी की मूरत के समान बैठा रहता है और कुछ नही करता है। उसका काम केवल देख-रेख करना है। न वह रँगो की मिलावट ही जानता है न कलात्मक ज्ञान हासिल करता है। मिलों में व्यक्तित्व का विकास रुक जाता है और बुद्धि कुण्ठित हो जाती है। मिलो मे मनुष्यता का लोप हो जाता है। मानव समाज पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता। उत्पादन का ढेर लगा देता है। व्यक्तित्व नष्ट हो जाता है। पर इससे क्या फायदा? मनुष्य अपनी आत्मा को बलिदान कर सारे विश्व विभूति ही प्राप्त कर ले तो

उससे क्या लाभ ? बड़े पैमाने पर इतने काम करनेवाले हो जाते हैं कि उनमें भ्रातृभाव की स्थापना असम्भव है। छोटे गिरोह में एक दूसरे को आदमी जानते रहते हैं। इसलिए जबतक समाजवादी बड़े पैमाने पर उद्योग चलाने की कोशिश में रहेंगे समाजवाद इस देश से दूर रहेगा। इसलिए वैयक्तिक स्वतंत्रता के लिए केन्द्रीकरण को नाश कर विकेन्द्रीकरण करना होगा। इसीसे मानव अपने को उत्थान कर सकता है।

•हिन्दुस्तान में लगभग १२ करोड़ मजदूर हैं और सभी उद्योग धन्धों में तीन करोड़ अस्सी लाख लगे हैं। मशीन द्वारा बड़े पैमाने पर माल तैयार करके हम खेती पर आबादी के भार को कम नहीं कर सकेंगे। अगर बेकारों को काम नहीं मिलेगा तो बेकार हो जायँगे। इसलिए कच्चे माल की खपत गाँव में ही होना उचित है। तैयार माल में अधिक पैसा मिलता है। एक किसान जब वह अपने तिल का तेलहन बेच देता है तो एक मन में उसे ३० रुपये मिलते है और जब खरीददार सुगन्धित तेल तैयार कर 'हिमकल्याण आदि' नाम देकर बेचता है तो दो सौ रुपये लाभ उठाता है। उसी तरह जैसे ही कच्चा माल तैयार की शकल में आता है उसकी कीमत बढ़ जाती है। इसलिए किसानों को गाँव ही में, घर ही में यह काम कर लेना अच्छा होगा। इस तरह का जो धन का बँटवारा होगा, वैसा कोई 'वाद' दुनिया में नहीं करेगा।

# गाँव की ओर लौटो

"भगवान भला करें उस 'नंगे' गाँधी का जिसने हमें अपनी आत्मा को देखने की आँखे दीं—अब हम देख रहे है और समझने लगे हैं कि हमें गाँवों में जाना चाहिए, गाँवों को उठाना और जगाना चाहिए, उनकी गई हुई विद्या बुद्धि, धन कला, उद्योग, स्वास्थ्य, जीवन, बल, तेज, संगठन, सब उन्हें, वापस ला देने चाहिए। इसी प्रवृत्ति का नाम है ग्राम-आंदोलन और इसका लक्ष्य है ग्रामों की सर्वमुखी उन्नति।"

—हरिभाऊ उपाध्याय

रेले आयीं। शहर बस गये। ग्राम का संगठन टूट गया। इन्साफ का गला घोंटा गया। पैसे से इन्साफ सरकारी गगन चुम्बी अट्टालिकाओं में होने लगा। सरकारी आबकारी की दूकान से अशिक्षित जनता अपने को मस्त बनाने लगी। लड़ाइयाँ बढ़ गयीं। शहर जाने का जरिया मुकदमा हो गया। जिस तरह से आबकारी विभाग ने गाँव में जहर की दूकाने खोल दीं उसी तरह जहर की दूकाने हलवाइयों द्वारा शहरों में या देहातों में खोली गयीं। आजकल की मिठाइय जहर से कम नही हैं। नशीली पदार्थों से जल्दी आदमी बेकार हो जाता है और मिठाइयों से देर से। पर दोनों का प्रभाव शरीर पर बुरा ही पड़ता है। आजकल मिठाइयाँ, वनस्पति घी, सफेद

चीनी और मैदे से बनती है। चीनी तो सफेद जहर है। कचहरियों में, मेले-ठेले में अक्सर अनपच, हैजे की शिकायत सुनी जाती है और सैकड़ों व्यक्ति मृत्यु के गाल में भी चले जाते हैं। जिस देश में अनाज की इतनी कमी हो रही है उस देश के मिलों में मैदा बनने देना, देश के लिए हितकर नहीं है। मैदा में अनाज बहुत बर्बाद होता है।

जब तक वनस्पति घी का बनना नही रोका जायगा; किसानों की आर्थिक और शारीरिक हालत नहीं सुधरेगी। सिर्फ रंगने से काम नहीं चलेगा। अतः सरकार को वनस्पति घी बनना एकदम रोकवा देना चाहिए। कचहरियों को उठा दिया जाय तो बीमारी कम हो सकती है क्योंकि शहर में जाकर लोग खराब चीजें खा, पी लेते हैं। ग्राम-पंचायत कायम हर जगह होना बहुत जरूरी है। छोटी-छोटी लड़ाई के लिए शहरों में जाने से स्वास्थ्य तथा पैसा दोनों की बर्बादी होती है। किसान पशुओं को चरागाह से बेदखल कर, उसमें अनाज पैदा कर यही सब काम करता है। पैसा लोगों में बढ जाने का खास कारण यही है कि वह नाजायज तरीकों का अवलम्बन किए हुए है। नाजायज पैसे से बेडौल शरीर मोटाना से जायज पैसे से दुबला स्वच्छ रहना कहीं अच्छा है।

शहर हम ग्रामीणों को बहुत दिनों से लूट रहा है। हमारे खेतों को अनुर्वरा बना रहा है। पढ़े लिखे लोगों को अपने पास बुला रहा है। गाँव को श्रीहीन कर रहा है, इसलिए

शहरों को उजाडना ही होगा। आजकल गॉव शहरो के लिए कच्चा माल पैदा करता है पर अब नही करना चाहिए। गॉव का कच्चा माल भी गॉव ही मे खपत हो तभी गॉव का पैसा गॉव में रहेगा। शहर गॉव का शोषक है—किसान पोपक है। किसान के पनपने पर सब पनपते है और शहर के पनपने पर शेष सब विनशते है। तभी तो गॉधी जी गॉव की हालत देख कर चिल्ला उठे "हिन्दुस्तान के शहरों की समृद्धि देख कर हमलोगों को धोखे में नही आ जाना चाहिए। यह संपत्ति इंगलैएड या अमेरिका से नही आती है। यह गरीबो के खून से आती है। हिन्दुस्तान में ७ लाख गॉव हैं। इनमें से कुछ तो एकदम नेस्तनाबूद कर दिये गये। बंगाल, कर्नाटक तथा अन्य जगहों में जो लोग भुखमरी और महामारी से मरे हैं उनका किसी ने हिसाब नही रखा है। देहात के रहनेवालों की असली दिक्कतों का पता हम लोगों को सरकारी कागजात में नही मिलता है। गॉव में रहने के कारण माली हालत का मुझे ज्ञान है। मै आप लोगों को यह बता देना चाहता हूँ कि ऊपरवालों के बोझ से नीचेवाले पिसते जा रहे हैं। जरूरत इस बात की है कि उनकी पीठ पर से यह बोझ हटा दिया जाय।"

( हरिजन ३० जून १९४९ )

गॉव के मैट्रिक पास विद्यार्थी भी गॉवों में छुट्टियों के दिन अपना घर नहीं आना चाहते। पश्चिमी शिक्षा का रंग इतना

चढ गया है कि ग्रामीण से मिलने-जुलने में अपनी इज्जत में बट्टा लगना समझते है। पाश्चात्य शिक्षा-दीक्षा और उद्योग-वाद के कारण ग्राम की दशा अत्यन्त शोचनीय हो गयी है। इस समय भी गॉव में शान्ति, सादगी के लक्षण दिखलाई पड़ते हैं। पर शहरी लोग गॉव में जाकर गॉव में शहरी वातावरण फैला देते हैं तो दुर्गन्ध आने लगती है। शहर में सुख-भोग, विलासिता और आमोद-प्रमोद के अलावे क्या है ?

भाई ! क्या तुम भूल गये ? जिस दिन पटना विश्व विद्यालय के पदवीदान समारोह के अध्यक्ष-मंच पर से सर तेज बहादुर सप्रू ने वर्त्तमान शिक्षा पद्धति की बुराइयॉ दिखाते हुए स्पष्ट कहा था "यदि शिक्षा का अर्थ है भीख मॉगना तो इसे ठुकराकर इसकी धज्जियॉ उड़ा देनी चाहिए।" आज हम फिर उसी शिक्षा की ओर कदम बढ़ा रहे हैं और बेकारी में नाम दर्ज करवा रहे है। अगर नौकरी मिली तो वेतन से काम नही चलता और अपने ग्रामीण भाइयों की जेब टटोलते हैं। शिक्षा-विभाग के उच्च अधिकारी भी पुरानी शिक्षापद्धति की ओर ध्यान अधिक देते हैं और नई तालीम को सौत की दृष्टि से देखते हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि इसका क्रमिक विकास रुक गया जैसे कोई विशाल पेड अपने पासवाले पेड को पनपने नहीं देता। मैं यह भी जानता हूॅ कि वेसिक में काम करनेवाले अधिकतर दिखावटी हो गये है और शिक्षा को खर्चीला बना दिया है। सुधार कर इसको

रास्ते पर लाने से देश के लिए यह सर्वोत्तम शिक्षा-पद्धति हो सकती है। स्वावलम्बी बन। का स्वप्न पूरा नहीं होगा क्योंकि खर्चे का हिसाब-किताब बहुत लम्बा चौड़ा है और रुपये उत्पादक चीजों में खर्च न होकर अन्ट-सन्ट मे खर्च होता है। दूसरी बात यह है कि बच्चों की कोमल अगुलियाँ मिलो के पहिये से मुकाबला नहीं करेगी। इसके लिए बिहार सरकार को एक समय निश्चित कर लेना चाहिये और जनता को खादी बनाने को कह देना चाहिए कि इसके बाद कपड़ा नहीं मिलेगा। सरकार जनता तथा छात्र द्वारा बचे कपड़े को खरीद ले क्योंकि सब कपड़े स्कूल या गॉव ही में न खप सकेगा।

मेरे देश के नौजवान! भावी पीढ़ी के उन्नायक!! शहर में सिर्फ पढो और पढ़ने के बाद सरकारी दफ्तरों में नौकरी के लिए दरवाजे मत खटखटाओ। अगर सरकार तुम्हे नौकरी दे तो कहो कि हमें गॉव ही में दो क्योंकि मातृ-भूमि का उद्धार करना है। अंग्रेज अच्छे दिमागवालों को अच्छी-अच्छी नौकरियों में भर देते थे और कम बुद्धिवाले ही गॉव में रह जाते थे। अब तो तीव्र बुद्धिवालों को गॉव की ओर लौटना चाहिए और ग्रामोत्थान के कार्य में लग जाना चाहिए। तुमने स्वदेशी राज्य दिलाया और स्वराज्य दिलाना रह गया है। पश्चिमी शिक्षा-दीक्षा को छोड़ो और गाँवों मे सादगी और शान्ति का सन्देश लाओ। आज गॉव का वातावरण विषाक्त हो गया है। देखो भाई! तुम्हारे ही सामने ब्रह्मदेव भाई

का एक लड़का और उसकी माँ की लाश पड़ी है और उसके पास कोई नही जाता। फेकनेवाला तक नहीं मिला। माँझी द्वारा गंगा की ओर रुपये के बल पर जा रही है और पीछे तुम उसका तमाशा देखते जा रहे हो। गाँव में ऐसी अनहोनी बात देख कर मेरा कलेजा मुँह को आता है। चन्द रोज पहले की बात है कि तुम्हारे ही गाँव में धान की फसल तालाब मे पानी रहते हुए मारी गयी। इस तरह ६ अक्टूबर १९४९ मे ७५ रुपये के लिए एक भाई ने २०० मन धान खत्म कर दिया। मै मानता हूँ कि सिंघारा से एक आदमी को फायदा हुआ पर अनेकों किसानों की हानि हुई।

स्कूल के बगल में जाकर देखो। हरिजन टोली मे बुद्धन मुशहर आदि एक कोठरी में अपने परिबार मे ९ प्राणी तथा एक बकरी के साथ जिन्दगी गुजार रहा है। उसके बच्चे को कपड़े भी तन ढकने के लिए नहीं। एक कोठरी म रहने के कारण उसका भाई सदा बीमार ही रहता है और उसकी आवादी भी बढ रही है। गाँव में जाकर तुम्हें स्वास्थ्य के नियमों को बताना पड़ेगा और ग्रामवासियों से मिलकर प्रेम बढ़ाना होगा। जिस दिन वे समझेंगे कि हमें 'बहुजनहिताय, बहुजन सुखाय' जीना है तो तुम्हारा ग्राम-आन्दोलन सफल होगा।

मैं समझता हूँ कि तुम्हारे जाने ही से वहाँ की रंगत बदल जायगी। पर जाने के पहले तुम्हें शहरी ठाठ को छोड़ना पड़ेगा

नही तो गॉववाले तुम्हें रंगे सियार समझ कर भड़केंगे। दूसरों के दिल को जीतने के लिए उन्हीं के समान वेष, भूषा बनाना पड़ेगा और उनकी बोली में बोलना होगा। अगर उनके कामों में सहयोग दिया तो उनके दिल में बस जाओगे।

दुनिया में काम करनेवाले की कमी है। अगर नीचे लिखे कामों को दिल लगा कर किया गया तो गॉव की सूरत एक दम बदल जायगी और देवता भी यहॉ आने के लिये तरसने लगेंगे पर इसमें सच्चे कार्यकर्त्ता की जरूरत है।

(१) कृषि सुधार (२) आवपाशी सुधार (३) पशु सुधार (४) बुनियादी शिक्षा प्रचार (५) ग्राम-रक्षा-दल का संगठन (६) ग्राम पंचायत स्थापित कर ग्राम शासन चलाना (७) ग्रामोद्योग (८) मल्टी परपस सोसाइटी (सवमुखी समिति) (९) समाचार एवं सूचना प्रबन्ध (१०) ग्राम पुस्तकालय (११) ग्राम-सफाई (कम्पोस्ट खाद बनाना) (१२) औषधि और स्वास्थ्य (१३) मद्य निषेध (१४) कुरीति निवारण (श्राद्ध और विवाह में अधिक खर्च, गंदे स्वांग तमाशे, पर्व त्योहार में गाली बकना) (१५) भीखमंगो को उत्पादक कामों में लगाना (१६) प्रौढ़ शिक्षण (१७) स्त्री शिक्षा।

हमें सोचना चाहिए कि अन्न, वस्त्र और पीने के पानी की कमी, अशिक्षा, मलेरिया, गन्दगी और बीमारियॉ ही ग्राम्य जीवन के नाश के लक्षण हैं और इसके लिये हमें अपने पैरों

पर खड़ा होना पड़ेगा। हर बात के लिए सरकार की ओर देखना खराब आदत है और हमारी स्वतंत्रता छीनी जाती है। स्वराज्य का मतलब है कि किसी चीज के लिये हम मुहताज न रहें। अगर उपर्युक्त बातों पर हमारे देश के नौ निहाल ध्यान दें तो गॉव की श्री लौट जायगी और नन्दन विपिन का दृश्य गॉव में फिर से दृष्टिगोचर होने लगेगा।

———

# छात्र क्या करें ?

"समाज को शक्तिशाली बनाने के लिए जनता का शारीरिक, भौतिक और नैतिक उत्थान आवश्यक है। इस प्रकार के रचनात्मक कार्य भले ही जोशीले और रोमांचकारी न हो, किन्तु इसमें सन्देह नही कि उनसे साधारण जनता को जीवन, सुख और समृद्धि प्राप्त होगी। इसमें दिलचस्पी रखनेवाले छात्रों को चाहिए कि वे आपस में मिलकर इसे कार्यान्वित करने पर विचार करे। इस दिशा में कार्य शुरू होने पर उनका आगे का मार्ग स्वतः प्रशस्त होता जायगा। इससे उन्हें इतना अधिक अनुभव और आनन्द प्राप्त होगा जितना कि वे अपनी पाठ्य-पुस्तकों से कभी आशा नही कर सकते।"

—जे० सी० कुमारप्पा

इस समय देश की आर्थिक स्थिति इतनी बुरी हो गयी है कि सरकार किसी भी सुधार को सुचारु रूपेण आगे नही बढा सकती है। हिन्दुस्तान के अधिकतर निवासी खेतिहर हो गये है। उनको दिन भर काम करने के बाद भी रात को दो रोटियाँ बड़ी मुश्किल से मिल जाती है। ऐसे समय में देश की सामाजिक, आर्थिक दशा को सुधारने मे छात्र ही अग्रसर हो सकते है। विद्यार्थियों ने राजनैतिक आजादी दिला दी है। अब उन्हें सामाजिक तथा आर्थिक स्वतन्त्रता के लिए कमर कसना

है। निराश नेताओं के रचनात्मक कार्य करने से देश का कभी भी कल्याण नही होगा। रचनात्मक कार्य-अहिंसात्मक संघष का दूसरा मोर्चा है।

इसलिए विद्यार्थियों को उन झोपडियो की ओर भी जाना चाहिए जिसमें राष्ट्र की आत्मा रहती है। जबतक करोडों झोपडियों की दशा नहीं सुधरेगी, तबतक देश में शान्ति नहीं। छात्रों को उनसे सम्पर्क स्थापित कर उनके कामों में मदद करनी चाहिए। मै यह समझता हूँ कि उनके पास समय, साधन और अनुभव की कमी है। फिर भी गर्मी और पूजा की लम्बी छुट्टियो में जाकर ग्राम-सुधार का काम छात्र कर सकते है। उनको भी गॉव में जाकर कार्यकर्त्ताओं को ठीक करना होगा। जब वे गॉव को छोड़कर पढने के लिए शहर की ओर जायँगे तब उनके कामों को कार्य-कर्त्ता प्रतिपादन करते रहेंगे। गॉव की हालत एकदम शोचनीय हो गयी है—गॉव से ही शहरों का जीवन निर्वाह होता है, किन्तु उन्हें इसका कुछ भी प्रतिफल शहरवालों से नही मिलता।

पुराने जमाने के आत्मनिर्भर गॉव अब हर छोटी छोटी वस्तुओं के लिए शहरों को ओर टकटकी लगाये रहते हैं। अतः छात्रों को गॉव को स्वावलम्बी बनाने के लिए भगीरथ प्रयत्न करना चाहिए। गॉव का पैसा गॉव ही में रहे उन्हें यह भी ध्यान रहना चाहिए। यदि वे शहर में रहते है तो जूता, कपड़ा गॉव ही का हो तो अत्युत्तम है। ऐसा नहीं करेंगे तो

गॉव में आने पर ग्रामीण जनता उनको ढोंगी कहेगी।

छात्रों को गॉव में जत्था बनाकर जाना चाहिए। जत्थे मे डाक्टरी ज्ञानवाले व्यक्ति हों तो और अच्छा है। छात्रो को संगीत, दस्तकारी, कृषि और ग्रामोद्योग के सम्बन्ध में जानकारी रहे तो वे गॉव का जल्दी ही पुनर्निर्माण कर लेगे। गॉव मे विशेष इन्ही बातों पर ध्यान देना चाहिए।

(१) स्वच्छता, स्वास्थ्य और भोजन।
(२) बीमारियों और संक्रामक रोगों से रक्षा के उपाय।
(३) साक्षरता और प्रौढ शिक्षा।
(४) आर्थिक चेतना।
(५) राष्ट्रीय चेतना।
(६) सांस्कृतिक कार्य तथा मनोरंजन।
(७) ग्रामोद्योग।
(८) खाद-निर्माण की शिक्षा।
(९) नवयुवक संघटन।

इसके अलावे भी गॉव में अन्य आवश्यक कार्यों को शुरू किया जा सकता है। यह कार्य-क्रम दलगत राजनीति से बिल्कुल स्वतंत्र होना चाहिए। देहातों से अन्ध-विश्वास को दूर करना होगा। वे चेचक को शीतला माई कहकर कोई अच्छा उपचार नही करते। प्रौढों को साक्षर बनाने के लिए रात्रि पाठशालाएँ खोलनी चाहिए जिसमें दिन भर के किसान मजदूर, शिल्पकार भी उसमें सम्मिलित हो सके। भूमि

सम्बन्धी सुधार, स्वास्थ्य सम्बन्धी नियम तथा सामाजिक कुरीतियों पर वार्तालाप करना चाहिए। आर्थिक चेतना में उन्हें शोषण करनेवाले जमींदार, बनिये, और पुलिस से सचेष्ट होने के लिए कहना चाहिए।

राष्ट्रीयता के युग में प्राचीन गोरव, विदेशियों द्वारा उनके शोषण, स्वातंत्र्य-आन्दोलन और राष्ट्रीय गीतों से अवगत कराना पड़ेगा। प्राचीन काल मे गॉव के भट्ट अपने पूर्वजों के गुण गान करते और पुरोहित पौराणिक कथाएँ सुनाते थे पर अब ये परम्परायें लुप्त हो गयीं। अतः उस संस्कृति को लाना चाहिए और ग्राम्य गीत का जोर से प्रचार करना चाहिए। उनलोगा को दिन भर की थकावट इससे दूर हो जायगी। अतः भजन मण्डलो का संघटन, नाटक का आयोजन, वाचनालय और पुस्तकालय को व्यवस्था जरूर होनी चाहिए। ग्राम-सहकारी समितियों का संघटन होना भी आवश्यक है। छात्रो को एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करना है जिससे शहरवालों के शोषण से गॉव बच जाय।

प्रौढ शिक्षा के बिना देश का उत्थान होना नामुमकिन है अतः छात्रो को इस पर खूब ध्यान रखना चाहिए। साक्षरता ही शिक्षा नही है और न निरक्षरता ही बिल्कुल अज्ञानता। साक्षरता ज्ञान प्राप्त करने की एक कुंजी है और इससे मनुष्य सुगमता पूर्वक ज्ञान प्राप्त कर लेता है। प्रौढो की शिक्षा जीव-

नोपयोगी हो तो और उत्तम है। अज्ञानता से गरीबी आती है और ज्ञानार्जन की शक्ति मारी जाती है। उम्र के मोताबिक कई श्रेणियों में प्रौढों को विभक्त कर लेना उत्तम है। किशोर(१४ वर्ष से २० वर्ष तक) युवक (२१ वर्ष से ३५ वर्ष तक) और वयस्क (३५ वर्ष से अधिक) दीवालो पर आदर्श लेख लिख देना चाहिए जिससे वे लोग अच्छी-अच्छी बातो को शीघ्र ही सीख लें—'प्रत्येक शिक्षित एक अपढ व्यक्ति को साक्षर बनावे' यही नारा होना चाहिए।

कार्य कर्त्रियाँ प्रौढाओं को साक्षर बनावे। इन को स्त्रियोचित विषयों की शिक्षा मिलनी चाहिए। महीने में दो को अवश्य वे साक्षर बनावें। प्रौढ़ शिक्षा में साक्षरता, वर्त्तमान ताजी राजनैतिक घटनाओं पर बातचीत, अध्ययन गोष्ठी तथा स्वास्थ्य-विज्ञान, गृह प्रबन्ध, पैतृक उत्तरदायित्व आदि विषयो पर सारगर्भित भाषण शामिल होना चाहिये। मुकदमेबाजी, शराबखोरी की आदतों को छुड़ाने से देहातियों का बहुत कल्याण होगा और गाँव की माली हालत अच्छी हो जायगी। गाँव में सफाई, स्वास्थ्य, जल और रोशनी का प्रबन्ध, पैखाने, नालियों का इन्तजाम हो जाय तो बहुत सी बीमारीयां यों ही भाग जायँगी।

# रुपये का राज्य

प्रत्येक उद्योगी मनुष्य को आजीविका पाने का अधिकार है, मगर धनोपार्जन का अधिकार किसी को नही। सच कहें तो धनोपाजन स्तेय है, चोरी है। जो आजीविका से अधिक धन लेता है, वह जान मे हो या अनजान में, दूसरों की आजीविका छीनता है।"

—म० गाँधी

संसार के सभी प्राणी अपने समाज में रहना चाहते है। चीटी को भी हम जत्थे ही में आते जाते देखते हैं। पक्षीगण भी झुण्ड में रहते हैं—मुर्गाबी, बगुला, कबूतर भी अधिकतर निर्मल आकाश में झुण्ड ही में उड़ते पाये जाते हैं। सबमें शक्ति और बुद्धि एक समान नहीं होती है। अतएव सभी जीवों में शक्तिशाली और बुद्धिमान् आदरणीय हो जाता है और समाज का मुखिया बन जाता है।

मनुष्य में भी इसी प्रकार की बात पायी जाती है, पर अन्य प्राणियों से कुछ भिन्न होता है। मनुष्य समाज में अपनी सेवा द्वारा आदरणीय हो जाता है। किन्तु आज दुनिया बदल गयी है और मनुष्य अपनी बुद्धि और बल से एक दूसरे को अपनी मुट्ठी मे रखने की चेष्टा करता है और उसके अर्जित धन का हड़पने की ताक मे लगा रहता है। हमारे समाज मे

मुखिया, मंडल, पटेल, चौधरी, सरदार और राजा आदि नामों से प्रसिद्ध हुआ। इसी तरह जब राजा शब्द का निर्माण हुआ तो प्रजा शब्द भी उसके साथ आया। पहले जमाने में समय समय पर साधु संतो का प्रादुर्भाव हुआ करता था जो राजाओं के अत्याचारो को रोकते थे। नन्द-वंश का नाश करने वाले चाणक्य का होना, इस बात को प्रमाणित करता है। साधु-संत भी पहले बड़े घराने के लोग होते थे। उस समय में प्रजा-वर्ग से भी संत निकले थे। जब राजा का अत्याचार बढ जाता था तो प्रजा उसकी सत्ता को मिटाने की चेष्टा करती थी।

प्राचीन काल में बहुत से प्रजातंत्रों का नाम सुनाने में आता है। उस समय में सब प्रजा मिलकर राय देती थी कि अमुक व्यक्ति मुखिया बनने योग्य है। मुखिया आदमी वही हो सकता था जिसमें योग्यता, ईमानदारी और नेकनीयती होती थी। इस युग में सोना, चांदी, ताम्बा ने मुखिया बनाने का स्थान ले लिया है। प्राचीन काल में सिक्का एक विनिमय का साधन था, इसलिए इसकी सृष्टि की गयी। परन्तु अंग्रेजो ने भारतीय लोगों को चूसने के लिए इसका स्थान दिया। अब यह लेन-देन का ही साधन नहीं रहा, उसका खास मकसद लूटना, खसोटना है। सोना चांदी के स्थान पर नोट, चेक, और हुंडी भी चल रही है और ये सब भी धन में शुमार होने लगे है। वास्तव में यह धन कहलाने लायक वस्तु नहीं है—न इसको पहन सकते

हैं—न खा सकते हैं—न उससे दीवाल या छप्पर ही बना सकते हैं, फिर भी जिसके पास सिक्के मौजूद हैं वही धनी है। चाहे वह पंगु दुष्ट, बेईमान और मूर्ख क्यों न हो ? जिसके पास धन है वही आदरणीय होता है—'द्रव्य तो सर्व'। इस तरह अनेकों कहावते बन गई है 'जर है तो नर है नही तो पूरा खर ( गदहा ) है'।

आज की दुनिया में सिक्का के समान बलवान् वस्तु खोजने पर भी नहीं मिलती। ब्राह्मण-बोल-बाला काल में एक साधु के सामने राजा सिहासन छोड़ देते थे। पर दुनिया एकदम बदल गयी और सिक्का-संसार में उत्पात का कारण हो गया। अब मनुष्य को मनुष्य नहीं रहने दिया—बाप-बेटे में, पति-पत्नी में, भाई-भाई में भी मतभेद इसी के कारण होता है।

आपसी लड़ाई खाने की कमी के कारण नहीं होती है। जब घर में धन हो गया और खाने पीने में दो रंग होने लगा तब एक आदमी दूसरे आदमी से अलग हो जाना चाहता है। अतः गरीबी आपस में मन-मुटाव का कारण नही होती है। इसका मुख्य कारण है प्रचलित मुद्रा प्रणाली। इतने मुकदमे कचहरी में दायर होते हैं उसका स्पष्ट कारण यही है। इसने मनुष्य और मनुष्य के बीच में गहरी खाई खोद दी है। इसने गरीब और अमीर दो जातियों का निर्माण कर दिया है, एक को तख्त पर बैठा दिया है और दूसरे को गहरी खाई में ढकेल दिया है। आज सत्ता मनुष्य के हाथ में नहीं—सिक्के के

हाथ में है। इस जन-तंत्र से भारत को कुछ भी लाभ नही होगा क्योंकि जनता इतनी अशिक्षित है कि पैसे के लोभ में अपनी राय किसको दे, नही ठीक कर पाती है। जबतक पैसे का बोल बाला रहेगा, पैसे से मत खरीदने का अधिकार रहेगा, बोगस-प्रथा रहेगी, तब तक तो राम राज्य भारत में नही आवेगा। सच्चा स्वराज्य तभी हो सकता है जब मनुष्य में नैतिक बल आवेगा और अन्याय द्वारा अपनी सुख-सुविधा बटोरने की कोशिश नही करेगा। सिर्फ राष्ट्रपति या लोकतत्व के अध्यक्ष अपने देश के व्यक्ति हो जाने से लोक-तंत्र नहीं कहा जायगा। असल में राज्य में सिक्का के महत्त्व को घटाना है। घटाने के भी अनेक तरीके है—मुद्रा में एक आने रुपये प्रति वर्ष उसकी कीमत कम कर दी जाय। इस तरह से कोई आदमी मुद्रा संचय करना नही चाहेगा। जबतक सिक्के की प्रतिष्ठा बनी रहेगी तबतक स्वराज्य कोसों दूर रहेगा। भारत में जिस दिन मनुष्य, मनुष्य को सोना चांदी और तांबा से ऊँचा स्थान देगा उसी दिन स्वराज्य का प्रभात होगा। वास्तविक सम्पत्ति सोना और चांदी नही है बल्कि स्वयं मनुष्य है। किसी देश या समाज की साम्पत्तिक मूल्यांकन निर्जीव पदार्थ सोना चांदी से करना भूल है। नीतिमान्, न्याय परायण और लोक सेवक ही किसी समाज को वास्तविक सम्पत्ति है। जिस समय दुनिया में नीतिमान् और न्याय परायण एवं परोपकारी उद्योगपति और व्यापारी रहेंगे

तो पूंजीपति को नाश होने कोई नही कहेगा। लोग समझेंगे कि उनका धन जन-शोषक नही है बल्कि जन-पोषक है।

इसलिए आपने धन की अधिष्ठात्री देवी का जो स्थान दे रक्खा है, उसे वहाँ से उतार कर नीचे कर दीजिये और उसके बदले घर-घर में देश के अनुकूल सूत का टकसाल चलाइये तभी भारत का कल्याण शीघ्र होगा।

# पैसा आदमी को रंक बनाता है

" पैसा आदमी को रंक बना देता है। इसके जोड़ की दूसरी चीज तो दुनिया में विषय वासना है। ये दोनों जहरीले है। इनका जहर साँप के जहर से भी घातक है। क्योंकि साँप काटता है तो शरीर लेकर ही छोड़ देता है, लेकिन जब पैसे और विषय का जहर चढता है, तब देह, जीव, मन सब देकर भी पिण्ड नहीं छोड़ता। "

—महात्मा गाँधी

मनुष्य के भौतिक साधन जितने ज्यादे होंगे आत्म-विकास मे बाधक होगे। ईसा ने कहा कि सूई के छेद से ऊँट भले ही पार हो जाय पर ईश्वर के साम्राज्य में धनी प्रवेश नही कर सकता है। एक जमाना था कि लेन-देन में एक चीज दूसरी चीज से बदल दी जाती था। यह प्रथा मुसलमानी शासन-काल तक कुछ-कुछ चलती रही। लेकिन अंग्रेजो की नीयत तो लूट खसोट की थी। वह मालगुजारी मे रुपये के बदले अनाज नही लेते थे। मुद्रा प्रसार की बदौलत प्रजाओ से ज्यादा रकम वसूल करते थे जिससे प्रजाओ मे असंतोष भी जाता रहा।

द्रव्य पर ज्यादा जोर दिया जाना ही अकाल का कारण हो गया है। फसल के अवसर पर अनेकों किसान अपना

अनाज बेच देते हैं और बीज बोने के समय मंहगा सड़ा बीज लाकर खेतो में डालते है जिससे पौधे रोगी और अनुत्पादक होते है। यद्यपि लेन-देन में रुपये का काम बहुत आगे बढ गया है फिर भी यह सही तरीका नहीं है। रुपये खाद्य पदार्थ के समान बरबाद होनेवाली चीज नहीं है। कोई फल विक्रेता सुबह में सात आने दर्जन केला बेचता है और वही केला शाम को तीन आने दर्जन बेचता है; इसलिए रुपये का काम सिर्फ लूटना खसोटना रह गया है। अदूरदर्शी किसान अन्न को बेच कर मुद्रा को रखने लगता है। रुपया तो मछली फँसाने के लिए चारे का काम करता है। जिस तरह से चीनी का मिल-मालिक ईख को अधिक खेती के लिए ईख का दाम बढा देता है और किसान रुपये के लोभ में धान, गेहूँ पैदा करना छोड़ देता है, फिर ईख की कीमत कम कर दी जाती है। इस तरह का झंझट किसानो और मिलवालों के साथ बहुत चलता रहता है कि ईख का दाम बढ़े। ऐसी हालत मे सरकार बीच में आकर ईख की कीमत तय करती है।

मुद्रा का अर्थ शास्त्र तो सचमुच देहाती और अशिक्षित किसानों के लिए जाल का काम करता है लड़ाई के समय मुद्रा-स्फीर्ति के कारण किसानो के घर से गोधन कसाईखाने मे चले गये। कीमती अन्न भी खरीदकर सरकार ने गोदाम में सड़ा दिया। कितने रुपये का प्रसार गत वर्षों मे हुआ था इसके लिए मेरी 'उजरा गाँव' नामक पुस्तक का अध्ययन करे।

चोरबाजारी का मुख्य कारण यही है, बहुत लोगों ने छोआ काण्ड, साठी काण्ड की चर्चा सुनी होगी। रुपये के कारण बंगाल में ३५ लाख व्यक्ति दुनिया से चल बसे और अन्न यहाँ से दूसरे देशों में जाता रहा।

एक जगह से दूसरी जगह कच्चा माल जाने का कारण यही है। आज हिन्दुस्तान की गरीबी का मुख्य कारण यही है। कच्चा चमडा, तेलहन, रूई को इस तरह से बाहर जाने का परिणाम यही हुआ कि अनेकों गाँव बेजान हो गये। लोगों को कच्चा माल बेचकर तैयार माल खरीदने की सामर्थ्य ही न रही। सरकार को कच्चा माल की बिक्री पर रोक लगा देनी चाहिए थी पर न लगाई। विनोबा जी कहते है कि रुपये तो लुच्चा, लफंगा है। रांची में चावल रुपये का तीन सेर बिकता है तो पटने में दो सेर को मिलता है। दाम में इतना फर्क होने का मतलब ही है कि रुपये में सचाई नहीं है। मनुष्य की स्थिति के अनुसार भी रुपये की कीमत बढ़ती घटती है। एक रुपया गरीबों के लिए ४-५ दिन का भोजन दिलायेगा पर अमीरों को दो पैकेट सिगरेट होगा। महात्माजी तो सूत को विनिमय का माध्यम बनाना चाहते थे पर अब उनका पथगामी रहा कौन ?

मुद्रा अर्थ-नीति के कारण हमारी दृष्टि पर पर्दा पड गया है और जिस चीज में लाभ देखते हैं उसीको करते है। अगर बारटर ( Barter system ) न पसन्द पड़े तो हर एक

गॉव में मल्टी परपस को-अपरेटिभ सोसाइटी कायम करे। वह गॉव की सारी चीजों को ले लेगी। वही आवश्यकतानुसार इधर उधर कमीवाले स्थानो में भेजेगी और गॉव की जरूरतों को पूरा करेगी। किसान अपने गल्ले को वही भेज दे और जरूरत के अनुसार उसपर कुछ रुपये भी ले। सरकार भी अपनी आय गल्ले के रूप में दे। किसान अपनी जरूरत भर रख कर सहयोग समिति में अपना अन्न जमा कर दे। सहयोग समिति द्वारा मेलदार भोजन का भी प्रबन्ध हो। धनी हाना धन पर नहीं, मन पर निर्भर है। यह असभ्य देश तो नहीं है यहाँ ब्राह्मण-सभ्यता का बोलबाला है और रुपये पर निर्भर नही करता है। सेवा धर्म से मानव के दिल पर कब्जा करना उत्तम है न कि रुपये के जोर से।

# लोकतंत्र केवल नाम का न हो !

"जनता के कल्याण के लिए जनता के द्वारा जनता का शासन ही सबसे सुन्दर शासन है।"

—इब्राहम लिंकन

ये सब राजनैतिक पहलू हैं। सच्चा लोक-तंत्र कुछ और ही है। असल लोक-तंत्र में प्रत्येक व्यक्ति के लिए विकास का स्थान है। कमजोर भी शहजोर से नही दबाये जाते हैं और न उससे शोषित होते है। जब एक आदमी अपने हाथ में शासन की बागडोर ले लेता है और मन माना करता है तो उसी समय लोक-तंत्र का स्थान हट जाता है। पहले जमाने में सामाजिक कानूनों द्वारा सब लोग एक दूसरे से बँधे हुए थे इसलिए सच्चा लोक-तंत्र सभी जगह व्याप्त था। राजा पुलिस और विधान बनाने का काम करते थे। सारे शासन का भार ग्राम पंचायत में सीमित था। उस समय कोई ग्राम द्रोही नहीं होता था और इन्साफ ठीक-ठीक होता था।

सम्मिलित परिवार से यही लाभ था कि एक कमजोर का भी गुजर चल जाता था। आज के समान जीवन बीमा न होने पर भी जीवन भार दुस्सह नहीं था। प्राचीन काल में भारत में सभ्य लोक-तन्त्र था। पर जबसे व्यक्तिगत स्वार्थ आ गया है, इसका लोप हो गया है। ज्योंही समानता, भ्रातृत्व

भाव की कमी होने लगी और शासन भार ऊँच वर्णों के लोगों ने अपने हाथों मे ले लिया, भारत विदेशियो के हाथ में चला गया। विकेन्द्रीकरण ही सच्चा लोक-तन्त्र का आधार है। उसके उत्पादन में हर एक आदमी मालिक रहता है। केन्द्रीकरण लोक-तंत्र का कब्र है, इसलिए आदर्श लोक-तंत्र में हर एक व्यक्ति का ख्याल रक्खा जाता है।

प्रकृति के नियमो के विरुद्ध चलने से प्राणी दुःख झेलता है और स्वस्थ कभी भी नही रहता है। हर समय संकट का सामना करता है। उसी प्रकार मानवी नियमों के पालन नहीं करने स दुःख भोगता रहता है। कानून के उल्लंघन करने से जेल की नौबत आती है। अतएव समाज के प्रति हर एक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि अपनी जिम्मेवारी को निबाहे और दूसरे के सुख-दुःख की चिन्ता करे। हम मानते है कि भारत के लिए एक सुन्दर विधान बना ह पर अगर हम दिल खोलकर विधान को पालन नही करते हैं तो सुन्दर ही रह कर क्या हुआ ? इसलिए प्रत्येक नागरिक का दृढ विचार होना चाहिए कि उसके पालन करने में त्रुटि न हो। अनुशासन ही एक ऐसी चीज है जिससे राष्ट्र की प्रगति हो सकती है। अलग-अलग पार्टी बन्दी करने से राष्ट्र सबल नही होगा। इसके लि ए हमें सर्व-प्रथम सुयोग्य नागरिक बनना चाहिए। सुसंस्कृत और सुसभ्य समाज ही लोकतंत्र का सच्चा उपयोग कर सकता है।

जैसे मनुष्य की संस्कृति होगी वैसे ही उसके विचार होंगे। संस्कृति का निर्माण एक रोज में नहीं होता। इसके लिए काफी समय चाहिए। उसकी रक्षा करके मानव का जीवन सुन्दर और सफल बनता है। सभ्य राष्ट्र ही स्वतन्त्र रह सकता है। हम भी दासता की दलदल भूमि से निकल कर स्वतन्त्रता की शुद्ध वायु में गहरी सास, ले रहे है। राजनैतिक स्वतंत्रता मिल गयी है। फिर भी हमें सामाजिक तथा आर्थिक स्वतंत्रता स्थापित करनी है। यद्यपि अन्य देशों में भिन्न भिन्न प्रकार की संस्कृति पायी जाती है फिर भी बहुत सी बातों मे हम एक दूसरे से मिलते है। हमारी संस्कृति इतनी अच्छी थी कि विदेशी यात्री देखकर मुग्ध रह गये थे।

आज हमारे देश का शासन हमारे देशवासियो द्वारा हो रहा है। आज हमारा ध्येय है कि हम एक दूसरे को आजाद देखे। जबतक हम में लोभ, लालच रहेगा दूसरे की भलाई हमसे नहीं होगी। इसके लिए हमें सब कुछ त्याग करना पडेगा। गरीबों की सेवा के लिए राज्य, स्वर्ग, मोक्ष भी छोडना पड़ेगा, तभी सच्चे लोक-तंत्र की स्थापना हो सकती है। आज देश में भुखमरी, अशिक्षा, बेकारी चारों और फैली हुई है। धनिक वर्ग अपने को धनवान् बनाने की चिन्ता में व्यस्त है। अतएव समाज के हरएक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह एक दूसरे से घृणा, इर्ष्या या द्वेष नहीं करे और परस्पर मिल जुल कर रहे, तभी प्रेम का बन्धन मजबूत होगा।

शूद्र ही हमारे समाज का आधार है। हमारी संस्कृति के एक मात्र संरक्षक हरिजन हैं जिनको लोग पददलित समझते है। यह रोग बहुत पुराना नहीं है जिस समय बौद्धधर्म और हिन्दूधर्म मे श्रेष्ठता के लिए विवाद चल रहा था, उस समय शंकराचार्य यह दलील पेश करते थे कि हमारा धर्म सर्वोत्तम है क्योंकि मै ऊँच नीच जाति को अलग अलग स्थान देता हूँ। अतः बौद्ध धर्म के असफल होने पर यह विभेद समाज में रह गया। हम ऊँचे है इसलिए कि हम गदा करते है और वह नीच है इसलिए कि वह साफ करता है। गंगा माता भी ना भारत के पापा को धाती है फिर भी क्यो उसे नीच नही समझते है ? मेहतर को बड़ा स्थान मिलना चाहिए क्योंकि वह सफाई कर हमें जीने के योग्य स्थान प्रदान करता है। हम हरिजनो को तुच्छ दृष्टि से देखते है और यही कारण है कि वे समाज में शिक्षा और अधिकार स बचित रहे है। इसके बाद गॉव की अभागी महिलाएँ भी है जो घर के पर्दे में रहकर पाश्चात्य शिक्षा-दीक्षा की चमक-दमक के सामने नहीं आयी। हरिजनों के लिए न हिन्दू कोड बिल है, न विधवा विवाह और न पर्दा प्रथा की जरूरत है। इनकी जरूरत तो मुफ्त में अग्रिम वर्ग बननेवाले को है। दलितवर्ग इन प्रथाओं को न मालूम कब से अनुसरण करते आ रहे है। वे सच्चे हृदय के होते है और कोई बात नहीं छिपाते है। सभ्य कहे जानेवालो से सौ कदम आगे बढ़ जाते हैं। वे झूठ बोलकर दूसरो का धन

अपहरण नहीं करते। हम संस्कृति का ढोल पीटते हैं पर वास्तव में हम सभ्य कहलाने योग्य नहीं है। सभ्य तो वे है जिन्होंने राणाप्रताप की तरह जंगलो में घास के दाने खाकर जीवन पाले, हल और बैल के संग अपने को क्षेत्र-कुण्ड में जेठ की चिल-चिलाती धूप मे शरीर को दूसरो के भरण-पोषण के लिए अर्पित करते रहते हैं। उनलोगो को दलित तथा पिछड़ा वर्ग बनानेवाले हम है। वे तो ऊँचे कहलानेवालों से बहुत ऊँचे है। वे शंकर के समान खुद नग्न रहकर दूसरे को वस्त्रधारी बनानेवाले हैं।

आज गाँव के किसानों और मजदूरों की दयनीय दशा उनके आत्म गौरव के कारण हो गयी है। वे जमीन्दारों और महाजनो के शोषण-रूपी तरकश के शिकार हो गये हैं। उन्होने भूखे रहना, जूठे साफ करना अच्छा समझा। पर मुस्लिम बादशाहो, ब्रिटिश गवर्नमेण्ट, राज-रजवाड़े, जमींदार और महाजनों के तलवे सहलाना मंजूर नही किया, पर आज वे ही नीच दृष्टि से देखे जाते है। यह कैसी विधि की विडम्बना है !!

रुपये के राज्य में गल्ले को कीमत ही नही रही और पृथ्वीपुत्र इस माध्यम से घाटा मे पड़ने लगे। अन्य धूर्त जातियाँ घटी देखकर पयादागिरी, बराहिलगिरी खानसामा-गिरी करके रुपये जमा किये और खेत खरीदे, पर किसानों के पास अन्न के अलावे था ही क्या ? बाजार में सभी चीजों

की प्राप्ति पैसे ही से होने लगी। यही कारण है कि वे इतने गरीब और अशिक्षित हैं।

हमारे देश में जबतक वर्णभेद रहेगा तबतब अमन चैन होना दुर्लभ है। यह हिन्दू धर्म का कोढ है। सुसंस्कृत वही है जो दूसरे को दुःखी नहीं बनाना चाहता और न उसकी विवशता से बेजा फायदा ही उठाता है बल्कि वह तो दूसरे की उन्नति मे भी आनन्द मालूम करता है। समाज में धनपति और सर्वहारा दो वर्ग न रहें तभी शान्ति रह सकती है वर्ना आपस मे द्वन्द्व हमेशा चलता रहेगा। आजकल धनपति एक रोटी की टुकड़ी लेकर गरीबों को ललचाते रहते है। समाज उन्नत दशा में तभी रहेगा जब आपस में वैमनस्य न होगा।

लोक-तंत्र की रक्षा तभी हो सकती है जब जनता सच्चे, निस्पृह निःस्वार्थ देश और राष्ट्र के सेवक हों। संविधान तो निर्जीव वस्तु है और उसमें जान देनेवाले हैं सभ्य नागरिक। यदि मनुष्य खोटा निकला तो बढ़िया से बढ़िया संविधान भी सफलीभूत नहीं होगा। आज हम एक दूसरे के छिद्रान्वेषण करने में लगे हुये हैं, पर इस तरह से काम नही चलेगा। जबतक गाँव स्वावलम्बी नही होगा, लोक-तंत्र की रक्षा कदापि नही कर सकते। मामूली चीज के लिए हम एक दूसरे के मोहताज है। अन्न और वस्त्र के लिए दूसरों पर अश्रित रहना गुलामी से बदतर है।

आज सभी लोग राजनैतिक क्षेत्र में उतरना चाहते हैं पर यह नही समझते कि वहाँ क्या रक्खा है। राजनीति का ध्येय है जनता की सेवा करना। इसलिए राज्य पर कब्ज़ा किया जाता है और जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति मे अधिकार को लगाते है पर आज जो मेम्बर बन गये हैं, वे जनता के लिए क्या कर रहे हैं ? अपना पेट भरने के सिवा कुछ नहीं हुआ। गुटन्बदी बाँध कर एक दूसरे को नीचा दिखाना, निकालना बस यही काम राजनीति में रह गया है।

अतः लोक-तंत्र की रक्षा के लिए सभी को शिक्षित होना जरूरी है। नाती-पोता वाद, घूसखोरी और भ्रष्टाचार को निर्मूल करना ही होगा। जबतक देश में वैमनस्य और लीडरों में पार्टीबन्दी रहेगी तबतक लोक-तन्त्र दूर रहेगा। अतः सभी को मिल कर राष्ट्र को सबल बनाने ही से भारत का कल्याण हो सकता है। सच्चा लोक-तंत्र होगा तभी सबकी भलाई होगी अपि तु नाम के प्रजा-तंत्र से कोई लाभ नहीं।

# यह कैसा स्वराज्य है ?

" कॉंग्रेस सियासी आज़ादी तो हासिल कर ली है, मगर उसे अभी माली आज़ादी, सामाजिक आजादी और नैतिक या इखलाकी आज़ादी हासिल करनी हैं। ये आजादियाँ चूँकि रचनात्मक हैं, कम उत्तेजक है और भड़कीली नहीं है, इसलिए इन्हें हासिल करना सियासी से ज्यादा मुश्किल है।"

—महात्मा गाँधी

अंग्रेज लोग चले गये। लोगों का विश्वास था कि उनके चले जाने पर देश की दशा सुधरेगी। पर देश की हालत और बुरी हो गयी। अन्न और वस्त्र का संकट दूर नहीं हुआ। कन्ट्रोल होने के कारण चीजें मंहगी होने लगी और काले बाजार का बोल-बाला हो गया। किरानी, पेशकार की बन आयी। दूकान की लाइसेन्स देने में दुकानदारों की संख्या बढा दी गयी और सभी दुकानदारों से किरानियों ने रुपये लिये। अधिक दुकानदारों की वृद्धि से अगर किरासन तेल में हर एक दुकानदार ने दो टीन भी काले बाजार में बेचा तो खुले बाजार में जनता को तेल नहीं मिला। लाखों टीन ऐसे ही गायब हो गये।

गाँधी, पटेल तथा पण्डित जी ने स्वराज्य की डिग्री बहस कर अंग्रेजों से दिलायी पर कब्जा हम लोगों का नहीं हुआ।

अगर तुम्हारी ओर से वकील कब्जा भी करेंगे तो उनके हाथ से कब्जा कौन दिलायेगा ? अगर डिग्री पाने के बाद भी कब्जा करने का प्रबन्ध नहीं किया तो यह डिग्री कागज ही पर रह जायगी जैसा कि बहुत सी डिग्रियाँ रह चुकी हैं। अंग्रेज यद्यपि हट गये हैं फिर भी वह कब्जा यहाँ से नहीं हटा रहे है, वह किसी न किसी चाल से आपके देश पर कब्जा रखना ही चाहते है। अग्रेज लोग इस लिए नहीं हटे कि वे लोग हिन्दुस्तानी से डर रहे थे। पर व्यापारी जाति अपना नफा नुकसान देखती है, जब लाभ की उम्मीद नही देखी तो वे यहाँ से चल दिये। नुकसान उठाने के लिए भला कौन ठहरना चाहता है ?

यदि आप स्वराज्य पर कब्जा नही करेंगे ता नेता स्वराज्य पर कब्जा कर मालिक बन बैठेंगे जैसा कि इस समय सारी हुकूमत आपके नेता के हाथ में आ गयी है। अंग्रेज भी इस पर कब्जा बनाने के लिए भारत को विभाजित कर दिया है और पाकिस्तान में नौकरी करने लगे हैं। वह समझता है कि ये लोग लड़ेंगे तो मेरा काम चलेगा। काश्मीर की लड़ाई में 'अग्रेजो की भी चाल है। आप क्लाइव के बारे में पढ़ चुके हैं कि दो नवाबो को लड़ाकर बंगाल का शासक बन गया। इसलिए अंग्रेजों ने चलते समय देश को चौपट कर दिया। हमारा मूलस्थान (मुल्तान) भी पाकिस्तान में पड़ गया, जो हिन्दुओं के लिए गौरव की चीज है। फिर भी वह आपको जेब

काटने के लिए तैयार है पर आप तो समझते है कि अब सात समुद्र पार चला गया है।

आपको अन्न और वस्त्र की तकलीफ हो रही है इसलिए आप प० जवाहर लाल, राजेन्द्र बाबू पर बिगड़े हुए है। आप कहते है कि वे लोग दिन भर अब कुर्सी तोडने में लगे है। क्या जवाहर लाल, और राजेन्द्र बाबू दिन भर चरखा चलावें और आपको कपड़ा पहुँचावे ? दो आदमी भला ३३ करोड प्राणी को कैसे ढँक सकता है ? यदि कपड़ा भी भेजना चाहेंगे तो मिल खुलवाने की कोशिश करेंगे। कुछ ही दिन पहले हमलोग नारा लगाये थे कि पुँजीपति नाश हो। क्या आप हुक्म देते है कि आपके लिए पूँजीपतियो के पैर पकडे ? मिल खोलने पर केवल आपके नेताओ की बेइज्जती नहीं होगी, आप पर भी मुसीबत आ जायगी। मिल के लिए आपकी हजारों बीघे जमीने मिलवाला ले लेगा और आपको जमीन से बेद-बल हो जाना पड़ेगा। मिल से आपको कपड़ा देने के लिए सरकार पूँजीपति को आबाद और किसानो का बर्बाद करना चाहेगी। मिले तो आपके जमीन्दार और ताल्लुकदार से भी ज्यादे खतरे वाला है क्योकि मिले आपका धन, जन, इज्जत सभी हड़प करेंगी।

दूसरा आपका मुल्क गरीब है। इतनी पूँजी भी आपके यहाँ नही है। यदि पूँजीपति पूँजी भी लावेंगे तो चाहे अमे-रिका से या इंगलैण्ड से।

"इस तरह से आपके देश पर अंग्रेज पूँजीपति और हिन्दुस्तानी पूंजीपति कब्जा कर लेंगे। जिसतरह पहले अंग्रेजों की हुकूमत थी, उससे उनकी महाजनी हुकूमत और कड़ी होगी। पहले हमारे सर पर बन्दूक का बोझ था पर अब रहेगा सन्दूक का। सन्दूक का बोझ और भारी मालूम होता है क्योंकि जमीदार का आसामी इतना तबाह नही करता जितना महाजन का। जिसके पास पूँजी रहेगी, वही शासन भी करेगा। आप तो कहेंगे कि पूँजीपति को वोट कौन देगा? पर रुपये के बल पर कितने आपके कॉग्रेसी जन फिसल जायँगे। आपके नेता को लखनऊ और दिल्ली से हटा देंगे। इस तरह आपको स्वराज्य की डिग्री मिलकर भी आपका कब्जा न होगा और कब्जा करेगा पूँजीवादी ताना शाही गुट--जिसका नेतृत्व करेंगे अंग्रेजी पूँजीपति।"

आप फिर कहेंगे कि सरकार क्यों न पूँजीपतियों की पूंजी जब्त कर मिल खोल देती जिससे कपड़ा इफरात से मिलने लगे। यह जमींदारी प्रथा ऐसी चीज नही है कि कब्जा रैयतों के हाथ में है। पूँजी वाद में पूंजी पर अधिकार रैयतों का नहीं होता है और इसको खत्म करना आसान नहीं है। अगर मिलें खुलेंगी भी तो कानपुर, अहमदाबाद, बम्बई में। ऐसी मिलों से आपको क्या फायदा होगा? उतनी दूर काम करने के लिए नही जा सकते है और सभी को न उसमें काम ही मिल सकता है। अगर कल-कारखाने खोले भी तो बेकारी और

बढ जायगी। १९३४ में अमेरिका में बेकारों की संख्या १ करोड १० लाख थी और सरकार को १ करोड़ ७० लाख डालर व्यय करना पड़ा। उसी साल ब्रिटेन में बेकारों की संख्या ३ करोड़ और सरकारी खर्च २ करोड़ २० लाख पौण्ड था। यदि मिलें नौकर भी रखकर सरकार द्वारा चालू की जायँ तो गरीबों को उससे कोई लाभ नही। नोकर शाही कम भयंकर नही है। सरकारी नौकरों को आप जानते ही है कि वे भी किस तरह से देश का शोषण कर रहे हैं। "अगर पूँजीशाही में होगी नफाखोरा तो नौकरशाही मे होगी रिश्वत खोरी" इसलिए आपके स्वराज्य पर अंग्रेज, देशी पूँजी-पति वर्ग, पुराने साम्राज्यवादी, दलाल और शहरी बाबू कब्जा करने दौड़ पड़े हैं। इसलिए तबाही से बचने के लिए चरखा जरूर चलाये।

---

# ग्राम-स्वराज्य

"मेरी ग्राम-स्वराज्य की जो कल्पना है, उसके अनुसार हरएक गॉव पूर्ण प्रजातंत्र होगा जो अपनी अहम जरूरतो के लिए अपने परोसी पर भी निर्भर नही रहेगा और फिर भी बहुतेरी ही दूसरी जरूरतो के लिये, जिन मे दूसरो का सहयोग अनिवार्य होगा, वह परस्पर सहयोग से काम करेगा। इस शासन-व्यवस्था मे व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर निभर रहने वाला सम्पूर्ण प्रजातंत्र काम करेगा। व्यक्ति ही अपनी इस सरकार का निर्माता होगा। उसकी सरकार और वह दोनो ही सत्य और अहिसा के नियम वश होकर चलेगे।"

—महात्मा गॉधी

मुसलमानो के हमलो से जब देश मे भारी उथल-पुथल हुई तब भी गॉव का स्वराज्य नष्ट नही हो पाया। परन्तु अंग्रेजो ने भारत को शोषण के निमित्त गॉव की शासन-व्यवस्था को नष्ट कर दिया। इस समय गॉव शताब्दियों से शोषण होने के कारण बर्बाद हो गया है। अगर गॉव में कोई पढ़ लिख जाता है तो गॉव मे नही ठहरना चाहता और ३०-४० रुपये की नौकरी के लिए शहरों में मारा मारा फिरता है। गॉव मे मध्यम और निम्न श्रेणी के लोग रह गये है जो गॉव के लिये भी कुछ नहीं करते। अगर कही शोषक समाज के

लोग हुए तो शोषण हमेशा जारी ही रहता है। गॉव मे मनुष्य की छाटन रह जाने के कारण रूढियों की प्रबलता, ईर्ष्या, द्वेष, पुरुपार्थ हीनता तथा भाग्यवाद का प्राबल्य हो गया है । गाँव में अज्ञानता और अशिक्षा का राज्य है । रोज दिन लड़ाई झगड़े चलते रहते है। अतएव गॉव को स्वावलम्बी बनाने के लिये ग्राम-पंचायत या ग्राम-सुधार विभाग कायम करना जरूरी है। इसके लिये पढ़े लिखे नवयुवको को गॉव की तरफ लौटना पड़ेगा। गॉव का ऐसा प्रबन्ध करना पड़ेगा कि वहॉ किसी चीज की जरूरत के लिये बाहर जाना न पड़े।

गॉव जब स्वावलम्बी होगा तब गॉव में स्वराज्य होगा। स्वराज्य पाने के बाद हमें उस पर कब्जा जरूर जमाना चाहिए। यदि कब्जा हम नही कर सके तो स्वदेशी राज्य हो जायगा। आपको सभी चीजो के लिए अपने पैरों पर खड़ा होना पड़ेगा, याने सहयोग द्वारा गॉव की सारी जरूरतें आपस में ही पूर्ति करनी होगी। सिर्फ ग्राम-पंचायत बिल पास होने से लाभ नही होगा। उसको काम मे लाना आप ही का काम है। खेती सुधार के लिए ग्राम-सरकार को चाहिए कि सुधारे हुए हलो का प्रयोग करवावें तथा खेतों की चकबन्दी पर अधिक जोर दे। जमीन हर एक किसान के पास इतनी जरूर रहने दे कि उसके परिवार का भरण-पोषण हो जाय। जो आदमी गॉव मे बेकार हो, बैठे रहें, उन्हें उद्योग धन्धों में लगावे। ग्रामोद्योग को प्रोत्साहन जरूर देना चाहिए। कच्चे

माल का प्रयोग अधिकतर गाँव ही में हो, अधिक रहने पर बाहर भेजा जाय। तेलहन न भेजकर तेल ही बाहर भेजने से गाँव को लाभ है क्योंकि कोल्हू वाले को पैसा भी मिलेगा और जमीन की उर्वरा शक्ति भी नष्ट नहीं होगी। इसलिए ग्राम-सरकार को जमीन पर का बोझ ग्रामोद्योग द्वारा हल्का करना चाहिए क्योंकि खेती में बहुत आदमी लगे हुए हैं। जब खेती के काम में सैकड़े ५० व्यक्ति रहेंगे तो जमीन का टुकड़ा इतना छोटा नही रहेगा। सिंचाई के प्रबन्ध बिना ग्रामीणों की हालत नहीं सुधरेगी।

पशुओं को खिलाने के लिए ग्राम-सरकार हरे चारे का प्रबन्ध करेगी—बरशीम, सोया बीन, क्लोभर आदि अच्छे चारे की गिनती में है और इससे भैंस गाय का दूध बढ़ता है। छोटे-मोटे अस्पताल के तौर पर पशुओं के इलाज के लिए दवायें भी चाहिए। ग्रामीण ऋण बहुत बढ़ गया है, इस लिए सहयोग समिति में कुछ इन्तजाम हो कि जरूरत पड़ने पर किसानों को रुपये बिना सूद के मिल जाय। यह तो तभी हो सकता है कि जब सभी ग्राम बासी एक हजार रुपये भी जमा कर उसके द्वारा ऋण से मुक्त होने की चेष्टा करे।

ग्राम-पंचायत में ग्राम-सरकार को बहुत काम है। इस-लिए चुनाव के समय अच्छे व्यक्तियों का चुनाव हो, नही तो गाँव को लाभ होने के बजाय नुकसान ही होगा। यदि गाँव के लोग अपने गाँव के भले-बुरे आदमी को न पहचानेंगे

तो इसका मतलब यह होगा कि प्रान्तीय असेम्बली तथा केन्द्रीय असेम्बली में निकम्मे व्यक्तियों को भेजेंगे क्योंकि उसमें तो उनके गांव का आदमी नहा जाता है।

ग्राम-पंचायत मे ईमानदार कार्यकर्ताओं की जरूरत है जो अपने को भी जला कर दूसरा को उजाला कर सके। अगर उसमे दीपक के समान गुण नही आता है कि खुद जल कर दूसरा को रोशनी करे तो ऐसे ग्राम-सेवक से कुछ लाभ नही। आज पैसे के लोभ के कारण मनुष्य के मन मे एक अजीब विकार पैदा हो गया है जो अपने सगा भाई से भी दो चार पैसे के लिए झंझट कर बैठता है। इसलिए ग्रामीणो को कह देते है कि उम्मीदवारों की लम्बी चौड़ी बातों मे न जॉय। उनको समझना चाहिए कि उम्मीदवार जो कहता है वह अपने जीवन मे कहाँ तक लागू किया। अगर कोई कहता है कि गरीबो को रोटी दूँगा और जीवन भर गरीबो को चूसा है तो कैसे समझ सकते है कि उनसे वह वादा पूरा होगा? गॉव के कार्य-कर्त्ताओ को चाहिए कि वह भी अपने को गॉव ही वालो के साथ मिला दे। रहन-सहन, भाषा भी उन्ही के समान हो। मुसीवतों में काम देने से वे वशीभूत हो जायगे।

इतने ही से ग्राम पंचायत के सदस्यो का काम शेष नही होता। उनको तो गॉव की कच्ची सड़के, गॉव में पानी का प्रबन्ध, शिक्षा, चिकित्सालय, सफाई पर भी ध्यान देना

चाहिए। पैखाना को बर्बाद होने से जरूर बचाना चाहिए क्योंकि इससे अच्छी खाद भी होगी और गाँव भी साफ रहेगा। ग्रामीणों में सफाई की आदत डलवानी चाहिए। सफाई से गन्दगी का नाश और सुन्दरता का निर्माण होता है। गन्दा रहना धर्म के खिलाफ है। सफाई विचार में क्रमबद्धता (order) लाती है। जोरदार सफाई से मनुष्य में मजबूती तथा पौरुष आ जाता है, वर्ग हीन समाज की रचना ग्राम-सफाई द्वारा हो सकती है। आध्यात्मिक बल का प्रचार सफाई से होता है। श्रम की पवित्रता और श्रम की प्रतिष्ठा तो इसी के द्वारा हो सकती है।

गाँव के मनोरंजन के लिए प्रदर्शिनी, खेल तथा कसरत का भी प्रबन्ध हो जिससे गाँव के लोगों की तन्दुरुस्ती में परिवर्त्तन आ जाय। प्रदर्शिनी शिक्षा के माध्यम रूप में हो। न तमाशा का और न आमदनी का जरिया बनाना चाहिए। बल्कि प्रदर्शिनी का यह उद्देश्य रहना चाहिए कि दर्शक जाने कि किस तरह हम अपने ग्रामो का उत्थान कर सकते तथा हम कैसे स्वावलम्बी बन सकते हैं। दो तरह के गाँव के दृश्य हो। एक उन्नत गाँव—दूसरा उजड़े गाँव का। उन्नत गांव में साफ सुथरा मकान, सडक, आसपास की जमीन, मैदान सब साफ सुथरे होंगे। मवेशियों की दशा सुधारने के लिए—किताबें, चार्ट, तस्वीरें रहनी चाहिए। स्थानीय ग्रामोद्योग के बने चीजों की नुमायश होनी चाहिए, जिसको देखकर दर्शक

अपने गाँव में प्रचार करे। प्रदर्शिनी में अच्छे-अच्छे देहात के खेती सम्बन्धी हल, बैल, औजार और बीज का प्रदर्शन होना चाहिए।

नागरिक शास्त्र की बाते ग्रामीणों को बताना चाहिए। प्रौढ-शिक्षा का प्रबन्ध हो। स्त्री-शिक्षा भी अनिवार्य रूप से हो। फिर भी प्राचीन सभ्यता को भारत मे लौटाने के लिए स्त्रियों को पढ़ाना चाहिए। देवियाँ ही विद्या, लक्ष्मी और बल की जननी है। आज भी विद्या के लिए सरस्वती, धन के लिए लक्ष्मी और बल [शक्ति] के लिए दुर्गा या शक्ति की पूजा करते है। विद्योत्तमा, लीलावती ऐसी कितनी गुणावती नारियाँ भारत में हो गयी हैं। ग्रामीण शिक्षा का प्रसार हो। शहरी शिक्षा की बू गाँव में नहीं आनी चाहिए। बुनियादी शिक्षा ही उत्तम ग्रामीण शिक्षा है। यह शिक्षा पद्धति इसलिए बुनियादी है कि वह जीवन पद्धति है। इसमें न्याय की भावना अधिक है। बुनियादी स्कूलों में छात्र तथा शिक्षक मधुमक्खी की तरह श्रमी, पहरेदार, दूसरे के लिए मधु इकट्ठा करने वाले होते है।

ग्रामीण गीतों, गाने बजाने का भी प्रबन्ध हो। कुश्ती, कबड्डी भी देहातियों के लिए अच्छी चीज है। परन्तु आज बैटमिन्टन के आगे गुल्ली डन्टा से कौन खेलना चाहेगा? पश्चिमी खेल यहाँ के लिए उपयोगी नही है। सिनेमा की आवश्यकना सर्द मुल्क में कामोद्दीपन के लिए हो सकती है

पर हमारे देश में इससे भाइयों में नपुंसकता तथा बहनों में प्रदर का रोग बढ सकता है। गॉव में रासलीला, नाटक, भजन और कीर्त्तन कर लेना ही अच्छा है। नकछेदिया के नाच में यदि सुधार किया जाय तो वह गांव के लिए बहुत उत्तम मनोरंजन का साधन बन सकता है।

ग्राम के कार्य-कर्त्ता को लंगाट बांध कर गॉव मे जाकर इस अष्ट–विध कार्यक्रम को अपनाना चाहिए। इसके लिए छात्रो से भी सहयोग लेना चहिए। इसमें ग्राम-सरकार से मदद लेनी चाहिए। जितने कार्य-कर्त्ता होंगे उतना ही काम अच्छा होगा (१) खादी (२) ग्रामोद्योग (३) गो-रक्षण (४) वर्धा पद्धति के स्कूल (५) शान्तिदल की स्थापना (६) हरिजना सेवा (७) ग्राम पंचायत (८) लोक-सेवक-संध की स्थापना।

शन्तिदल ही से गॉव की रक्षा होगी। इसको ग्राम-रक्षा दल भी कह सकते है। इसके स्वयं सेवकों को अन्नों की बर्बादी रोकनी चाहिए। भोज-श्राद्ध में अनाज का एक दाना भी बर्बाद न होने दे तभी उनका काम सफल समझा जा सकता हे। मौसमी चीजो को उपजाने के लिए किसानो को प्रोत्साहित करना भी उन्हीं का काम है। ग्राम का प्रत्येक परिवार कम से कम ५ कट्ठा तरकारी और १० कट्ठा फल अवश्य पैदा करें।

ग्राम-सरकार को पशु-सुधार के लिए चिन्तित रहना

चाहिए। इसके लिए हरे चारे का प्रबन्ध तथा चरागाह की मात्रा बढाने की कोशिश करनी चाहिए। आज हमारी गोओ को शुद्ध दा घूंट पानी तथा एक आंटी नेवारी भी नही मयस्सर होती। इन्ही कारणो से गोवंश का ह्रास हो गया है। अतः निम्नलिखित बाता को गॉव में नही होने देना चाहिए (१) कसाईखाने (२) कसाई (३) गोचर भूमि का अभाव (४) अकाल (५) चिकित्सा का अभाव (६) अच्छे साढों का अभाव (७) वनस्पति घी की दूकान [८] चमड़े का निर्यात (९) किसानो की गरीबी (१०) गन्दगी और अव्यवस्था (११) पशुओ का निर्यात (१२) पिजरापोल और गोशालाओ की दुरवस्था (१३) दुर्बल गो। राष्ट्र का जीवन गो-धन पर अवलम्बित है। अतः प्रत्येक ग्रामीण ग्राम-सरकार के बताये अनुसार चल कर गोधन की वृद्धि करे। आज हमारे देश में चरागाह की बहुत कमी दिखलाई पड़ रही है। निम्न ऑकडो से पता चलेगा कि हमारे देश में गोचर भूमि की स्थिति क्या है—

| देश | इंग्लैण्ड | न्यूजीलैण्ड | डेन्मार्क | अमेरिका | भारत |
|---|---|---|---|---|---|
| प्रतिशत | ३१ | ४० | ३३ | १६ | $\frac{१}{२}$ |

हमारे देश में सौ एकड़ मे आधा एकड़ गोचर भूमि है और न्यूजीलैण्ड में १०० एकड़ जमीन मे ४० एकड़ गोचर भूमि है। इससे पता चलता है कि शाकाहारी देश मे कुछ भी गोचर भूमि नही है तभी तो बच्चे अधिकतर माता की

गोद में ही मर जाते है। शोषक वर्गो के कारण गरीबी बढ गयी है और सारी जमीनें उन्हीं लोगों के हाथ में आ गयी है। अतः गोहत्या का मुख्य कारण शोषक वर्ग हैं जो न खुद पालते हैं और न दूसरों को पालने के लिए जमीन छोड़ते है।

गॉव के सामने सफाई की विकट समस्या है। जिसके कारण नाना प्रकार के रोग मौसम के समान भारतवर्ष में आते रहते है जैसे हैजा, प्लेग, मलेरिया आदि। अतः रविवार को ग्राम-सफाई-सप्ताह बना कर गॉव में वृहद् सफाई करवानी चाहिए। पानी और गन्दगी बहनेवाली नालियों को उत्तम ढंग से बनवाया जाय। ग्राम के पास चलते-फिरते पैखाने भी हों। औषधि और स्वास्थ्य विभाग भी खुले जिसमें बीमारी की फसल आने से पूर्व ही उपचार और रोक-थाम की जाय। जलवायु की वृद्धि के लिए प्रत्येक दिन या प्रत्येक रविवार को हवन किया जाय। पानी शुद्ध रखने का उपाय भी होना जरूरी है क्योंकि मनुष्य की तन्दुरुस्ती इसी पर निर्भर करती है। मद्य निषेद्य के लिए छात्रों द्वारा नारा लगाना चाहिए—"नशा पीना छोड दो—गांजा पीना छोड़ दो, बीड़ी सिगरेट छोड दो, शराब पीना छोड दो नशा बुद्धि हर लेती है और हिंसा होता है। नशा से नर पशु बन जाता है। इत्यादि।"

इसके अलावे भी गॉव मे अनेकों कुरीयियॉ हैं जिन पर हरएक कार्यकर्त्ता का ध्यान जाना जरूरी है। बाल-विवाह

पशु-बध, आतश-बाजी, पर्वों और 'त्योहारों की गन्दगी' रंडी का नाच, गन्दे स्वांग तमाशे, गाली बकने, कर्कश शब्द बोलने की आदत, भीख मंगी इत्यादि को शीघ्र ही शांतिपूर्वक उपायों से रोकना चाहिये।

ये सब काम बिना ग्राम-संगठन के नहीं हो सकते हैं। अत. ग्राम-संगठन होना चाहिए (१) ग्राम–पंचायत जो गॉव का शासन चलावेगा (२) मल्टीपरपस (सर्वतोमुखी) समिति जो आर्थिक संगठन का काम करेगा (३) ग्राम–सेवा–संघ जो कामों को सुचारु रूप से पूरा होने में मदद करेगा। ग्राम-पंचायत का चुनाव बालीग मताधिकार पर होगा। कई पंचा-यत मिलाकर पंचायत-संघ भी कायम कर सकते हैं। वास्तव में ग्राम-संगठन का काम है गॉव को स्वावलम्बी बनाना। अन्न, वस्त्र और मुख्य जरूरत की चीजों में किसी के ऊपर आश्रित न रहे। यह काम शान्ति पूर्ण और प्रजातंत्र रूप से होना चाहिए।

**ग्राम-संगठन** (Village organisation) का यह काम रहे कि उत्सव, जयन्ती मनाने में ऊँच-नीच का विचार न करें और आपस मे प्रेम बढाने का काम करें। दूसरे धर्म के लोग भी एक दूसरे के त्योहार में मदद दें। पुस्तकालय तथा अजायब घर भी हो। मनोरंजन के लिए देहाती खेल, लोक नृत्य, भ्रमण आदि का प्रबन्ध हो। कहने का मतलब यह है कि गॉव में जान आ जाय।

ग्राम-विकास-योजना के लिए सरकार को कार्यकर्त्ताओं को ट्रेनिङ्ग देना जरूरी है। ऐसे अनुभवी लोगा की गॉव में जरूरत है जो कृषि, गोपालन, चिकित्सा, पशु-चिकित्सा, उद्योग सम्बन्धी बातो का ज्ञान रखते हो। ग्राम-विकास-अफसर भी इन्ही लोगों को चुनना चाहिए। इस प्रकार से कम ही आदमी मे गॉव का सुधार हो जायगा। एक निःस्वार्थ ग्राम-सेवक एक गॉव के लिए काफी है। ऐसे देश में जब कि रुपये के अभाव से जरूरी काम रुका हुआ है, अधिक नौकरो की वहाली नही होना ही अच्छा है। यह सारा काम प्रान्तीय विकास अफसर के अधीन रहेगा।

कहीं-कही तो पंचायत द्वारा जनता मे मुकदमे की आदत बढ गई है। पहले छोटे-छोटे मामले कचहरियों में न जाकर घर ही पर लड-झगड़ कर गॉव ही मे ठंढे हो जाते थे। परन्तु अब तो छोटा-सा मुकदमा भी दायर होने लगा है। इसका नतीजा यह हुआ कि हारे हुए पक्ष को जिद सवार हो जाता है और ऊँची कचहरियो की ओर बढ़ने लगता है। इस प्रकार के पंचायतो से यह फायदा हुआ कि अधिक लोग कचहरियो मे जाने लगे। घर घर मे वैमनस्य पैदा हो गया और कचहरियों की आमदनी में वृद्धि।

पंचायत राज्य कायम होने से तो मुकदमा कम होना चाहिए। लोग झूठी गवाही न देंगे क्योंकि उन्हे डर रहेगा कि गाँव वालो से सच्चाई नहीं छिप सकेगी। झूठ पकड़ी

जायगी और हमारी बडी जिल्लत होगी। पंचायत से सफाई, औषधि का प्रबन्ध, संक्रामक रोगो का नियंत्रण और निराकरण, जन-वीथिका की रक्षा तथा निर्माण, आग बुझाना, दुर्भिक्ष, सेंधमारी तथा डकैती से ग्रामीणों को बचाना आदि काम यदि नहीं हुआ तो क्या हुआ ?

अतः यदि आप ग्राम में स्वराज्य लाना चाहते है तो आचार्य विनोवा जी की बातों पर ध्यान देकर चले; वे कहते हैं—'जब गॉव वाले अपने कुएँ खोद लेंगे, अपने मैले पर मिट्टी डालकर खाद बना लेंगे, अपना कपड़ा खुद तैयार कर लेंगे, अपना रक्षण भी खुद कर लेंगे तब गॉव में स्वराज्य आयेगा'।

# बादशाही खर्च

"आज तो ऐसा है कि अंग्रेजी राज तो यहाँ से गया, लेकिन अंग्रेजी हवा अभी नही गयी है। हम उस हवा को बदल दें। वे तो यहाँ एक बड़े पैमाने पर खर्च करते थे और ऐसा खर्च कि जो लोगों के पास वापस नही आता था लेकिन आज तो सब का सब खर्च हमको वापिस आना चाहिए, तब तो हमारे लिए खैर हो जाती है।"

—महात्मा गाँधी

भगवन्! वह जमाना कब आयेगा जिस दिन नाती-पोता-वाद नही रहेगा? आज इस 'वाद' ने तो हिन्दुस्तान को गर्त में ढकेल दिया। अयोग्य आदमी के सामने योग्य आदमी ठुकरा दिये जाते है। मै तो इस समय अपना ध्यान प्राचीन काल के गुप्तचर विभागों की ओर ले जा रहा हूँ। जिस समय दुनिया अन्धकार मे पड़ी हुई थी, उस समय भी गुप्तचर विभाग का सुप्रबन्ध कितना अच्छा था। आज पैसे के बल पर सरकार चल रही है। प्रेस, पैसा और पद जिसके हाथ मे हो, वही सबसे बड़ा आदमी समझा जाता है। प्राचीन काल मे गुप्तचर को काम हो जाने पर पारितोषिक दिया जाता था। राजा को सभी बातों की जानकारी रखना जरूरी हो जाता था। राजा चमड़े की आँखों से दूर की चीजो को

नहीं देख सकता है। अतः गुप्तचर का होना भी जरूरी है। गुप्तचर मे तीन गुण होना आवश्यक है—पहला चांचल्य-हीनता, दूसरा सत्यवादिता और तीसरा तर्क-वितर्क-शीलता। गुप्तचर को चंचल नहीं होना चाहिए. चांचल्य रहने पर किसी बात की अच्छी तरह से जानकारी नही होगी और दूसरी बात यह है कि अपना भेद भी दूसरे को बता दे सकता है। वेतन नहीं मिलने के कारण गुप्तचर प्राणों की बाजी लगाकर अपने कर्त्तव्य को पूरा करते थे। उस समय के शासक एक दूसरे से परिचित व्यक्ति को गुप्तचर विभाग में नियुक्त नहीं करते थे, हो सकता है कि ऐसे गुप्तचर हॉ-में-हॉ मिला कर मालिक को फन्दे में डाल दे। उस समय गुप्तचर विभाग में कुल ३५ वर्ग थे।

(१) कार्पटिक—इसमें प्रौढ विद्यार्थी भर्ती किये जाते थे जो छात्रो तथा अध्यापकों की गतिविधि का पता लगाते थे।

(२) गृहपातिक—इस विभाग के पटवारी गाँव के अफसरों की गतिविधि पर ध्यान रखते थे और बाहर से आने वाले व्यक्तियों के शील-स्वभाव की जानकारी रखते थे।

(३) वैदेहिक—इसमे सेठ साहूकार रहते थे जो व्यापारियों पर कड़ी दृष्टि रखते थे।

(४) तापस—साधुवेश मे लोगों के आचरण का पता लगाना तथा लोगों के चरित्र की जानकारी प्राप्त करना इनका काम था।

(५) कितब—इस विभाग के गुप्तचर जुआरियों के मालिक बन कर जुआरियों का पता लगाते थे।

(६) किरात—बौने गुप्तचर अन्तःपुर की बातो की जानकारी रखते थे।

(७) अक्ष शालिक—इस विभाग के गुप्तचर चित्र बेचते तथा लागो के विचार सुनते थे।

(८) यगपट्टिक—इस वर्ग के खुफिये घर पर कपड़े बेचते तथा लोगों का हाल चाल मालूम करते थे।

(९) अहितुण्डिक—सँपेरे के भेष में ये अपने आदमी को जन समुदाय से ढूँढ निकालते थे।

(१०) शौण्डिक—कलवार जाति के लोग जो शराबियों के पीछे लग कर उनसे गुप्त भेदों को जान लेते थे।

(११ विट—ये लोग वेश्याओं के दलाल बनते तथा वेश्या गामी पुरुष का हाल चाल जानना इनका काम था।

(१२) भिषक—इसमें आयुर्वेदाचार्य तथा शल्य-चिकित्सा विशारद रहा करते थे—ये लोग अपने स्वामी के आदेशानुसार शत्रु रोगी को प्राण घातक औषधि भी दे देते थे।

(१३) ऐन्द्रजालिक—हस्त-कौशल तथा मेस्मेरिज्म द्वारा उपस्थित जनता को आश्चर्य में डालकर अपना मतलब गाँठ लेते थे।

(१४) सूद—रसोई पकाने का काम करते थे और बैरी के घर रसोई बनाकर विष द्वारा उसे मार देते थे।

(१५) क्रूर—जो पुरस्कार के लोभ में अपने बधुओं को भी ठौर ठिकाना लगा देते थे।

इस तरह पीठ-मर्दक, विदूषक, नर्तक, गणक, वाग्जीवो आदि थे।

इतने गुप्तचरों के जाल बिछे रहनेपर भी सरकार को खर्च बहुत कम करना पड़ता था तब फिर भारत में नौकरों पर इतना व्यय क्यो होने लगा? ब्रिटिश सरकार अपने अफसरों को अधिक वेतन इसलिए देती थी कि उनके यहाँ बाहर से मेहमान आते रहते थे और उनकी आवभगत और दावत में ये कोई कसर नही रखते थे। अंग्रेज लोग आते ही हमारी कमजोरियों को जान गये थे कि हिन्दुस्तानी शादी गमी में अन्धाधुन्ध खर्च करते है और तड़क-भड़क खूब चाहते है। अपनी बिरादरी में ऊँचा बनने के लिए घर-खेत सभी बेच देते हैं। अंग्रेजों ने समझा कि ऐसा ही करने से यहाँ हमारी प्रतिष्ठा होगी। आज भी दिखावटी वर्दीधारी नौकरो और चपरासियों की संख्या वही है। खान-पान भी विदेशी ही पाये जाते है। टेबुल विभिन्न स्वादिष्ट व्यंजनो से पूर्ण रहता है। प्रीति भोज भी उसी प्रकार से चल रहा है। मद्यनिषेध की अवहेलना की बाते कौन करे? बिना शराब के प्रीतिभोज होता ही नही। अंग्रेज लोग जीट जमाने के लिए इन सब चीजों का प्रदर्शन करते थे। वे सोचते थे कि ऐसा करने से जनता भयभीत रहेगी। लेकिन लोक-प्रिय नेताओं को तो अंग्रेजो

के समान बनावटी तडक-भडक नहीं होनी चाहिए। उन्हें तो ५० हजार की मोटरों पर चलना तथा जनता के कामों में न जाकर बारात में वर-वधू को आशीर्वाद देना शोभा नहीं देती। उनके जाने से अधीनस्थ कर्मचारीगण भी सलामी के लिए दौड़ मारते है जिससे जनता के काम में बाधा होती है।

शोषित वर्गों से पैसे लेकर किस तरह अपव्यय होता है, उसपर ध्यान देने से रोंगटे खड़े हो जाते है। गाँधी, रवीन्द्र नाथ तथा विवेकानन्द ने किस सादगी को अपनाकर अपना प्रभुत्व विदेश में बनाये रखे। वे विदेशो में लंगोटी धारण कर गये थे। वे विदेश के सच्चे राजदूत थे। उनमे बताइये तो कितना पैसा खर्च हुआ? १५ अगस्त को औपनेवेशिक स्वराज्य मिलने पर जिस तरह खर्च कर खुशियाँ हम लोगों ने मनाई थी तथा गाँधी जी के दाह-संस्कार और भस्म विसर्जन में शाही खर्च किया गया था, वैसा खर्च मुगलों के समय तथा दिल्ली दरबार में भी नही किया गया था। गाँधीजी लंगोटी पहन कर गरीब देश के प्रतिनिधि-रूप में लन्दन गये थे, लेकिन गाँधीजी की मृत्यु के बाद श्राद्ध में पानी की तरह रुपये बहा दिये गये। आज भी दिल्ली से कोई लगुवे भगुवे पटना आते है तो तीन चार रोज तक सैनिकों की कवायद से सड़के रोक दी जाती है और पथिकों को गन्दी गलियों से गुजरना पड़ता है। क्या यही स्वराज्य की निशानी है?

सम्राट् अशोक ने दुःखियों की वेदनाओं को समझने के लिए कई बार पैदल यात्रा की थी और इतनी शान-शौकत उस जमाने में नहीं थी। गाँधी जी वर्धा की कुटिया में रहकर भारत के निर्माण के विषय में सोचा करते थे। पर आज के मंत्रियों को देखिये। विद्युत् प्रकाश से दीप्तिमान सुरम्य भवन चाहिए। गरीबों को पीने के लिए पानी नहीं। उधर राँची में मंत्रियों के भवनों को देखिये। कितनी दूर खर्च कर कल द्वारा पानी पहुँचाया गया है। वर्ष में सात रोज के लिए गवर्नरों की गर्मी की राजधानी नेतरहाट, उटकमंड, शिमला आदि में ठहरने के लिए लाखों रुपया का खर्च होना क्या जनता के पैसे मे सलाई लगाना नहीं है? उनको क्या मालूम कि ये पैसे किस तरह गरीबों ने अपना पेट काट कर दिये हैं—? जाके फटे ना कभी वेआयी, वह क्या जाने पीर पराई वाली कहावत उनके साथ चरितार्थ होती है। आज भी भारतीय नौकर शाहियों के मस्तक पर अंग्रेजी फैशन की छाया नाच रही है जो देश के लिए अत्यन्त भयंकर है। पश्चिमी नकलची होना अच्छा नहीं है। गाँधी जी सादगी से काम चलाते थे तो उन्हें भी सादगी से काम चलाना चाहिए। ईसा मसीह के वैसे चेले न बनें—ईसा लकड़ी का क्रौस लेकर चलते थे, पर उनके चेले रत्न जटित क्रौस लेकर चलते हैं। विदेशी ढंग अपनाने से देश तवाह हो जायगा और गरीबी बढ़ जायगी। शासन में व्यय

झोपड़ियों से बर्दाश्त करने लायक किया जाय।

भारत का व्यर्थ मान रखने के लिए किस तरह राजदूतो में खर्च किया जा रहा है, उस पर आप गौर करे तब पता चलेगा कि धन का अपव्यय इस तरह से दुनियाँ में कही होता है। जब विजयलक्ष्मी रूस गई और वहाँ दूतावास को सजाने के लिए स्वयं हवाई जहाज से फर्नीचर खरीदने स्वीडन पहुँचीं, तब रूसियों का माथा ठनका। उन्होंने समझा कि साम्यवादी देश में साम्राज्यवाद की छाप छोडना चाहती हैं। इसीलिए तो विजयलक्ष्मी मास्को से अमेरिका लायी गयीं। राजदूतों में किस देश में कितना खर्च होता है उसका आंकड़ा नीचे है।

## भारतीय दूतों का खर्च १९४८

| | | | |
|---|---|---|---|
| वाशिंग्टन— | २२, ८६, ८०० | मास्को | ८, ४१, ३०० |
| पेरिस | ४, १६, ००० | चीन | ६, ८०, ९०० |
| बुसेल्स | ३, ९८, ९०० | मिश्र | ७, २३, ००० |
| ईरान | ६, ५२, १०० | नेपाल | २, १३, २०० |
| अफगानिस्तान | ४, ५४, ४०० | ब्राजील | ४, ३७, ९०० |
| तुर्की | ६, ७४, १०० | परागाय | १, ९५, १०० |
| रंगून | ४, ३८, ९०० | बेर्न | ४, ९३, ७०० |
| स्टाकहाल्म | १, ३१ ४०० | लंदन (हाई कमि०) | ४५,४० ००० |
| आस्ट्रेलिया | २, १२, ६०० | कोलम्बो | २,०८, ५०० |
| करॉची | ५, ३८, १०० | जोहानेसबर्ग | १, ३४, २०० |

लाहौर २, ९३, ३०० ढाका १, ४२, ८००
तोक्यो (मिशन) ३, ३६, ९००

आज की राजनीति पृ० १६

अंग्रेज लोग यद्यपि खेल कूद में अपना समय बिताते थे फिर भी वे नौकरो से काम लेना जानते थे। आज नौकर लोग ठीक समय पर आते ही नहीं। घंटा भी अबेर से आवे तो बालने बाला कोई नही—'परमस्वतंत्र सिर पर नहिं कोई। जब मंत्री, महामत्री अपने ही आदमी है तो डरने की कौन बात। कभी कभी तो ऑफिस भी नही जाते और फायलों को मँगा कर घर ही पर दस्तखत कर देते हैं। एक तरफ काम की यह हालत है और दूसरी तरफ नौकरो की बहाली में कमी नही की जा रही है। खर्च-घटाव-सिमति ने तीन करोड दस लाख घटाने की कोशिश की थी पर उसमें कुछ भी नही घटा और नौकरो में एक अरब पैतालीस करोड़ खर्च प्रति वर्ष हो रहा है। केन्द्रीय सरकार में सचिवालय के नौकरों में जिस तरह की वृद्धि हुई है उसका व्योरा नीचे दिया जा रहा है।

| कर्मचारी | १६३६ | १६४६ | सिफारिश |
|---|---|---|---|
| सेक्रेटरी | ६ | १६ | १९ |
| सयुक्त सेक्रेटरी | ८ | ४० | ३६ |
| डिप्टी सेक्रेटरी | १२ | ८६ | ७६ |
| अतिरिक्त सेक्रेटरी | ० | ५ | २ |

| | | | |
|---|---|---|---|
| अन्तर सहायक सेक्रेटरी | १६ | ४४ | .... |
| सुपरिंटेण्डेंट | ६८ | २६४ | २६५ |
| सहायक पदस्थ | ८ | १४८ | ८३ |
| सहायक | ४६३ | २३१० | २६३२ |
| क्लर्क | ६४१ | २५४८ | २०३८ |

—आज की राजनीति पृष्ठ १६६

जे० सी० कुमारप्पा साहेब ने 'गवर्नर जनरल भवन पर कितना खर्च होता है, इस पर एक लेख लिखा था जिसका शीर्षक था 'क्रान्ति का लक्षण'। उसके बारे मे मैंने पत्र द्वारा जानना चाहा कि क्या अब भी इस तरह का खर्च उस भवन पर हो ही रहा है ? उन्होंने पत्र संख्या न० ४७६० तिथि १६-५-५० में जबाब दिया— 'गवर्नर जनरल के भवन के खर्चे में कोई कमी आई हो ऐसा प्रतीत नहीं होता।" अब आप सुनिये खर्च किस प्रकार उस भवन में होता है। "अंग्रेज तो यहाँ से चले गये हैं, पर ऐसा मालूम होता है, कि वे ऐसी परम्परा छोड़ गए है जिसने हम में से चन्द लोगों के जीवन में घर कर लिया है। · .... दिल्ली शहर खुद गरीबों के बूते पर की जाने वाली तड़क-भडक के प्रदर्शन का एक खास उदाहरण है। वहाँ वाइसराय की कोठी पुराने जमाने के मुगलों के ऐश्वर्य को भी मात करने वाली है। उसमें रहने के कुल ८६ कमरे और ५६ गुसलखाने है। ये कमरे इक्के दुक्के नही, परन्तु बम्बई के फ्लैट जैसे है और उनमें से हर एक में मध्य वर्गीय

कुटुम्ब बड़ी आसानी से रह सकता है। पुराने जमाने में जब दिल्ली में राजसी ठाठ वाले होटल नहीं थे, तब इंगलैण्ड के अमीर उमराव आदि मेहमानों को ठहराने के लिए वाइ-सराय की कोठी एक होटल का भी काम देती थी। पर आज गरीबों से वसूल किये टैक्सों के बूते पर उसी रफ्तार को चालू रखने की हमें कोई जरूरत नहीं दीख पड़ती "इस कोठी में कुल ३१२ नौकर और ९० फर्रास हैं, जिनका मासिक वेतन २५००० रुपये याने सालाना तीन लाख रुपया होता है। उनके 'अदना' मालिक वाइसराय का वेतन भी इन्कम-टैक्स और सुपर टैक्स ( यदि लगता होता ) मिलाकर मासिक १५,७०० रुपया के करीब होता है, नौकरो की भड़कीली पोशाका के लिए सलाना ४०, ००० रुपये खर्च होते है।

"इस कोठी के बगीचे का क्षेत्रफल २९० वर्ग एकड़ और वह 'तमाम दुनिया में अपनी शानी नही रखता' ऐसी कोठी के अधिकारी डींग मारते है। पर यह सब संभव होने के लिए उस बगीचे में २६३ वनस्पति विशेषज्ञ और माली रखने पड़ते है। इसका सालाना खर्च ३० लाख रुपये से अधिक होता है। कोठी का तमाम घर-खर्च सालाना साढ़े चार लाख रुपये से ऊपर जाता है। कोठी की मरम्मत के लिए हर साल करीब बारह लाख रुपये और फर्नीचर दुरु-स्ती या टूट-फूट के लिए हर साल एक लाख रुपये खर्च होते है। पूरे सामान और फिटिंग की लागत पचास लाख रुपये है।

"ये सब खर्च परम्परागत चले आये हों, सो बात नहीं है। अंग्रेज वाइसरायों के जमाने में भी ये खर्च इतने अधिक नही बढ़े थे। सन् १६३८-३६ में बगीचे का खर्च ७७ हजार रुपये से कुछ अधिक था, पर आज का तो इससे पाँच गुना है। उसी प्रकार १६३८-३६ में घर खर्च एक लाख अस्सी हजार था और आज वह इससे ढाई गुने से अधिक है। केवल मुद्रास्फीति की बदौलत इतना फर्क नहीं पड सकता।

"कुछ ओहदे वाले अच्छे-अच्छे महलों में रहते हैं। मामूली क्लर्क आदि लोगों को रात को सिर रखने के लिए भी जगह नहीं मिलती। महकमों के क्लर्कों की संख्या बे-हिसाब बढा दी गयी है जिससे महकमों की कार्यक्षमता भी घट गयी है। (लाट साहेब के) स्टेट-आफिसर की रिपोर्ट से पता चलता है, कि सन् १६३६ में कुल ६४७२ रहने के क्वाटर थे और पिछले साल उनकी संख्या १५, ४०४ हो गई। सन् १६३६ में रहने के मकानो के लिए कुल अर्जियाँ दस हजार थीं, जो पिछले साल ७०,००० हो गई। दफ्तरों के लिए सन् १६३१ में ७,७५,००० वर्गफुट जगह काफी थी, पर पिछले साल वह ५६,३४,००० वर्गफुट हो गई। इस पर से क्या हम यह अनुमान लगायें कि महकमो की कार्यक्षमता बढ गई है? इन्हे तो कोई रोग हो गया है। हमें यह याद रखना चाहिए कि १६३६ के हिन्दुस्तान का एक-तिहाई हिस्सा पाकिस्तान में चला गया है। उसके बावजूद सरकारी नौकरो की संख्या

में वृद्धि और उसी अनुपात मे कार्यक्षमता की शिकायतों की वृद्धि ये बाते किसी खराबी के निश्चित द्योतक है।

"हमे तो ऐसा डर लगता है कि ये सब हालते आखिर ज़ार के जमाने के रूस की हालते जैसी हो रही है। हम चाहते है और प्राथना करते हैं कि ये सब बाते रूसी क्रान्ति जैसी क्रान्ति के पूव-चिह्न न साबित हो। एक तरफ साम्राज्य शाही का ठाट बाट और दूसरी तरफ भयंकर गरीबी और सारी चीजो का अभाव। ऐसी हालत जब पैदा हो जाती है, तभी क्रान्ति की संभावना रहती है। आज अपने देश में यह हालते अधिकाधिक दृष्टिगोचर हो रही है। समाजवादी कम्युनिस्ट लोगो की धर-पकड़ इस मर्ज की ऊपर-से-ऊपर मर-हम-पट्टी जैसी है, इससे मर्ज ठीक न होगा। हमारी व्यवस्था में आमूल परिवर्तन हो यही इस मर्ज की सच्ची दवा है। क्या हमारे नेता लोग समय रहते चेत जायंगे, या हमें रूसी क्रान्ति के समान भीषण-क्रान्ति के अग्नि-दिव्य में गुजरना पड़ेगा?"

झूठ-मूठ प्रचार विभाग द्वारा जनता की तकलीफ दूर नहीं होगी। हरिजन वेल फेयर ऑफिसर में वे ही लोग भर्ती किये गये है जिन्होने हरिजनो की भलाई के बारे में स्वप्न में कभी सोचा भी नहीं है और न सोचने की उम्मीद करते है। लोग यहा कहेंगे कि छोटी जातियो तथा पिछड़ी जातियों में आदमी का अभाव है तो कहां से उन लोगो को जगह दिया जाय। पर सच पूछा जाय तो भाई-भतीजे-भांजे के सामने योग्य

से योग्य व्यक्ति भी ठुकरा दिये जाते हैं। आज के मंत्रिमण्डल में एक तिहाई को ही योग्य मंत्री कहा जा सकता है। शेष तो पार्लियामेन्टरी सेक्रेटरी के बल पर ही चल रहे हैं और दस्तखत करना ही उनका काम है। हरिजनों तथा शोषितों में किसी तरह की कमजोरियाँ खोजने पर भी नहीं मिलेंगी क्योंकि नैतिक स्तर एक दम ऊँचा रहता है। उनमें तिड़कम भरोसा भी बहुत कम रहेगा, इसलिए वे बहुत योग्य साबित होगे। [क्या अम्बेदकर और जगजीवन राम चमार के लडके होने के कारण किसी और दिल्ली के मंत्रियों से शासन भार कम वहन किये हुये है ? नेहरू को ऊपर उठाने में किस के कंधे का सहारा लेना पड़ा ? कुर्मी के घर पैदा होने वाले लौह पुरुष सरदार पटेल को किसने उठाया ? अम्बेदकर तथा जग जीवन राम अपने बनाये हुए हैं। "बडी जाति वाले समझते हैं कि योग्यता हमारी बपौती है। वे भूल करते हैं, दुनिया में जितने बड़े लोग हुए हैं, वे अधिकतर छोटी ही जाति में उत्पन्न होकर। अवसर और सहायता मिलने पर न मालूम कीचड़ से कितने अम्बेदकर और जगजीवन ऐसे कमल खिलेंगे ? यदि सरकार खर्चे में कमी करना चाहती है तो शोषितवर्ग के लोगों को मौका दे, तो स्वराज्य का दृश्य शीघ्र ही भारत में नजर आयेगा। जातीयता और गणतंत्रता दोनों एक साथ नही चल सकती, एक अमृत है तो दूसरा विष।

राहुलजी लिखते हैं—"सभी पिछड़े हुओं को अवसर

और साहायता देना सरकार का कर्त्तव्य होना चाहिए। यदि इस कर्त्तव्य को आज की सरकारे नहीं पाल रही हैं तो भविष्य की सरकारों को पालना होगा। हर साल बीस हजार छात्रवृत्तियाँ शोषित बालक बालिकाओं को मिल जानी चाहिए। फिर देखए कि उनमें पन्द्रह साल में लाखों की संख्या में शिक्षित और हजारों की संख्या मे प्रतिभाशालो ग्रेजुएट, डाक्टर, इंजीनियर पैदा हो जाते है। जहाँतक अभी काम सम्हालने की बात है, आवश्यकता से भी अधिक शिक्षित उनमें मौजूद हैं। जो सेक्रेटरी आज के मन्त्रियो की सहायता करते रहे है, वे तब भी हुक्मी बंदा रहेंगे। शासन सूत्र हाथ में लेने का मतलब यह नहीं कि जो आज सरकारी नौकरियों पर हैं, उन्हें कल जवाब दिया जाय। हाँ, वे यह जरूर करेंगे कि सरकारी नौकरियों में जबतक संख्या के अनुपात से उनके भी आदमी नही आ जाते, तबतक ब्राह्मण-क्षत्री लाला का एक भी आदमी भर्ती न किया जाय। पन्द्रह साल में वे तीन चौथाई हो जायँगे। एक सज्जन कह रहे थे—'तब तो सरकारी नौकरियो का तल बहुत नीचे गिर जायगा। मानो हर तरह के पापो और झूठी-सच्ची सिफारिशों के बल पर आगे बढ़े बडी जाति के गदहे जो मोटी-मोटी तनखाहा पर नियुक्त किये जा रहे हैं, वह योग्यता के कारण ही है। उन्होंने पूछा .'तो क्या अब हमारे लडके सरकारी नौकर नही हो पायँगे। मै ने कहा—'हाँ, कुर्सी तोड़नेवाले नौकर

नही हो सकेंगे। वे यदि अपनी प्रतिभा दिखलाना चाहें, तो डाक्टरी, इंजीनियरिंग आदि क्षेत्र उनके लिए खुले है। देश के उद्योगीकारण के लिए लाखो इंजीनियरो की आवश्यकता होगी, वहाँ उनके लिए भी काम है।' सच तो यह है कि बेकारी के बिल्कुल मिटा देने पर ही अब सबको काम मिलेगा। इस प्रकार छोटी जातिवालो का शासन बडी जातिवालो की अपेक्षा अयोग्य सिद्ध होगा, इसका कोई कारण नही समझ में आता।"

—'आज की राजनीति' पृ० २३६-२३७

शोषित लोग बेदर्दी से लोगा का पैसा खर्च नही करेंगे क्योंकि बेदर्दी से खर्च करने की उसमें बान नही है'
निश्चय है कि शोपितों की सरकार सरकारी फजूलखर्ची का बहुत कम कर देगी। बल्कि कहा जा सकता है कि खर्च में किफा-यत करने की क्षमता ब्राह्मण-क्षत्री-लाला की सरकारो में कभी नहीं हो सकती. वह हो सकती है केवल शोपितो की सरकार में " अगर सरकार इन दलितो और शोषितो के प्रति न्याय नही करेगी तो क्या होगा ?" ·लेकिन हमारे देश के भीतर जो आर्थिक समस्याये उठ खड़ी हुई है, अन्न वस्त्र का अभाव और बढता ही जा रहा है, जनसंख्या ऊपर से और बढके नाव को बोझल कर रही है, पतवार अनाड़ियो के हाथ में है, यदि समय पर नही सँभले तो लाल भवानी के आने में देर नही होंगी और उनके स्वागत में न

जाने कितने लाख निरीह नर-नारी आपसी संघर्ष में बलि चढ़ेंगे। अंत में जो बच रहेंगे, वह बहुत सुन्दर और समृद्ध भारत का निर्माण करेंगे, इसमें सन्देह नहीं किन्तु लाखों के रक्त से भारत मही को पंकिल करके फिर वही करना क्या अच्छा है ?"

'—आज की राजनीतिक' पृ० ३५२

# रहन सहन का दर्जा

"देश के निर्माण की योजना से लोग जीवन के स्तर को ऊँचा उठाने की बात सोचते है। पर भारत ऐसे भूखे देश मे मौलिक आवश्यकताओ की इच्छा की पूर्ति ही रहन-सहन का दर्जा ऊँचा उठाना है, नई आदतों को लगाना नही और तरह के ऊंचा दर्जा बढाने का मतलब है, जरूरतो को बढाना।"

—जे० सी० कुमारप्पा

जिस तरह सेना में कवायद कराई जाती है जिससे सेना में अनुशासन रहे, उसी तरह अहिंसक सेना जो उपभोक्ता के रूप में है, उनको अपने पर रोजाना कताई द्वारा वश में कर लेना चाहिए। अनुशासन से चरित्र का विकास होता है, इसीलिए गांधी जी ने कहा था कि 'कताई करो और स्वराज्य ले लो क्योंकि कातने में अनुशासन की आवश्यकता होती है और इसके द्वारा बाहरी शत्रु तुम्हारे पास नहीं आवेगा।"

बिजली की रोशनी से आँखे चकाचौन्ध हो जाती है और शहरी बाबू को पता नहीं चलता कि यहाँ का रहन-सहन गिरता जा रहा है। वे यह नही जानते कि कुछ लोगो के ऐशो आराम के लिए कितने लोगो की रोटी प्रतिदिन छिनी जाती है। देखने वाले को बिना चश्मे से पता चल सकता

है कि हिन्दुस्तानियों का रहन-सहन निम्न ढंग का है। यहाँ कुछ कारणों का उल्लेख कर रहा हूँ। वार्षिक आय प्रत्येक व्यक्ति की महंगी के समय में ६० रुपये भी नहीं पडती है। दस वर्ष पहले १८ रुपये साल आय निश्चीत को गई थी। अंक गणित के हिसाब से तो वह ६५ रुपये हो ही जाती है पर वास्तव में १८-२० रुपये से ज्यादा नही है क्योकि हिन्दुस्तान मे ६७ फी सदी आबादी के पास सिर्फ राष्ट्रीय आय २८ फी सदी है। एक फी सदी आबादी के पास राष्ट्रीय आमदनी का ३५ फी सदी हिस्सा है और ३२ फी सदी मनुष्यों के पास ३७ फी सदी आमदनी रह जाती है। अतएव आमदनी को चौगुना किये बिना यहाँ के रहन-सहन का दर्जा ऊँचा नही रह सकेगा। दूसरी बात यह है कि यहाँ अन्न वस्त्रादि आवश्यक पदार्थों की खपत बहुत कम है। तीसरी बात यहाँ मृत्यु संख्या की औसत फी हजार २५ है और औसत आयु २७ वर्ष है। कुछ लोग यहाँ के निवासियों को देहातो में पक्का मकान बनाते, सिगरेट पीते, विलायती तेल और साबुन लगाते देख कर रहन-सहन के दर्जे को ऊँचा होना सिद्ध करते है किन्तु दो चार शौकिनों के रहने से रहन-सहन का दर्जा ऊँचा नहीं कहेंगे। अमीरों के यहाँ बनावटी रहन-सहन बेहद बढता जा रहा है। लेकिन जनता को न भर-पेट भोजन मिलता है और न कपड़े ही। जीवन रक्षक पदार्थों की कमी के कारण ही बंगाल में लाखों आदमी काल के गाल में चले गये।

अनेकों अर्थ शास्त्री जो विदेश से पढकर लौटे है वे भी पश्चिमी रंग में रगे है। अपना भोजन छुरी कांटा के बिना हाथ से करने में शर्म महसूस करते है। टेबुल, कुर्सी न रहे तो जमीन पर बैठने में आना कानी करते है। क्या इसीको ऊँचा रहन-सहन कहते है और फिर इसीको उठाने के लिए यहाँ के नेता परेशान है ? एक आदमी केले के पत्ते पर हाथ से खाता है और उस पत्ते को जानवर को भी दे देता है। जूठे यदि बचे भी तो पशु चाट कर पत्ते तक चट कर जाते हैं। क्या पत्ते और जूठन जो उसके काम आये सो प्लेट वाले कॉटे छुरी स बुरा हुआ ? कॉटे में अन्न का कण भी सटा ही रह जाता है और मनुष्य उसीसे बार-बार खाता है जिसके कारण उदर की बीमारी होती है।

फैशन के घुड़दौड में शामिल होना है तो जेब खाली कीजिए। टेबुल पर रखने की आदत डालना चाहते हैं तो बडी कोठरी पक्के की बनाइये। उसके बाद टेबुल, कुर्सी, आलमारी और प्लेट का प्रबन्ध कीजिए। एक नौकर भी रखना ही पड़ेगा। इस तरह से खर्च की तालिका बड़ी करनी होगी। आज होटलो में जाकर देखिये। नौकर कभी मेज, कुर्सी तथा प्लेटो को ठीक से साफ नहीं करता है। शाम के समय तो बहुत से फैशनबुल बाबू अपनी पत्नियों के साथ होटल ही में नाश्ता करते है। यही कारण है कि शहरों में पेट और अँतड़ियों की बीमारी बढ रही है क्योंकि प्लेट नौकरों द्वारा

अच्छी तरह से साफ नहीं किया जाता। जब से हिन्दुस्तान से चूल्हा, चक्की और चर्खा गया। धन, धर्म और स्वास्थ्य भी जाता रहा। लोग भड़कीली चीजों पर दौड़ मारने लगे है, चावल के चौरट्ठे का रसगुल्ला, दालदा का गुलाबजामुन, सिंघारा और कचौड़ी घर की सूखी मोटी-झोंटी रोटियों से अच्छी नहीं है।

क्या जरूरतों को बढाना ही ऊँचा रहन-सहन की निशानी है? अनेका लोग ऐसे मिलेंगे कि बनावटी चीजों के इस्तेमाल के बिना जीवन यापन नहीं कर सकते है जैसे शराब पीना जीवन के लिए जरूरी नहीं है पर आदत हो जाने के कारण अगर वह शराबी है- तो उसके लिए शराब जीवन की आवश्यक वस्तुओं में गिनती होगी। इसलिए बचपन ही से अनावश्यक वस्तुओं से परहेज करनी चाहिए वरना जवानी में उसके बिना रहना मुश्किल हो जाता है। लोगों को चाहिए कि बिना जरूरत की आवश्यकता न बढावें। सादगी, स्वतंत्रता और आत्म-सम्मान की जिन्दगी का कोई मुकाबला नहीं करता। आज-कल स्कूल और कौलेज के आचार्य, विद्यार्थी दो तीन जोड़े जूते रखते है, पर खाने के लिए उनके टेबुलों पर कुछ नहीं रहेगा। अगर सुगन्धित तेल, पाउडर, क्रीम वैसेलिन और लक्स की टिकियाँ खोजेंगे तो जरूर मिलेगा। सकतू चमार के जूते तो अब बुरे लगने लगे हैं क्योंकि उससे पैर का बचाव अधिक होता है और देहाती है। जूते भी

तो काफ लेदर या क्रोम का ही होना चाहिए। मुर्दार चमड़े के जूते में कुछ चर्बी रह हो जाती है जिससे पाँव मुलायम और आँख की ज्योति बढती है। दूसरे क्रोम चमड़े के लिए गोबध की जरूरत होती है। देहाती चमड़े तो चमारों को शिक्षित करने से क्रोम के समान कमाये जा सकते हैं। पर चमार निर्धन, और अपढ़ होने के कारण रोजगार से मुँह मोड़ रहा है और वह भी शहरी चमरो से जूता बनाना शुरू कर दिया है। चर्मकार भी देहाती जूते को हेय दृष्टि से देखता है, इसीका परिणाम यह हुआ कि देहात में भी शहरी बू आ गयी।

चाय यद्यपि जीवन के लिए जरूरी चीज नहीं है। पर आज चाय का प्रचार भी जोरों हो गया है। पहले-जब अंग्रेज थे तब चाय पार्टी उनको खुश करने के लिए दी जाती थी और चाय की कम्पनियाँ अंग्रेजो के हाथ में थीं और उसकी विक्री का प्रबन्ध करना जरूरी था। पर आज अंग्रेज हट गये, फिर भी हम अंग्रेजी कम्पनियो की चाय पीने में व्यस्त है। मान लेते है कि उससे थकावट मिटती है और नीद नहीं आती है पर नुकसानी से पता चलेगा कि बदहजमी, पायरिया, भूख की मन्दगी का खास कारण यही है। गर्म पानी के कारण दाँत कमजोर हो जाते है और आँत पर बुरा प्रभाव पड़ता है। आज चाय का इतना प्रचार हो गया है कि जो समाज में इसे नही पीता है वह पिछड़ा हुआ समझा जाता है, जब तक मनुष्य अपनी आवश्यकताओं को सीमित नहीं

करता है तब तक उसके मन में विद्रोह उठता ही रहेगा। संतोष ही सुख का मूल है। हमारे पूर्वज लोग एक जोडी धाती और एक गमछे में जाड़ा, गर्मी और बरसात काट लेते थे। आज हम भी उन्हीं की सन्तान कोट, चेस्टर पहन कर भी जाड़ा को दूर नही भगा सकते हैं। उटङ्ग धोती क्या हाफ पैंट से कम काम करती है? फुल पैंट तो हमारे देश के लिए उतना हितकारक नहीं। मनुष्य जितना ही प्रकृति की गोद में रहता है उतना ही वह हृष्ट पुष्ट रहता है। नेकटाई से लाभ के बारे में मुझे मालूम नहीं। अतएव भारतीयों को जीवन रक्षक तथा निपुणता दायक पदार्थों की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए न कि बनावटी अनुपयोगी चीजों पर।

लोगो का गलत ख्याल है कि स्वावलम्बी होने से रहन-सहन नीचा हो जायगा। एक आदमी आपके लिए छः बजे सुवह से छः बजे शाम तक हाड़ तोड़ मेहनत करता है। उसके श्रम पर हम आप मौज उड़ाते हैं। यदि कुछ घंटे आप भी उसके उत्पादन में मदद करते हैं तो कुछ भी तो बेचारा आराम करता। जब हिन्दुस्तान में समाजवाद की लहर बह रही है, उस समय तो मजदूर ही आराम करेगा और जो श्रम नहीं करेगा वह सबसे फटे हाल में रहेगा। वह समय दूर नहीं है जब हमें श्रम की इज्जत करना पड़ेगा। आज हम अछूत को नीच निगाह से इसलिए देखते हैं कि वह शारीरिक श्रम करता है और हम श्रेष्ठ हैं क्योंकि उसकी मेहनत पर गुलछर्रे उड़ाते हैं।

रहन-सहन के दर्जे के ऊँचे होने का आशय यह नहीं है कि देश के आदमियो में विलासी वस्तुआ के उपभोग में वृद्धि हो, या कृत्रिम आवश्यकताओं के फेर में लोग पड़ें। कहने का तात्पर्य यह है कि जीवन रक्षक पदार्थों की पूर्ति सर्व प्रथम होनी चाहिए। फिर निपुणता दायक पदार्थों का अधिक उपभोग हो। १० फी सदी लोगों के अच्छे रहन-सहन से देश के रहन-सहन का दर्जा उन्नत नहीं कहा जा सकता। रहन-सहन के दर्जे को ऊँचा करने के कुछ साधन हैं यदि भारतीय काम में लावें तो बहुत उत्तम होगा। अपने परिवार की जन-संख्या वस्तुओं की मात्रा के अनुसार बढावे या घटावे। इसलिए इन्द्रिय निग्रह करना, आवश्यक है। शिक्षा भी रहन सहन के दर्जे को ऊपर उठाती है। इससे मनुष्य निपुण होता है और दूरदर्शी होकर अपनी संतान आवश्यकतानुसार पैदा करते हैं, जैसे पश्चिमी देश के लोग करते हैं। यात्रा करने से अनुभव प्राप्त कर बहुत से लोग अपने रहन-सहन को ऊँचा उठा सकते हैं। स्थानान्तर-गमन का रहन-सहन पर प्रभाव पड़ता है। जहाँ एक पेशे के अधिक लोग रहते है, वहाँ आमदनी कम होती है और दूसरी जगह उस पेशे के लोग नहीं रहने से अच्छी आमदनी हो जाती है। किसान लोग भी खेत के छोटे-छोटे टुकड़े में सभी प्राणी चिपके रहते हैं पर ऐसा करना उचित नहीं, दूसरे धन्धो मे लग जाना चाहिए।

गाँधी जी भी यहाँ के निवासियों का जीवन-स्तर ऊँचा उठाना चाहते थे तभी तो उन्हों ने किसानों को चरखा रूपी सुदर्शन चक्र हाथों में दिया कि शोषक लोगों के आक्रमण से वे रक्षा पाये। उनका ध्येय रहन-सहन का स्तर ऊपर उठाना नही था बल्कि जीवन का स्तर ऊपर उठाना था। सादा जीवन और उच्च विचार ही उनका जीवन का लक्ष्य था।

———

# नैतिक स्तर के उठने हो से स्वराज्य हो सकता है

"हिन्दुस्तान के बहुत से नगरों और गाँवों में उसका आनन्द मनाया गया। लेकिन गाँधी जी के हृदय में आनन्द नही था। उनको वह स्वराज्य ही महसूस नहीं हो रहा था। उस स्वराज्य से उनके दुःख का अन्त तो आया ही नही, बल्कि एक नये दुःख का आरंभ हुआ। उनके लिए वह एक शोक-पर्व हो गया। जो स्वराज्य-सत्ता आई उसका कुछ भी मूल्य उन्होंने नहीं किया, ऐसी तो बात नही थी, फिर भी उसको उन्होंने आपना स्वराज्य नहीं माना। उनका वह स्वराज्य तापदायी हुआ। यह हम सब जानते है।"

आचार्य विनोबा भावे।

हमारा भारतीय समाज युग-युगान्तर से आ रहा है। न मालूम कितने बार विदेशियों ने यहाँ आक्रमण किया पर गजनी, गोरी, मुगल, पोर्चगीज तथा अंग्रेज आये और चले गये। वेबीलोन, सिरिया की सभ्यता मिट गयी। अफलातून का प्रजातंत्र की कहानी अलीफलैला की ऐसी रह गयी है। रोमन साम्राज्य का नामोनिशान नहीं है। किन्तु हमारी भारतीय सभ्यता की निशानी भारत के कोने-कोने में पायी जाती है। जिस समय दुनिया में स्त्री-वैद्य मिलना दुर्लभ था, भारत

से खलीफा हारूँ रशीद की पर्दा नशीन बेगमों को देखने के लिए यहाँ से स्त्री-वैद्य भेजी गयी थी। माणिक्य नामका हिन्दू पंडित हारूँरशीद की चिकित्सा के लिए गये थे। आयुर्वेद इतना बढा चढा था कि कफ, पित्त और वायु में संसार के सभी रोगों का समावेश हो जाता था।

महाभारत के वन पर्व में एक कथा है कि यज्ञदत्त ने देव दत्त के हाथ एक खेत बेचा। खेत मे एक घड़ा अशर्फी पाया गया। देवदत्त ने यज्ञदत्त के दरवाजे पर उसे रख दिया और कहा कि मैने आपका खेत खरीदा है और उसमें एक घड़ा अशर्फी निकला है, सो लीजिये। यज्ञदत्त ने कहा कि मैंने तो खेत बेच दिया, यह तो तुम्हारा हुआ। दोनों ने लेने से इन्कार कर दिया। तब राजा ने हलवाहे को बुलाकर कहा कि तुम इसे ले लो। उसने कहा कि 'मैं इस राज्य मे नहीं रहूँगा, जब राजा मुझे, पाप का धन लेने के लिए कहते हैं और बेइमानी सिखलाते हैं। राजा ने शिक्षण-संस्था में इस धन को लगा दिया।

अशोक के पास दो भिक्षुक केन्द्र के लिए भिक्षा माँगने आये थे। अनाथ पिण्डक के वंशज ने एक लाख मुद्रा दी थी। अशोक के पास आने पर इन्होंने भी मन्त्री को एक लाख मुद्रा देने के लिए कहा। खजाना खोलने पर ६० हजार मुद्राये निकलीं। राजा ने दूसरे साल आने के लिए कहा। दूसरे साल ३० हजार मुद्राये दी गयीं। सम्राट् ने कहा 'मै अब

प्रजाओं के धन को दान-रूपमें खर्च नहीं करूँगा। मंत्री! देखो, किस तरह किसान दान करता है? किसान से दानी दुनिया मे कौन होगा जो सूर्य से लेकर दान करता है। हल चलाने वाले अपने शरीर को हवन कर दान देते है। उनके हवन कुण्ड की ज्वाला की किरणें चावल के लम्बे और सफेद दानों के रूप मे निकलती है। मै भी किसान बन कर दान करना चाहता हूँ, मंत्री जी! मंत्री ने जबाब दिया—'राजन्! यह काम आपसे नही होगा'। तब राजा ने कहा कि मै कौन सा पदार्थ दान में दूँ। उनके पुत्र महेन्द्र ने कहा—पिताजी, मै आपके दान के लिए तैयार हूँ। राजा उसे ससार के काम के लिए लंका भेजते है और साथ ही साथ उनकी पुत्री संघ-मित्रा भी जाती है। आज भी उनके नाम पर पटना में महेन्द्र घाट है।

चन्द्रगुप्त से कोई विदेशी मिलने आया। राज्य की सुव्य-वस्था देख कर फूला नहीं समाया। उन्होंने कहा कि 'राजन्! मुझे अपने प्रधान मंत्री से दर्शन कराइये। वह सचमुच महा विद्वान् और कर्त्तव्यपरायण व्यक्ति होगा'। राजा ने मंत्री को नहीं बुलाया और पतली पगडंडी से नीति विशारद चाणक्य की झोपड़ी में पहुँचाया। चाणक्य नरकुल की चटाई पर बैठे हुये थे। कुश की झोपड़ी थी। चारों ओर गाये बँधी थीं। विदेशी उनकी त्याग और सादगी देख कर मुग्ध हो गया और कहता है—"हे नीतिनिधान, त्यागमूर्ति, तपस्वी, मंत्रिराज! जिस

देश का मंत्री आप जैसा होगा, वहाँ की प्रजा क्यों न सुखी, शिक्षित, ईमानदार और उद्यमी होगी। आपका देश यथार्थ में ज्ञान का क्षेत्र है और आप लोग वसुधा मात्र को ज्ञान की शिक्षा देने के लिए भगवान् द्वारा भेजे गये देव हैं।"

मेगास्थनीज़ अपनी डायरी मे लिखते है कि मै तीन वर्ष तक भारत में रहा पर न्यायालयों में फौजदारी मुकदमा एक भी नही पाया। दूसरी बात पाटलीपुत्र की दूकाने खुली रहने पर भी जेवरों की चोरी नहीं होती थी। तीसरी बात मैंने एक विचित्र पायी कि प्यास लगने पर भी मुझे पीने के लिए पानी नहीं मिला। जिसके द्वार पर गया, सब दूध की लस्सी लेकर स्वागत के लिए दौड़ते थे। कभी-कभी बिना पानी के हफ्तों रह जाता था। पानी माँगने पर गृहस्थ जवाब देता था 'पथिक! पानी जाकर बावली या नदी में पी लो। मै तुम्हे खाली पानी कैसे दूँ। इससे ता अतिथि सेवा की अवहेलना होती है। आज कल साम्यवाद की हेंकड़ी भरने वाले इस साम्यवाद की तुलना करें।

रूसी साम्यवाद तो धन ही को धर्म मानता है। मेरे हिन्दुस्तान में तो सच्चा समाजवाद चाहिए। कम्युनिष्ट का एक ही धर्म है धन। यहाँ के लिए बाहरी साम्यवाद नही चाहिए। रूसी भालू यहाँ की गर्मी बर्दाश्त नहीं करेगा और जल कर राख हो जायगा। यदि हम लोग अपने नैतिक-स्तर को ऊँचा करें तो ऐसा समाजवाद, साम्यवाद आ

जायगा, जिसकी प्रशंसा जगत करती रहेगी। आज हिन्दुस्तान में किसी चीज की कमी नहीं है पर चोर बाजार में बेचने के लिए छिपा कर रक्खी हुई है। अतः जब तक हमारे नैतिक स्तर ऊँचा नहीं उठेगा, तब तक परोपकार की भावना नहीं आवेगी।

यहाँ की सभ्यता बतलाती है कि धन धर्म नहीं है। यदि धन को प्रतिष्ठा दी जाती तो भारत के प्रधान मंत्री नेहरू जी राजगृह के पास रहने वाले बौद्ध के दो भिक्षुकों के अस्थि-अवशेष ब्रिटिश म्यूजियम से नहीं मँगाते। मोद्गल्यायन तथा सारिपुत्र का अस्थि-अवशेष छोड़ कर कोह-नूर हीरे को मंगाते। पर उन्होंने समझा कि 'उनके अस्थि-अवशेष में भारतीय संस्कृति की राख है और उससे भारतीय संस्कृति लौटेगी।

राहुल जी नकली स्वराज्य को देखकर चिल्ला-चिल्ला कर कह रहें हैं कि सम्हलो, नहीं तो रसातल में चले जाओगे। वे कहते हैं—"देश की मानवी शक्ति बेकार पड़ा है, शिक्षा प्रसार के लिए पैसे की कमी-की घोषणा हो रही है, अन्न जुटाने की समस्या शतशः प्रयत्नों के बावजूद सुलझ नहीं रही है, उधर चोर बाजारी, अनाचार और भ्रष्टाचार का बोलबाला है, अधिकार के पदों पर भाई-भतीजे-भाँजे भरे जा रहें है। इस व्यवस्था हीनता के विरोध में किंचित्मात्र भी आवाज निकालने वालों के साथ शत्रुओं और देहद्रोहियों के समान व्यवहार किया जा रहा हैं।" सत्याग्रही क्रान्ति में मरने वाले

दरिद्र और निर्धन लोग हैं, पर आज मौज करने वाले तिन-तग्गे लोग हैं और धारा-सभा के चुनाव के पहले से शतरंज की चाल चलने लगे हैं। अशिक्षित जनता को आपस में मतभेद कर किस तरह अपना उल्लू सीधा करते हैं जिसका कोई ठिकाना नहीं। पर इस तरह का जंगलीपन बहुत दिन नहीं चलने वाला है। आज जिसके पास पैसे हैं वही कोई भी पद पा सकता है।

हमारा नैतिक पतन इतना हो गया है कि पैसे के लिए दूसरा को बुरी आदत में डालते हैं। इसके लिए हमारी सर-कार काफी खर्च कर रही है। 'हरिजन सेवक' १४ नवम्बर १९४८ में लिखा हुआ है 'चाय पर १०० पौंड पर एक रुपया छः आना टैक्स लगता है। हिन्दुस्तान हर साल ४० करोड़ पौंड बाहर भेजता है। इस लिए चाय टैक्स की सालाना रकम लगभग ५५ लाख रुपया होती है। इस रकम में से $\frac{३}{७}$ भाग लन्दन में खर्च किया जाता है और बाकी के ३० लाख रुपये हमें चाय पीने वाले बनाने में खर्च किये जाते हैं -

नीचे के आँकड़े बताते हैं कि कितनी सफलता से कार्य किया गया है।

| साल | हिन्दुस्तान मे चाय की खपत |
|---|---|
| १९३० | ४४० लाख पौंड |
| १९४२-४३ | १३६० लाख पौंड |
| १९४६-४७ | १६५० लाख पौंड |

१६ वर्ष में हिन्दुस्तान में चौगुनी खपत।

जैसा 'स्व' होगा वैसा ही स्वराज्य होगा, अगर 'स्व' अच्छा है तो स्वराज्य भी अच्छा है। अगर 'स्व' खराब है तो स्वराज्य भी खराब है, इसलिए स्वाधीन वही आदमी रह सकता है जो अपनी जरूरतों पर रोक रखता है। यदि भारतीय संस्कृति का पालन करें तो हमारा नैतिक स्तर एक दम ऊँचा हो जाय –हमारी संस्कृति ईश्वर परायण, आत्मा को शान्ति देने वाली, स्वावलम्बी तथा संयमी है और इसे अपनाने में कोई खर्च नहीं है। पाश्चात्य संस्कृति द्रव्य-परायण, देह सम्बन्धी चोंचले पूरे करने वाली, परावलम्बी तथा विलासी है। अतः पश्चिम की अन्धा-धुन्ध नकलची होना अच्छा नही है।

अतः भाइयों को समझना चाहिए कि आजादी है क्या? कॉंग्रेस ने तो यही सुनाया है कि स्वराज्य का अर्थ है जनता का राज्य अर्थात् उत्पादन और व्याख्या की जिम्मेवारी प्रत्यक्ष रूप से जनता के हाथ में आ जाय। पर आज उत्पादन और व्यवस्था यंत्र द्वारा हो रही है। स्त्रियों को बच्चे पैदा करने के लिए पुरुषों के पास जाने की कोई आवश्यकता नहीं। मशीनें मनुष्य को कृत्रिम बना रही है। शीशे के मर्तवान (Test tubes) मे बच्चे पैदा होने लगे हैं। अमेरिका में १२ प्रयोगों में एक प्रयोग सफल हुआ है। उनमें से एक बच्चा तो मॉस का स्वस्थ और सजीव है। मशीने तो काठ,

सेलखड़ी तक खिला रही है।

बड़े लोग जब कलकत्ते तथा बम्बई की तग गलियो में मोटरों पर चलते है तो तकलीफ मालूम पड़ती है। इसलिए कहते हैं कि आबादी घनी हो गयी है। वे लोग आबादी को कम करने के लिए अनेको उपाय भी बतलाते हैं, कहते है कि लोगों को गर्भपात, फ्रेंचलेद्र तथा अंग्रेजी दवाइयाँ जो जनन-निग्रह के लिए है, इस्तेमाल करना चाहिए। हमारे प्राचीन काल में इससे भी उत्तम तरीके सोचे गये है (१) ब्रह्मचय (२) गार्हस्थ्य (३) वानप्रस्थ (४` सन्यास आश्रम। केवल गार्हस्थ्य आश्रम में ही मनुष्य संतान पैदा करता था, उस समय इस तरह के फ्रॉसीसी औजारो को इस्तेमाल करने की आवश्यकता नहीं होती थी। समयानुकूल ही विधवा रहने की प्रथा चलायी गयी थी।

गाँधी जी के बताये तरीके से स्वराज्य मिला। पर उनके बताये तरीके पर कोई नहीं जा रहे हैं। वे पश्चिमी ढंग से शासन चलाना चाहते है। वे औद्योगिककरण द्वारा गरीबों को शोषण करने जा रहे है। वे ग्राम-सेवा और चरखे पर मजाक उड़ाते हैं। पर यदि वे गौर से सोचे तो पता चलेगा कि चरखे के द्वारा ही हमारी स्त्रियों का पातिव्रत्य की रक्षा हो सकती हे। वे पूंजीपतियो से गुट बॉध कर उद्योगीकरण करना चाहते हैं। यदि उद्योगीकरण हुआ तो गरीबों को कुछ लाभ नहीं होगा। नोकरीशाही हुकूमत क्या कम खतर-

नाक है। यदि विदेशियों से किसी प्रकार की मदद ली तो जीवन भर ऋणी बन गये। बहुत लोग कह उठते है कि राष्ट्रीय करण होने से देश का कल्याण जरूर होगा और किसी को चुसने का भी मौका नहीं मिलेगा। रेल और डाक का तो राष्ट्रीयकरण हो चुका है। रेलवे दुर्घटनाएँ प्रतिदिन हुआ करती है। जब डाक विभाग में बेईमानी की गुँजाइश हो गयी है तो अन्य सरकारी महकमों के बारे में कहना ही क्या? पहले जमालपुर के कारखाने में मजबूत इंजन बनती थी। पर आज कम संख्या में कमजोर इंजन बनती है। राष्ट्रीयकरण से तो यही फायदा हो रहा है।

अंग्रेज अभी गये नहीं हैं। वे पाकिस्तान में रहकर आप पर कब्जा करने के लिए पैतरे बदल रहे हैं। मौका देखते ही आप पर कब्जा करलेंगे। इसलिए विदेशी यंत्रों से चौकन्ना रहिये। ऐसा काम कीजिए कि 'न माधो का लेना, न उधो का देना'। औद्योगिक करण में कुछ भारतीय नौकर बन कर काम करेंगे, इसलिए उत्पादन पर कोई अधिकार नहीं होगा। सचमुच उत्पादन और व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति का हाथ रहना चाहिए, इसलिए स्वराज्य पर कब्जा करने वाले व्यक्ति को स्वयं प्रबन्ध करना चाहिए। इन्तजाम का मतलब है कि हम किसी चीज़ के लिए दूसरे के नजदीक हाथ न फैलाये। स्व-राज्य में तो सभी चीजो का प्रबन्ध खुद करना चाहिए, यदि

दूसरा कोई प्रबन्ध करेगा तो कब्जा भी दूसरा ही का रहेगा। गांधी जी के रास्ते पर चल कर स्वराज्य की प्राप्ति हुई है, इसलिए स्वराज्य स्थापित करने के लिए उनके बताये रचनात्मक कामो में लग जाना चाहिए वरना देश में विदेशी राज्य रह जायगा। इसलिए देश के प्रत्येक व्यक्ति को नीतिमान्, चरित्रवान् होना आवश्यक है। इसी न जीवन तथा रहन-सहन का भी दर्जा ऊँचा होगा।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भवेत्॥

सब सुखी हों, सब कष्ट और रोग से मुक्त हों सब कल्याण का उपभोग करे और दुःख का भागी न हो।

---

निम्न लिखित पुस्तकों की नीव पर मेरा गाँव के पुनर्निर्माण हुआ है, अतः पाठक गण विशेष जानकारी के लिए नीचे लिखे पुस्तकों का अध्ययन करें।

(१) कल्याण —गो अङ्क
(२) गा सेवा —म० गाँधी
(३) यत्रों की मर्यादा —म० गाँधी
(४) स्वराज्य की समस्यायें —श्री धीरेन्द्र मजूमदार
(५) गाय ही क्यों ? —श्री हरदेव सहाय
(६) समग्र ग्राम सेवा की ओर —श्री धीरेन्द्र मजूमदार

(७) पूँजीवाद समाजवाद ग्रामोद्योग —डा० भरतन् कुमारप्पा
(८) भारत का आर्थिक शोषण —डा० पट्टाभि सीतारमैया
(९) खादी मीमाँसा —श्री बालू भाई मेहता
(१०) किसान राज —पं० श्री कृष्णदत्त पालीवाल
(११) सरल अर्थ शास्त्र —श्री दूबे और केला
(१२) बापू की देन —श्रीजगदीश नरायण दीक्षित
(१३) कताई कला —श्री संत प्रसाद, सूर्य ठाकूर
(१४) विहार प्रान्त की कृषि —जी० एम० एफ० सीरीज न० १०१
(१५) नव भारत —राम कृष्ण शर्मा
(१६) सर्वोदय — ,,
(१७) छात्र और समाज सेवा —अनु० रामाशंकर, केशव पाण्डे
(१८) आज की राजनीति —राहुल सांकृत्यायन
(१९) सैकड़ो पत्रपत्रिकाये —
(२०) Bone meat fertiliser —By Satish Chandra Das Gupta
(२१) Swaraj for masses —G. C Kumarppa
(२२) An over all plan for Rural Development — ,,
(२३) The Gandhian Economy and other Essays — ,,
(२४) Why the village movement ,,
(२५) Banishing war ,,